[राजस्थान विश्वविद्यालय द्वारा डी लिट उपाधि के लिए स्वीकृत शोध-प्रबन्ध]

जाम्भोजी, विष्णोई सम्प्रदाय और साहित्य

[जम्भवाणी के पाठ–सम्पादन सहित]

(दो भागों मे)

दूसरा भाग

लेखक

डॉ० हीरालाल माहेश्वरी

एम ए, एल एल बी, डी फिल (कलकत्ता), डी लिट (राजस्थान)

प्राध्यापक, हिन्दी विभाग राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

बी० आर० पब्लिकेशन्स

६, प्रिटोरिया स्ट्रीट, कलकत्ता-१६

प्रकाशक
वी० आर० पब्लिकेशन्स,
६, प्रिटोरिया स्ट्रीट,
कलकत्ता-१६

प्रथम संस्करण, ११००
शिवरात्रि, फाल्गुन बदि १४, संवत् २०२६
गुरुवार, ६ मार्च, १९७०
फाल्गुन १५, शाके १८९१

[सर्वाधिकार लेखक के स्वाधीन हैं]

दूसरा भाग

विषय-सूची

खण्ड ३ विष्णोई साहित्य पृष्ठ ४७१-१०५१

अध्याय ८ विष्णोई साहित्य पृष्ठ ४७१-९५८

(कालक्रमानुसार प्रमुख कवियो और उनकी रचनाओ का परिचय और विवेचन)

क्रम स०	कवि-नाम	काल (विक्रम सवत)	रचनाएँ	पृष्ठ सख्या
१	२	३	४	५
१	तेजोजी चारण-	१४८०-१५७५	१-छन्द, २-गीत, ३-साखी, ४-हरजस, ५-मरसिये—	४७३-४८३
२	समसदीन-	१४६०-१५५०	साखी—	४८३-४८५
३	ऊदोजी-	१४९०-१५५०	१-बुध परगास, २-कथा अहमनी—	४८६-५११
४	आलमजी-	१५००-१५५०	साखी—	५११-५१२
५	पदम भगत-	१५००-१५५५	१-रुक्मिणजी रो व्यावलो—विभिन्न प्रतियां-तीन परम्पराएँ-तीन समूह-प्रथम-द्वितीय-तृतीय-कथासार-विवेचन, २-फुटकर पद, आरती, हरजस—	५१२-५२२
६	वीरहजी चारण-	१५००-१५६०	१-बारामासो २-कवित्त—	५२२-५२६
७	सुरजनजी(हुजूरी)-	१५००-१५७०	साखी—	५२६-५२७
८	सिवदास	१५००-१५७०	साखी—	५२७-५२८
९	एकजी-	१५००-१५७०	साखी—	५२८-५२९
१०	अमियादीन-	१५००-१५७०	साखी—	५२९-५३०
११	जोधो रायक-	१५००-१५७०	साखी—	५३०-५३१
१२	केसौजी देड-	१५००-१५८०	साखी—	५३१-५३२
१३	लालचन्द नाई-	१५००-१५८०	साखी—	५३२-५३३
१४	कान्होजी बारहट-	१५००-१५८०	१-आदनी, २-फुटकर छन्द, गीत, कवित्त, हरजस—	५३३-५३७

१५ आसनोजी–	१५००–१६००	झूमखो—	५३७–५३६
१६ से २८ अज्ञात	१६ वी शताब्दी	साखियाँ—	५३६–५४६
२६ अज्ञात–	१६ वी शताब्दी	असतोत्र (स्तोत्र)—	५४६–५४७
३० से ३४ अज्ञात	१६ वी शताब्दी	साखियाँ—	५४७–५४६
३५ अज्ञात–	१६ वी शताब्दी	छप्पय (कवित्त)—	५५०
३६ वोल्हजी चारण–	१६ वी शताब्दी	छप्पय (कवित्त)—	५५०–५५२
३७ ऊदोजी नण–	१५०५–१५६३/६४	जीवन-सम्प्रदाय म महत्त्व-२६ धमनियमा सम्बन्धी कवित्त-पाठ पाठान्तर आदि, रचनाएँ-१ साखी, २-हरजस, आरती, ३-कवित्त, ३-अभ चितावणी-भावव्यजना-(१) जाम्भाणी रूप-(२) नारी रूप म आत्मानुभूति और निवेदन-(३) मुक्ति हेतु प्रयाण और चेतावनी-काव्य का लक्ष्य-महत्त्व और मूल्याङ्कन-(क) काव्य रूप-परम्परा मे (ख) लोकरजन मनोवृत्ति परिष्कार-(ग) भावधारा-(घ) अनुभूति, प्रेरक तत्त्व–	५५२–५७८
३८ अल्लूजी कविया–	१५२०–१६२०	जीवन-प्राप्त नवीन सामग्री के आधार पर निष्कर्ष-अन्त साक्ष्य, बहिसाक्ष्य-रचनाएँ-कवित्त, गीत, योग ग्या तरमात्मक, अध्यात्म-वीर रसात्मक-मरसिये-	५७६–५६१
३६ दीन महमद–	१५२५–१६००	हरजस—	५६२–५६३
४० रायचद सुथार–	१५२५–१६१०	साखियाँ—	५६३–५६५
४१ कुलचदराय अग्रवाल–	१५०५–१५६३	साखियाँ—	५६५–५६७
४२ राव लूणकरण–	१५२६–१५८३	स्तुति-कवित्त—	५६७–५६६
४३ रेडोजी–	१५३०–१६२०	साखी—	५६६–६००
४४ वाजिदजी–	१५३०–१६००	साखी,- दादूपथी वाजिन्द से भिन्न-दादूपथी वाजिन्द की ६८ रचनाओं की सूची—	६०१–६०३
४५ लखमणजी गोदारा–	१५३०–१५६३	साखी—	६०३–६०५
४६ आलमजी–	१५३०–१६१०	१-साखी, २-हरजस—	६०५–६११
४७ स्याम घरारवाळ–	१५३०–१६००	१-हरजस, २-साखी—	६१२–६१५
४८ भीवराज–	१५३०–१६००	साखी—	६१५–६१६
४६ दीन मुहम्मी–	१५३५–१६००	साखियाँ—	६१६–६१८
५० मनोजा गोदारा–	१५४०–१६०१	रामायण-कथासार-प्रचलित कथा और इसम कुछ अन्तर-विवचन—	६१८–६३५

५१ रहमतजी- १५५०-१६२५ हरजस— ६३५-६३६

५२ गुणदास- १५६०-१६४० साखी— ६३६

५३ लाखू- १५६०-१६५० साखी— ६३७

५४ अनात- १५६६/१५६७ छप्पय (कवित्त)— ६३७-६३९

५५ वील्होजी- १५८९-१६७३ जीवनवृत्त-रचनाएँ—
(परिचय और विवेचन)-१-कथा धडाबन्ध, २-कथा औतारपात,
३-कथा गुगलिय की, ४-कथा पूल्हैजी की, ५-कथा दूणपुर
की, ६-कथा जसलमेर की, ७-कथा झोरडा की, ८-कवत
परमग का, ९-कथा ग्यानचरी, १०-सच अखरी विगतावळी,
११-साखियाँ, १२-हरजस, १३-विसन छत्तीसी, १४-छपइयाँ
(छप्पय), १५-दूहा मभ अपरा-अवतार का, १६-छुटक साखी
(दोहे)-महत्त्व और मूल्यांकन— ६३९-६८६

५६ दसूजीदास- १७ वी शताब्दी सवया- ६८६

५७ आनन्द- १७ वी शताब्दी १-कवत गोपीचन्द का
२-कवत कम्वा पाडवा का महाभारत का ३-फुटकर छन्द- ६८६-६८८

५८ अनात- १७ वी शताब्दी साखी — ६८८ ६८९

५९ नानिग- १७ वी शताब्दी १-साखी २-नौमागणी- ६८९-६९०

६० लालोजी- १७ वी शताब्दी साखी- आरेला'- ६९०- ६९

६१ गोपाल- १७ वी शताब्दी फुटकर छन्द- ६९१-६९३

६२ हरियो(हरिराम)-१७ वी शताब्दी गोपीचन्द की साखी- ६९३-६९४

६३ दुरगदास- १६००-१६८० हरजस- ६९४-६९५

६४ किशोर- १६३०-१७३० सवैया- ६९६-६९७

६५ अनात- १७ वी शताब्दी गीत (डिंगल गीत)- ६९७-६९८

६६ अनात- १७ वी शताब्दी कवित्त (छप्पय)- ६९८

६७ कालू- १६३०-१७३० साखियाँ- ६९९-७००

६८ केसोदासजी गोदारा-१६३०-१७३६ जीवनवृत्त-रचनाएँ
(परिचय और विवेचन)-१-साखियाँ, २-हरजस, ३-कवित्त, ४-सवए,
५-चन्द्रायणा, ६-दूहा, ७-स्तुति अवतार की, ८-दस अवतार का छन्द,
९-कथा बाललीला, १०-कथा ऊन अनली की, ११-कथा सस जोखाणी
की, १२-कथा मेडतै की, १३-कथा चित्तौड की, १४-कथा इसकदर की
१५-कथा जती तळाव की, १६-कथा विगतावळी, १७-कथा लोहापागळ
की, १८-पहळाद चिरत, १९-कथा भीव दुसासणी २०-कथा
सुरगारोहणी, २१-कथा वहसोदनी २२-कथा अघलेखा की। महत्त्व
और मूल्यांकन-कथाओं का महत्त्व-नारी-नाथ जोगी-समाज सबंधी

१५ आसनोजी–	१५००–१६००	भूमलो—	५३७–५३९
१६ से २८ अज्ञात	१६ वीं शताब्दी	साखियाँ—	५३९–५४६
२९ अज्ञात–	१६ वीं शताब्दी	असतोत्र (स्तोत्र)—	५४६–५४७
३० से ३४ अज्ञात	१६ वीं शताब्दी	साखियाँ—	५४७–५४९
३५ अज्ञात–	१६ वीं शताब्दी	छप्पय (कवित्त)—	५५०
३६ कोल्हजी चारण–	१६ वीं शताब्दी	छप्पय (कवित्त)—	५५०–५५२
३७ ऊदोजी नण–	१५०५–१५९३/९४	जीवन-सम्प्रदाय में महत्त्व-२९ धर्मनियमों सम्बन्धी कवित्त-पाठ पाठान्तर आदि, रचनाएँ-१ साखी, २-हरजस, मारतो, ३-कवित्त, ३-ग्रन्थ चितावणी-भावव्यंजना-(१) जाम्भाणी रूप-(२) नारी रूप में आत्मानुभूति और निवेदन-(३) मुक्ति हेतु प्रयाण और चेतावनी-काव्य का लक्ष्य-महत्त्व और मूल्यांकन-(क) काव्य रूप-परम्परा में (ख) लोकरंजन मनोवृत्ति परिष्कार-(ग) भावधारा-(घ) अनुभूति, प्रेरक तत्त्व–	५५२–५७८
३८ अल्लूजी कविया–	१५२०–१६२०	जीवन-प्राप्त नवीन सामग्री के आधार पर निष्कर्ष-अन्त साक्ष्य, बहिसाक्ष्य-रचनाएँ-कवित्त, गीत, योग शान्तरसात्मक, अध्यात्म-वीर रसात्मक-मरसिये-	५७९–५९१
३९ दीन महम्मद–	१५२५–१६००	हरजस—	५९२–५९३
४० रायचंद सुथार–	१५२५–१६१०	साखियाँ—	५९३–५९५
४१ कुलचंदराय अग्रवाल–	१५०५–१५९३	साखियाँ—	५९५–५९७
४२ राव लूणकरण–	१५२६–१५८३	स्तुति-कवित्त—	५९७–५९९
४३ रेडोजी–	१५३०–१६२०	साखी—	५९९–६००
४४ वाजिन्दजी–	१५३०–१६००	साखी - दादूपंथी वाजिन्द से भिन्न-दादूपंथी वाजिन्द की ६८ रचनाओं की सूची—	६०१–६०३
४५ लखमणजी गोदारा–	१५३०–१५९३	साखी—	६०३–६०५
४६ आलमजी–	१५३०–१६१०	१-साखी २-हरजस—	६०५–६११
४७ रणाम घरारवाळ–	१५३०–१६००	१-हरजस २-साखी—	६१२–६१५
४८ भीवराज–	१५३०–१६००	साखी—	६१५–६१६
४९ दीन मुहम्मद–	१५३५–१६००	साखियाँ—	६१६–६१८
५० महाराजा गांगारा–	१५८०–१६०१	रामायण-कथासार-वर्णित कथा और इसमें मुद्दा अन्तर-विवेचन—	६१९–६३५

५१ रहमतजी- १५५०-१६२५ हरजस— ६३५-६३६
५२ गुणदास- १५६०-१६४० साखी— ६३६
५३ लाखू- १५६०-१६५० साखी— ६३७
५४ अज्ञात- १५६६/१५६७ छप्पय (कवित्त)— ६३७-६३९
५५ वील्होजी- १५८९-१६७३ जीवनवृत्त-रचनाएँ—
(परिचय और विवेचन)-१-कथा घडावंध, २-कथा ग्रौतारपात, ३-कथा गुगलिय की, ४-कथा पूल्हैजी की, ५-कथा दूणपुर की, ६-कथा जसलमेर की, ७-कथा भोरडा की, ८-कवत परसग का, ९-कथा ग्यानचरी, १०-सच अखरी विगतावळी, ११-साखियाँ, १२-हरजस, १३-बिसन छत्तीसी, १४-छपइया (छप्पय), १५-दूहा मझ अपरा-अवतार का, १६-छुटक साखी (दोहे)-महत्त्व और मूल्यांकन— ६३९-६८६
५६ दसूधीदास- १७ वी शताब्दी सवया- ६८६
५७ आनन्द- १७ वी शताब्दी १-कवत गोपीचन्द का
२-कवत करवा पाडवा का महाभारत का ३-फुटकर छन्द- ६८६-६८८
५८ अनात- १७ वी शताब्दी साखी — ६८८ ६८९
५९ नानिग- १७ वी शताब्दी १-साखी, २-नीसाणी- ६८९-६९०
६० लालोजी- १७ वी शताब्दी साखी- आरेला'- ६९०- ९१
६१ गोपाल- १७ वी शताब्दी फुटकर छन्द- ६९१-६९३
६२ हरियो(हरिराम)-१७ वी शताब्दी गोपीचन्द की साखी- ६९३-६९४
६३ दुग्गदास- १६००-१६८० हरजस- ६९४-६९६
६४ किशोर- १६३०-१७३० सवया- ६९६-६९७
६५ अज्ञात- १७ वीं शताब्दी गीत (डिंगल गीत)- ६९७-६९८
६६ अज्ञात- १७ वीं शताब्दी कवित्त (छप्पय)- ६९८
६७ कालू- १६३०-१७३० - साखियाँ- ६९९-७००
+६८ केसौदासजी गोदारा-१६३०-१७३६ जीवनवृत्त-रचनाएं
(परिचय और विवेचन)-१-साखियाँ, २-हरजस, ३-कवित्त, ४-सवैए, ५-चन्द्रायणा, ६-दूहा, ७-स्तुति अवतार की, ८-दस अवतार का छन्द, ९-कथा बाललीला, १०-कथा ऊद अतली की, ११-कथा सस जोखाणी की, १२-कथा मेडतै की, १३-कथा चित्तौड की, १४-कथा इसकदर की, १५-कथा जसी तळाव की, १६-कथा विगतावळी, १७-कथा लोहापागळ की, १८-पहलाद चिरत, १९-कथा भोव दुसासणी, २०-कथा सुरगारोहणी, २१-कथा वहसोवनी २२-कथा अघलेखा की। महत्त्व और मूल्याकन-कथाओ का महत्त्व-नारी-नाथ जोगी-समाज संबंधी

अन्य संकेत-विष्णोई समाज सम्बन्धी-आत्मनिवेदन-भाव और विचार-कतिपय लुप्त और अप्राप्य रचनाओं के संकेत-(१) महाराजा हरिश्चन्द्र-चरित या कथा पर किसी विष्णोई कवि के पृथक् काव्य की सम्भावना,-(२) सबदवाणी के कतिपय (क) अप्राप्य भी लुप्त तथा (ख) प्राप्त सबद, (३) जाम्भाणी विचारधारा, उसकी धार्मिक पृष्ठभूमि का परिचय तथा सम्प्रदाय पर नाथपंथ या मुसलमानी प्रभाव की धारणा का निरसन- ७०१-७६४

६९. सुरजनदासजी पूनिया-१६४०-१७४८ जीवनवृत्त- रचनाएँ (परिचय और विवेचन)-१-साखियाँ, २-गीत, ३-हरजस, ४-साखी अगचेतन, ५-दस अवतार दूहा, ६-असमेध जिग का दूहा ७-सुरजनजी के छंद, ८-कवित्त - विचारधारा-इतिहासिक कवित्त-अर्द्ध इतिहासिक पौराणिक-नाम गणनात्मक,-९-कवित्त-बावनी, १०-मवइए, ११-कथा चेतन, १२-कथा चितावणी, १३-कथा धरमचरी १४-कथा हरिगुण, १५-कथा औतार की, १६-कथा परसिध, १७-ग्यान महातम १८-ग्यान तिलक, १९-कथा गजमोख, २०-कथा उषा पुराण, २१-भोगळ पुराण, २२-रामरासो (कवित्त रामरास का)-महत्त्व और मूल्यांकन-स्वानुभूति, आत्मनिवेदन-कतिपय महत्त्वपूर्ण संकेत और उल्लेख- ७६४-८२५

७०	मिठुजी-	१६५०-१७५०	१-हरजस, २ सबद-	८२५-८२६
७१	माधनजी-	१६५०-१७५०	हरजस-'मोहणा'-	८२६-८२७
७२	रामू खोड-	१६७५/७६-१७००	साखी-	८२७-८२९
७३	रूपो वणियाळ-	१६८०-१७५०	साखी-	८२९-८३०
७४	दामोजी-	१६८०-१७६८	१-कवित्त, २-साखी-	८३०-८३१
७५	देवोजी-	१७००-१७८०	हरजस-	८३१-८३२
७६	हरिनन्द-	१७००-१८८०	१-हरजस, २-फुटकर छन्द-	८३२
७७	गोकलजी	१७००-१७९०	जीवनवृत्त-रचनाएँ-(परिचय और विवेचन)-१ इन्दव छन्द २ अवतार की विगति, ३-परची, ४-स्तुति होम की, ५-साखियाँ-	८३३-८३९
७८	रासानन्द-	१७००-१८००	हरजस-	८३९-८४१
७९	मुकनजी (मुकनदास)-	१७१०-१७९०	१-फुटकर छन्द, २-हरजस-	८४१-८४३
८०	सेवादास-	१७२०-१७८०	१-इन्दव छंद, २-चौजुगी ३-पिसण सिंघार-	८४३-८४८
८१	चतरदास-	१७००-१८००	भजन (गोपीचन्द विषयक)-	८४८
८२	अज्ञात-	१८ वीं शताब्दी	हरजस (भरथरी विषयक)-	८४९
८३	अज्ञात-	१८ वीं शताब्दी	हरजस (गोपीचन्द विषयक)-	८४९-८५०

८४ सुदामा- १७००-१८०० बारहखडी- ८५०-८५१

८५ अज्ञात- १७५० भजन- ८५१

८६ हीरानन्द- १७५०-१८०० हिंडोलणो- ८५१-८५२

८७ हरजी वणियाळ-१७४५-१८३५ १-साखिया, २-फुटकर छन्द- ८५२-८५७

८८ परमानन्दजी वणियाळ-१७५०-१८४५ जीवनवृत्त-रचनाएँ-
(परिचय और विवेचन)-१-प्रसग-दोहे २-हरजस, ३-साखियाँ, ४-विसन असतोत्र, ५-फुटकर छन्द, ६-साका (गद्य), ७-छमछरी (सवत्सरी)-काव्य का उद्देश्य और भावधारा-(१) हरि-(२) अनुभव,-दर्शन और अध्यात्म-ब्रह्म-विष्णु नाम-विष्णु स्वरूप-जाम्भोजी विष्णु हैं-अन्य देव-पूजा, जीव, शरीर-माया (मन, जगत)-सृष्टि क्रम-पुनर्जन्म-कर्म सिद्धान्त-मुक्ति-भक्ति-ज्ञान-प्रेम-गुरु-साधु और सत्सग-आत्मानुशासन के मुख्य नियम-पाखण्ड-जाम्भोजी-सम्प्रदाय की श्रेष्ठता और महत्ता-उक्तियाँ और उपमाएँ-गद्य- ८५७-८८६

८९ गोविन्दरामजी
बागडिया- १७५०-१८१० जम्भाष्टक (सस्कृत)- ८८९

९० रामलला- १७७५-१८५० १-रुक्मिणी मगल,
२-हरजस,- रुक्मिणी मगल का कथासार-कतिपय भ्रामक बातो का निराकरण-विवेचन— ८९०-८९६

९१ हरचन्दजी ढुकिया-१७७५-१८६० १-लघु हरि प्रहलाद चिरत
२-फुटकर कवित्त- ८९६-८९९

९२ अज्ञात- १७७५-१८५० कवित्त (छप्पय)- ८९८-९००

९३ गगाराम(गगादास)-१७८३-१८८३ हरजस- ९०१

९४ सूरतराम- १७८७-१८८७ हरजस- ९०१-९०२

९५ मयारामदास- १८००-१८७० १ अमावस्या कथा
२-फुटकर छन्द- ९०२-९०४

९६ खरातीराम मरठी-१८००-१८६० बारहमासा- ९०४-९०६

९७ विष्णुदास- १८००-१८८५ १-आरती,
२-हरजस, ३-जम्भाष्टक की विष्णु-विलास टीका (गद्य म)— ९०६-९०७

९८ हरिकिसनदास- १८००-१८९९ पत्री (गद्य पद्य)- ९०८-९०८

९९ पाकरदास(पोहकर)-१८००-१८५० १-नुगरी सुगरी को झगडो,
२-भजन- ९०९-९१०

१०० ऊदोजी अडीग- १८१८-१९३३ जीवनवृत्त-रचनाएँ-
(परिचय और विवेचन)- १-प्रहलाद चिरत, २-विष्णु चरित,
३-ककका छत्तीसी, ४-सूर, ५-फुटकर छन्द- ९१०-९२०

१०१ मोतीराम- १८५०-१९२५ आरतियाँ- ९२०
१०२ अज्ञात- १८५०-१९२५ जम्भस्तुति- ९२१
१०३ लीलकंठ (वेचु)- १८६०-१९२० फुटकर छंद- ९२१
१०४ गोविन्दरामजी गोदारा- १८६०-१९५० १-वील्होजी की स्तुति, २-साखियाँ, ३-जम्भ महिमा वर्णन आदि, ४-विसनु सहंस (गद्य)- ९२२-९२६
१०५ खेमदास- १८६५-१९५१ कवित्त (छप्पय)- ९२६-९२७
१०६ अज्ञात- १९वीं शताब्दी जाम्भजी र भक्ता री भक्तमाल- ९२७
१०७ साधु मुरलीदास-१९वीं शताब्दी फुटकर छंद- ९२७-९२८
१०८ अज्ञात- १८७५ पत्रा (पद्य-गद्य)- ९२८
१०९ अज्ञात- १८७५ भजन- ९२९
११० अज्ञात- १९वीं शताब्दी कुण्डली- ९२९
१११ पीताम्बरदास- १९वीं शताब्दी उत्तरार्द्ध १-आरती हरजस, २-जम्भाष्टोत्तर शत नाम ९२९-९३०
११२ परमरामजी- १९वीं शताब्दी उत्तरार्द्ध दोहे- ९३०-९३१
११३ केसौदासजी- १९वीं शताब्दी मंगलाष्टक- ९३१-९३२
११४ साहबरामजी राहड़-१८७१-१९४८ जीवनवृत्त-रचनाएँ (परिचय और विवेचन)-१-सत्तलोक पहुचन का परवाना, २-सार शब्द गुंजार, ३-सार बत्तीसी, ४-अमर चालीसी ५-महामाया की स्तुति, ६-फुटकर रचनाएँ- साखियाँ, हरजस भजन, आरती तथा छंद ७-जम्भसार, महत्व और मूल्यांकन— ९३२-९४३
११५ बिहारीदास- १८७०-१९५० १-फुटकर छंद, २-जम्भसरोवर स्तुति, ३-जम्भाष्टक- ९४३-९४४
११६ अज्ञात- १९०० १९५० भजन 'गावण की कथा'- ९४४-९४५
११७ अज्ञात- १९००-१९४२ जाम्भाणाव महातम (गद्य)- ९४५
११८ सीतल- १९००-१९७५ भजन और लावनी- ९४६
११९ ईश्वरानंदजी गिरि-१८९१-१९५५ १-श्री जम्भसागर, २-शब्दवाणी अर्थात जम्भसागर, ३-श्री जम्भ संहिता, ४-ब्राह्मण वर्ण-व्यवस्था, ५-शिक्षा दर्पण- ९४६-९४८
१२० अज्ञात- १९२० ऊदोजी की कथा (गद्य)- ९४८-९५०
१२१ स्वामी ब्रह्मानन्दजी-१९१०-१९८५ १-श्री जम्भदेव चरित्र भानु, २-साखी संग्रह प्रकाश ३-मृतक संस्कार निर्णय ४-श्री वील्होजी का जीवन चरित्र तथा वील्होजी का संक्षिप्त वृत्तान्त, ५-विश्नोई धर्म विवेक ६-विद्या और अविद्या पर व्याख्यान, ७-गोत्राचार, ८-भाषण, ९-आरती तथा भजन- ९५०-९५१

१२२ हिम्मतराय– १९००–१९८० फुटकर छन्द– ९५१

१२३ किशोरीलाल गुप्त-२०वीं शताब्दी उत्तरार्द्ध फुटकर छन्द– ९५२

१२४ माधवानन्द– १९२५–१९७५ भजन– ९५२

१२५ ब्रदीदास (बिरधीदास)– १९५० भजन– ९५२–९५३

१२६ जगमालदास– १९५०/६० आरती– ९५३

१२७ श्रीरामदासजी गोदारा–१९२०–२०१० इनका महत्त्व और प्रकाशन-कार्य-स्वसम्पादित रचनाएँ-१७ तथा अन्य ७ — ९५४–९५५

१२८-कुम्भारामजी पूनिया–१९३७–१९९५ १–निर्वेद ज्ञान प्रकाश, २–पचयज्ञ प्रश्नोत्तर मणिमाला— ९५५–९५७

१२९ साधु जगदाशराम–१९६०–२०५ भजन– साखी– आरती– और फुटकर छन्द । अन्य कवि-नामोल्लेख– ९५७–९५८

अध्याय ९ विष्णोई साहित्य महत्त्व, देन और मूल्यांकन पृष्ठ ९ ९–९८४

राजस्थानी साहित्य का काल विभाजन— तीन धाराएँ और शलिया १ जन शैली २ चारण शैली ३ लौकिक शैली,-सिद्ध काव्यधारा– नामकरण । सिद्ध काव्यधारा महत्त्व, देन- (१) साहित्य के क्षेत्र मे–

(क) काव्य रूप और शैली की दृष्टि से १ साखी, २ हरजस, ३ भजन, ४ गीत (डिंगल गीत), ५ छन्द ६ विभिन्न छन्द परक रचनाएँ, ७ स्तुति-स्तोत्र, आरती, ८ बारहमासा ९ माहात्म्य, महिमा, १० ब्यावलो (विवाहलो), ११ मगल, १२ बावनी, बारहखडी, छत्तीसी (कक्को काव्य), १३ कथा-काव्य, १४ चरित काव्य १५ आख्यान, इसके उपादान, १६ चेतन, चितावणी (प्रतिबोध परक), १८ सवाद, १८ रासो, १९ तिलक, २० चरी (आचार-विचार), २१ लोक प्रचलित विशिष्ट गीत-झूमखो, रगीलो, मधुकर, सूर, जखडी, आरेलो, हिंडोलणो, धुन, लावनी, २२ लघु कथा परक और मुक्तक रचनाएँ, २३ सार, २४ लखण (लक्षण), २५ अग, २६ परची, २७ परमग (प्रसग), २८ दृष्टिकूट, गूढार्थ, २९ परवाना, ३० सख्यापरक काव्य ३१ माळ (माला), ३२ परगास (प्रकाश), ३३ चोजुगी (विवाह पाटी), ३४ झगडो, ३५ रूपक और प्रतीक काव्य तथा ३६ गुण ।

(ख) प्रवृत्ति और वर्ण्य विषय की दृष्टि से-(१) जाम्भाणी रचनाएँ- (क) जाम्भोजी विषयक, (ख) सम्प्रदाय विषयक – (२) पौराणिक रचनाएँ– (३) धर्म, ज्ञान, नीति और लोकोपयोग विषयक रचनाएँ– (४) अध्यात्म परक रचनाएँ– (५) ऐतिहासिक- अर्द्ध – ऐतिहासिक रचनाएँ– गद्य म पद्य मे– मरसिया या पीछोला– इसकी प्रमुख विशेषताएँ–अर्द्ध ऐतिहासिक- (६) लोक कथा और लोक जीवन विषयक रचनाएँ– (७) लोकभाषा विषयक

रचनाएँ। जाम्भाणी साहित्य वर्गीकरण,- विष्णोई लोकगीत। साहित्य क्षेत्र म विशिष्ट उपलब्धि- १ गेय पद परम्परा म,- २ डिंगल गीत,- ३ कवित्त (छप्पय),- ४ बारहमासा-बावनी - ५ आख्यान काव्य,- ६ पौराणिक चरित्रो म इनका विशेष महत्त्व- ७ जाम्भोजी-जाम्भोजी से सम्बधि प्रब ध और मुक्तक रचनाएँ- महत्त्व के अन्य कारण- इनके प्रेरणा स्रोत। सम्प्रदाय और साम्प्रदायिक विचारधाराओ के क्षेत्र म-धार्मिक-दार्शनिक विचारधारा। भाषा के क्षेत्र म- इतिहास के क्षेत्र म- शुद्ध ऐतिहासिक। सास्कृतिक- सामाजिक क्षेत्र म।

परिशिष्ट (सख्या २ से ११)- ९८५-१००६

- आरती। ३ हिंडोलणो (हीरान द, कवि सख्या ८६ कृत)। ४ जाम्भजी र भक्ता री भक्तमाळ। ५ मत्र (१-नवण, २-कलश पूजा, ३-पाहळ, ४ विष्णु या गुरु, ५-तारक या गुरु, ६-त्रालक, ७-धूप, ८-सुजीवण और ९-ध्यान)। ६ लोकगीत और हरजस (१-हिंडोळो-हर रो हिंडोळो, २-हालो सहियाँ ए, ३-मुरली, ४-मि दर)। ७ ताम्रपत्र और परवाने। ८-लिखत। ९-विष्णोइयों की जातियाँ। १० अ ग्रेज सरकार के आदेश। ११ साधु परम्परा।

स दर्भ सूची- १००७-१०१६

नामानुक्रमणिका- १०१७-१०५१

ग्यानी के हिरदै परमोधि आव, अग्यानी लागत डासू ॥ १२ २९, ३० ।
मच्छी मच्छ फिरै जळ भीतरि, तिह का माघ न जोयबा ॥ २६ १, २ ।
ओवड छेवड कोइय न थीयो, तिह का अन्त लहीवा कंमा ? ॥ २६ ५, ६ ।
ऐस्य जार हिरद लोयण, अंधा रह्या इवाणी ॥ ७२ १२, १३ ।
जे कोई हो हो होय करि आवै, तो आपण होइय पाणी ॥ १०५ ७ ।
नूर थकै घट थूळ क्या राखौ, सवळ विगोवो खाटो ? ॥ ११६ ३ ।
मागरमणिया क्यों हाथि विसाहो, काय हीरा हाथि उसाटो ? ॥ ११६ ४ ।

—जम्भवाणी (सबदवाणी) से ।

आई लहरि समद की, मोती आया माहि ।
बुगला तो यों ही रह्या, हंसा चूणि चुगाहि ॥
पोहप बास, कामी सबद, मीन, पछी का माघ ।
हिरद दिसटि जे देखिय, पावत थाघ अथाघ ॥
मान बडाई बस की, करता है सब कोय ।
बूडो बस बडाइया, कोई हरिजन न्यारो होय ॥
हरजस, क्या, साखी कहो, कवत, छंद सिरलोक ।
परमानंद हरि नाव की, सोभा तींयो लोक ॥

—परमानन्ददासजी वणियाळ ।

दूसरा भाग

खण्ड ३

विष्णोई साहित्य

अध्याय ८

विष्णोई साहित्य

१ तेजोजी चारण (विक्रम सवत १४८०-१५७५)

इनका जन्म लाडणू के पास कसूम्बी नामक गाव मे सामोर शाखा के चारण जतसी के घर हुआ था। इनके छोटे भाई का नाम माडण था। मोहिलो और सामोरो का सम्बन्ध बहुत प्राचीन काल से, जब से मोहिला ने छापर-द्रोणपुर लिया, चला आ रहा था। ये ही उनके पोळपात बारहट थे। जतसी का विरुद "दादा" था और वे अपने समय से बहुत ख्याति-प्राप्त व्यक्ति थे। राणा माणकराव मोहिल का उन पर कहा हुआ यह दोहा प्रसिद्ध है —

सिरे मोड सामोरडा, ज्यारी होड न किणहू होय।
चकव आख चारणा, जत कसूबी जाय॥

माणकराव के दो पुत्र थे-सावतसी और सागा[1]। सावतसी के पुत्र राणा अजीत मोहिल जो छापर-द्रोणपुर के शासक थे, तेजोजी को बहुत मानते थे। कहा जाता है कि अजीत का विवाह जोधपुर के राठौड राव जाधाजी की पुत्री राजाबाई के साथ इन्होंने ही तय करवाया था। जब अजीत जोधपुर के राठौडा द्वारा मार डाले गए तो इन्हाने उनको धिक्कारते हुए यह दोहा कहा था —

बेसासो मति राठवड, हुवैय घणां हराम।
पातरिया धी हेत पितु, किसा सराहां काम?

अजीत के मारे जाने के कारणो के सम्बन्ध मे दो मत हैं। नणसी[2] और ओमाजी[3] के अनुसार राव जोधाजी ने मोहिलवाटी के लोभ के कारण अजीत को छल से जोधपुर म मारना चाहा था, किन्तु वहा योजना सफल न होने पर बाद म उनका पीछा करके युद्ध किया जिसम वे मारे गए। रेउजी[4] और आसोपाजी[5] के अनुसार उनकी उद्दतता के कारण ही राठौडो ने उनका बध किया। तेजोजी के इस दोहे से नणसी के कथन की पुष्टि होती है और इस कारण इसका ऐतिहासिक महत्त्व भी है। लाडणू के पास दुजार गाव म अजीत ने वीरगति प्राप्त की थी। वहा अब उनकी एक छतरी बनी हुई है तथा वे "दुजार के जूझार" या "भरू" नाम से प्रसिद्ध हैं। लोग "भरू" को मानते भी हैं। तेजोजी ने अजीत की मृत्यु पर अत्यन्त मार्मिक मरसिये कहे थे। इनसे मोहिलो और सामोरो के पुरातन सम्बन्धों का भी पता चलता है। चार दोहे ये हैं —

१-नणसी की ख्यात, भाग ३, पृष्ठ १५८, जोधपुर, सन १९६४।
२-वही, पृष्ठ १५८-१६६ तथा 'ख्यात', भाग-१, पृष्ठ १६०-६६, काशी।
३-जोधपुर राज्य का इतिहास, प्रथम खण्ड, पृष्ठ २४४, सन १९३८।
४-मारवाड का इतिहास, प्रथम भाग, पृष्ठ ९७, सन १९३८।
५-मारवाड का सक्षिप्त इतिहास, पृष्ठ १९०।

अजीत एकणि आय, बाय दिगायण बोयणां।
साळ कटारी साय मेग पुकाय'र म्हासने ॥ १ ॥
साजदोर येताज, आज तोह बिण अयपती।
तिण न घगसण ताज, अजीत पूठो आय रे ॥ २ ॥
सागाई मन सोरां, जोरां हूं थप थप जग।
मोहिल सामोरां, गातो रिहार आवज ॥ ३ ॥
मेटि मुरां मरजाद रतन रळायो रज वणां।
अजीत थारी आव, सदा काळजो साळसी ॥ ४ ॥

इनके पुत्र जसराजजी (जगरूपान) थे, जिनको सवत् १५४४ म लाडणू के नागक मोहिल जयसिंह ने लाडणू गांव म, १२ बीघा बाडी मकान के लिए तथा १५०० बीघा धरती प्रदान की और तद् विषयक ताम्रपत्र भी दिया था। (द्रष्टव्य—ताम्रपत्र का चित्र)।

तेजोजी अपने समय के बहुत ही मान्य और प्रसिद्ध व्यक्ति थे। इनके समकालीन अनेक व्यक्तियों न इनकी प्रशसा म दोहे कहे हैं। छापर—द्रोणपुर के नामक मोहिल वच्छराज सागावत, जो अजीत के भाई होत थे, का यह दोहा द्रष्टव्य है —

खरो कवेसर लड मे, म्हारी आंख न आय और।
नेहो तेजळ जत रो, सत साचो सामोर ॥

इसी प्रकार ढोली जीवणदास खरळवा का निम्नलिखित दोहा भी बहुत प्रसिद्ध है[1]—

मांडण बोसळ सा मरद, इळ पर मिले न और।
तेजळ दादा जतसी, सत साचो सामोर[1] ॥

खरळवा ढोली सामोरा के साथ ही खारळा गाव से मोहिलवाटी म आए थे। ये केवल सामोरो के ही याचक रहे हैं।

जाम्भोजी न जब सम्प्रदाय का प्रवत्तन किया तो ये भी अनुमानत सवत १५४३ म उनके शिष्य बन कर विष्णोई होगए। स्वय कवि की रचनाएँ तो इसका प्रमाण हैं ही, अनेक बहि साक्ष्य भी इसकी पुष्टि करते हैं। सम्प्रदाय म इनकी बहुत प्रतिष्ठा थी जो आज पयन्त चढती ही आई है। ये सम्प्रदाय के प्रामाणिक व्याख्याता माने जात थे। इस क्षेत्र मे दूसरा स्थान ऊदोजी नएण को प्राप्त था। वील्होजी कृत "कथा जसलमेर की" मे इसका उदाहरण मिलता है। जसलमेर के रावळ जतसी ने 'जत-समन्द' तालाब की प्रतिष्ठा के अवसर पर जाम्भोजी को अपने यहा बुलाया था। अन्य साथरियो के साथ ये भी थे। वासणपी गाव म रावळजी 'जमात' की अगवानी के लिए आए। उनके साथ अन्य लागो म एक ग्वाल चारण भी था। उसने विष्णोई सम्प्रदाय और जाति सबधी कई प्रश्न किये जिनका अत्यन्त युक्ति-युक्त उत्तर इन्होंने दिया था (देखें- 'वील्होजी')। सूर' के चौवीस व्यक्तियों म इनका नाम १५ वा है। अनात कवि कृत 'जाभजी र भक्ता री भक्तमाळ' (प्रति सख्या-२१६), हीरानद के 'हिंडोळणो (दोनो परिशिष्ट म उद्धत), हरिनन्द के "हरजस" तथा सुरजनजी

१—सम्मेलन पत्रिका, भाग ५२ सख्या १, २, शक १८८८, म लेखक का ढोली जीवणदास खरळवा और उनकी रचनाए शीर्षक निबन्ध।

की "कथा परमिध" में अन्य विष्णोइ चारण कवियो के साथ इनका उल्लेख किया गया है[1]। सुरजनजी ने एक अन्य गीत मे कतिपय प्रसिद्ध विष्णोई कवियो की रचनाओ की विशेषताएँ बताते हुए इनकी "कवि-वाणी" की मुक्तकण्ठ से सराहना की है —

"वाता वील्ह तेज कवि बाणी, सुरेजन गीत धरम सुवाति"(-प्रति स० २०१)। इसकी पुष्टि अनात कवि कृत एक कवित्त की "बारहट तेजसी जाणि, कही कथा कवि बाणी" पक्ति से भी हाती है[2] (प्रति स० ३८६)। साहबरामजी के अनुसार इनका कुष्टरोग जाम्भोजी की कृपा से, जाम्भाळाव म नहान से दूर हुआ था और तब ये उनके शिष्य हुए[3] —

कहै तेजो प्रभु कृपा करहू। मेरो कुष्ट दया कर हरहू।
कहै गरू जभसागर न्हावो। न्हावतहो कचन होय जावो।
तेजो कहै सब तीर्थ न्हायो। ज्यू ज्यू कुष्ट अधिक दसायो।
या थळ न्हायन कू मन भएऊ। तब लोगा न्हावण नहि दएऊ।
कहै जभ अवही जा न्हावहू। न्हावत ही तव कुष्ट गवावहू।
इतनां सुनत जभसर पसा। भएऊ मात क जनमेऊ जसा।
सकल जमातहि तन दरसांनां। भएऊ विसुध उएऊ जस भांनां॥ १२६॥
अब अस्तुती करहैं तेजो। सुध भऐ नहि लागी बेजो।
अब प्रभु कृपा करो जस भायो। अपनै जन कू सरणै रायो।
अस कहि चरन प्ररेउ गहि ध्याई। पाहि पाहि सरणै जभराई॥

उपयु क्त कथन के आधार पर तेजाजा का काल निर्धारण किया जा सकता है। कह आए हैं कि मोहिल अजीत सावतसिहोत का विवाह राव जोधाजी की बेटी से इन्होंने तय करवाया था। यह विवाह सवत १५१७ म हुआ था[4] और अजीत का स्वगवास हुआ था सवत १५२१ मे[5]। वच्छराज सागावत सवत १५२३ में राठौड़ा द्वारा मारे गये थे[6]। वच्छराज द्वारा कथित दोहा इनकी प्रसिद्धि का प्रमाण है। इनके द्वारा उक्त विवाह तय करवाया जाना और उल्लिखित मरसिये इनकी प्रौढ बुद्धि के प्रमाण हैं। इस प्रकार, यदि सवत १५१७ तक इनकी आयु ३५-३७ साल की मानें, तो इनका जन्म सवत १४८०-८२ ठहरता है। इसकी पुष्टि इनके पुत्र जसूदानजी को मोहिल जयसिंह द्वारा दिए भूमि-सम्बन्धी ताम्रपत्र से भी होती है। यह ताम्रपत्र सवत १५४४ का है। बोबासर के सामोरों मे प्रसिद्ध है कि इस समय जसूदानजी की आयु ३८-४० वर्ष की थी, जो ठीक प्रतीत होती है। इस हिसाब से जसूदानजी का जन्म सवत १५०४-०६ के आसपास हुआ। इस समय यदि तेजोजी की आयु लगभग २४-२६ वर्ष की मानें तो उक्त कथन ठीक ही प्रतीत होता है।

१-सबधित उदाहरण 'अल्लूजी कविया'' (कवि सख्या ३८) के अन्तगत देखें।
२-पूरा 'कवित्त' 'अल्लूजी कविया' (कवि सख्या ३८) के अन्तर्गत देखें।
३-प्रति सख्या १६३, जम्भसार, प्रकरण १४, पत्र ४७-४९।
४-प० रामकरण आसोपा मारवाड का सक्षिप्त इतिहास, पृष्ठ १८७।
५-(क)-वही, पृ० १८९-१९० तथा (ख)-रेउ मारवाड का इतिहास, प्रथम भाग, पृ० ९७।
६-रेउ मारवाड का इतिहास, प्रथम भाग, पृष्ठ ९८।

संवत् १५४४ में पिता के रहते जगूदानजी को जमीन मिलना इस बात की ओर भी संकेत करता है कि तेजोजी उस समय तक गृहस्थ त्यागकर विश्नोई-साधु बन चुके थे[1]। कोल्होजी की उपयुक्त कथा से कवि का संवत् १५७० तक जीवित रहना प्रमाणित होता है, क्योंकि जसवन्द का निर्माण संवत् १५७० में हुआ था[2] और उस समय ये जाम्भोजी के साथ वहां गए थे। उसके पश्चात् ये कितने वर्ष और जीवित रहे, इसका पता नहीं चलता किन्तु आगे उद्धृत इनकी एक साखी और गीत (संख्या ८) से यह ध्वनित होता है कि सम्भवतः जाम्भोजी की विद्यमानता में ही ये स्वर्गवासी हो गए थे। यह समय संवत् १५७०-७५ अनुमानित होता है। कवि की वंश-परम्परा तो नहीं, किन्तु इनके छोटे भाई माडणजी की प्राप्त है[3]।

रचनाएं – इनकी निम्नलिखित रचनाएं प्राप्त हुई हैं –

(१) छन्द-४५ (गाथा-५, "छन्द"-२४, दोहे-२, कवित्त-१४)[4]

(२) गीत-१२[5]

(३) साखी-१ (१७ पंक्तियां)[6]

१-ताम्रपत्र में अंकों में १०५० और अक्षरों में 'पनरासो" देख कर उस पर सन्देह किया जा सकता है किन्तु जांच करने पर उसमें लिखित बात सत्य सिद्ध हुई है। १५०० बीघा धरती अब उनके वंशजों के निकटतम दो सम्बन्धियों में बटी हुई है। १२ बीघा वाला खेत अब प्राय खंडहर होगया है। जाडणू में एक टीला अब भी "सामोर धोरा" कहा जाता है। उल्लेखनीय है कि संवत १५४४ तक जाडणू परगना राठौड़ों के अधिकार में नहीं रहा प्रतीत होता है।

२-(क) कविराजा श्यामलदास वीरविनोद, पृष्ठ १७६२।
(ख) चारण रामनाथ रत्नू इतिहास-राजस्थान, पृष्ठ २५०।

३-जतमीजी (मोहिल माणकराव के समकालीन)

तेजोजी (१४८०-१५७५) → जसराजजी

माडणजी → लू मोजी → राणोजी → जसीजी (जसदानजी) → खतसीजी → चापसीजी तथा

मेहाजळजी → मिम

-सीजी → ... जा → ऊदोजी → दुरगोजी → वीरदासजी → हरासिंहजी

जी → जुवानसिंहजी → सुजाणसिंहजी → चतर

(जो

आयु-लगभग५५ वर्ष)।

४

ही प्रतियों में लिपिकारों ने इन दोनों (छन्दों

१६२ की है जा → अनुष्टुप श्लोक के

(४) हरजस–१ (९ दोहों मे)[1]

(५) मरसिये (इनका उल्लेख पहले हो चुका है)।

४५ 'छन्दों' के सम्बन्ध मे ये बातें द्रष्टव्य हैं–

(क) कवि ने १ गाथा (या दोहा), ४ "छन्द" तथा १ कवित्त के क्रम से ३७ छन्दों के ६ कुलक बनाए हैं (प्रथम कुलक म आदि म २ गाथा होने से)। प्रथम ४ कुलकों के पश्चात बीच म ८ कवित्त हैं।

(ख) प्रत्येक कुलक मे जब छन्द बदलता है, तो पूर्व छन्द के अन्तिम कुछ शब्दों या अर्द्ध-पंक्ति की आगे के नवीन छन्द मे पुनरावृत्ति होती है। इस प्रकार छन्दों की एक शृंखला चलती है[2]।

(ग) प्रत्येक कुलक के प्रत्येक छन्द-समूह के चारों छन्दों मे एक-एक पंक्ति की टेक लगती है। ऐसी टेकवाली पंक्तियां क्रमशः ये हैं—

(१) झभेसर जती जती झभेसर, सति नारायण तो सरणौ।

(२) कर जोड़ि तुझि आगळि करणीगर, साध असा सलाम करै।

(३) अवतारि अचभ झभ वळि आयो, लिखी न प्रापति केम लहै।

(४) आयो गर झभ अचभ अजूनी समू, माया रूपी महमहणों।

(५) ताय धणीय तो जस कव साचवता, कर जोडै सलाम करै।

(६) करतार क्रम कायम करणीगर, हुता तहिया कैम हुऐ।

(घ) प्रत्येक अंतिम कवित्त म कुलक के शेष सभी पूर्व के छन्दों का कथन सार आ जाता है।

(ङ) एक छन्द म सत्यामन्त्र की कतिपय पंक्तियां लेकर कवि न इस मन्त्र की सर्वोपरि महत्ता प्रदर्शित की है–

१–प्रति सख्या ४८ (ग) (४) तथा २२७ (घ)

२–जमे-गाथा-सोसह साम्य तुझि सुभराज, जिए पथरि जळ क जीपाज।
लोपे समद लकागढ लाज, मेलि रीछ रावण का राज।
छद–देवजी रावण का राज लोपण लाजु कजण पाज वल्य छळणौं।
कवि सारण काज तो सुभराज आप अकळ अवरा कळणौं।
आदेस अभेव अछेव अगोचरि, अ नत कळा सिघ उधरणौं।
झभेसर जती जती झभेसर, सति नारायण तो सरणौं ॥ १ ॥

× × ×

पूगी मन आस माहे कवळास होयसी वासौं हरि पास।
गुर करिसी वासु तोरा दास, तव तेज तारण तरणं ॥ ४ ॥
कवत–तव तेज तो मरणि असर रावण उथपण।
तव तेज तो सरणि लक वोहभीपण थपण।
तव तेज ता सरणि वार धन वीप्रन अपण।
तव तज तो सरणि अ नत सभतासिघ अपण।
मन मुध्य भाव मन महमहण, तव तज तारण तरण।
सब आप्य उ णि अनेक सब समथ झामाजी तो सरण ॥ १ ॥

—प्रति सख्या २०१ से।

आगे के समस्त उद्धरण इसी प्रति से दिए गए हैं।

विसन विसन भणि विसन वखाणो, अवगति साषी उपरणो ।
देवता न कोनु न वगु कोनु, पारस लोनु न गवणो ।
पेलो फिर आणी तारण पाणा, मार मेरे तिज रहणी ।। आयो गुर जम-देव ।

इन छन्दों में प्रकारान्तर से जाम्भोजी को भगवान मानते हुए उनकी सब-शक्ति मत्ता, महिमा, उनके उपदेश-मार्ग, ज्ञान, शरीर आदि के प्रताप, विष्णु-जप, दुर्गुण, दुष्कर्म और पाखण्ड-त्याग, सत्कार्य करने आदि का वर्णन किया है। कवि की दृष्टि में ऐसा गुरु और उनका "पहळाद-पंथ" भाग्य से ही प्राप्त होता है –

लिखी न प्रापति केम, गोम्यंद कर जाय न गाय ।
लिखो न प्रापति केम, पितर मूता मन लाय ।
लिखी न प्रापति केम, पाट कोर की पहिरय ।
लिखी न प्रापति केम, कुण थोर का तहिरय ।
मूल हुय दोरहा कुरट पहळाद तणो थाटे वहैं ।
अवतार अचभ आभ पळि आयो लिखो न प्रापति कम रहैं ।

इस कारण उन्होंने तो इस "विसन" को पूर्णरूपेण आत्म-समर्पण कर दिया है। आत्म-समर्पण की यह भावना जाम्भोजी की विद्यमानता में सहज ही देखी जाएगी –

जिसो चाल चालव, चाल पणि तसो चालू ।
जिसा बोल बोलव, बोल पणि तसा बोलू ।
जिस मारग तू मेले, जीव तिह मारग जाय ।
सरस तुस समरथ, प्रांण प्राणियो न माव ।
बोलतो विसन वाचा अविळ, सुणो साम्य सेवग कहै ।
महमहांण मन माहरो मुक्व, तू राख तेम रहै ।।

तेजोजी के कवित्त और गीत बहुत प्रसिद्ध हैं, वे इन छन्दों के विशिष्ट कवि माने जाते हैं। सम्प्रदाय में इनकी वाणी का बहुत आदर है। इसका पता इसी बात से चलता है कि इनके निम्नलिखित कवित्त को "गूगळ"[1] या "धूप" मंत्र माना गया है –

जसण[2] 'तत झणकार, ताळ भागळ तमक सुर ।
तवन तूर ततहैं, घट रणक घण घुघर ।
झुण वेद जोतगो, हुवं सेवगा सुणो सिर ।
पडं भय[3] पातिगां, गुडं नीसांण गहर सुर ।

१–(क) प्रति संख्या २०८ (च), २५६ (ङ), ३२५ (घ) तथा ३४८।
(ख) स्वामी ईश्वरानन्दजी गिरि जम्भसंहिता, भूमिका, पृष्ठ ८ संवत १९५५
(ग) स्वामी सच्चिदानन्दजी श्री जम्भ-गीता भूमिका, पृष्ठ २०, संवत् १९८५।
२–३ ऊपर १ (क) संदर्भ की सभी प्रतियों तथा प्रति संख्या २३ में इनके स्थान पर क्रमश 'रसण', 'भग' पाठ है।

कव तेज पयप जोडि कर, कवत[1] गीत भाखत गुण ।
भगवान भगति भव भजिवा, महलि पधारे महमहण ।

गीत, हरजस, साखी

कवि के निम्नलिखित १२ डिंगल गीत उपलब्ध हुए हैं —

(१) साध सुचियार ससार सुमारगी सुवरणी करे बोले सुबांणी (५ दोहले)
(२) चेति रे चेति आळस म करि आतमा, माग्य मन महमहाण मुकति दातार (५ दोहले)
(३) करिस कवज कारणी जीव जम पारधी, दीय फुरमाणि ज बारि देसी (१० दोहले)
(४) हुव हार्यिये हीवरे नवे जूने नरे, पासरे प्राण क्यों थीय न थावै (४ दोहले)
(५) उत्तिम उदास गह कोई गुर मुखी, देखि दुनिया विचार तिह वेदू (९ दोहले)
(६) कलमू करि आदे कुराण कतेबू कालिह मरेसी फरमाण कबूल (५ दोहले)
(७) रातो रहमाण रसूल रीदा मुच्य, जीवन को परवाण जुवो (४ दोहले)
(८) मना फक मागती यक लीज, कलाल्यक कुदडे डीग मारो (५ दोहले)
(९) सगे सासरे पीहरे ममसळे सीये सगे कुलखणे कुपते त्याग कीधो (३ दोहले)
(१०) सुणि काय कलाम अलाह का इहनिस, और महमद का सुणि कलाम (४ दोहले)
(११) असो एक दिन आखरे तो तेरो आयसी, तु इ वाट पसळाद वहिसी (१४ दोहले)
(१२) लेखो सतगुर माग्य जिण दिन लेसी, प्रीव सोइ दिन गायो (६ दोहले)

गीता म मृत्यु की अनिवार्यता, ससार की नश्वरता, तत्कालीन स्थिति, हरि-प्रेम, विष्णु-नाम-स्मरण, आत्म-दर्शन आदि विषयों का भक्तिभाव भरा वर्णन है। समस्त गीता के अन्तस म भक्ति और शान्त रस की अन्त सलिला बहती है। इनके पढने पर अधो लिखित कतिपय बातों की ओर सहज ही ध्यान आकृष्ट होता है —

(क) आचार-व्यवहार और धर्म-कर्म हीन समाज तथा धर्म के नाम पर चलने वाले पाखण्डों का बडी निर्भीकता पूर्वक यथार्थ वर्णन। लोगों की पतितावस्था देखकर कवि को मर्मान्तक वेदना होती है और उनके उद्धारार्थ वह सहज ही अपने पथ की ओर उनको आकृष्ट करता है। ऐसे लोगों के मुह पर ही वह उनको तस्कर कहने से नहीं चूकता। दो उदाहरण द्रष्टव्य हैं —

(१) मुसळमाणी ध्रम को को नहीं मुसळमान, हिंदव ध्रम न कोय हींदू ॥ १ ॥
काछ न वाच निकळ क नर को लहो नारिका पतीभ्रता सती काई ।
कुबधिये क्रम छनाळ घरि घरि घणी कोम कहि जाति चिनाळ काई ॥ २ ॥
रहीं एकादसी न को रोजा रहैं, अ ते घणा लघणा कर अग त्यानें ।
धीग अपोपणो छाडय बैठा ध्रम, मन मुखी किसी ही मुसळमाने ॥ ३ ॥
चारण आचारे कोई नहीं चारण, भाट आचारे न कोई भाट ।
ध्रम आपोपणो छाडि अध्र मियें, बाणिये बाभणें परहरी वाट ॥ ४ ॥

१-पिछले पृष्ठ के १ (क) सदर्भ की चारों प्रतियों म इस अर्द्ध-पक्ति के स्थान पर 'आसा पूरण अभमण" पाठ है, जो प्रति सख्या २३ और २०१ मे इसके ठीक पूर्व के छन्द का पाठ है।

एक उसताज में बीठ गुर मांहरो, असोई कुनी मां कोय न दीठो।
आपर पथि अनेक नर आणियां, पारक पथ किणही न पेठो ॥ ५ ॥
गुहगारे गिवारे समक्रे यद तांहरे, कुलराणे कुपाते लवक्कार लेलो।
मुहे वायो कियो मुसाळमांणी तणो, मन त काफरी अन मेल्हो ॥ ६ ॥
तेजियो तांहरो देगि रस तांहरो, काम मतो भावतो कांय करियो।
पारके आंगणे घरि पर मींदरे, भील मांगी न पेट छलियो ॥ ९ ॥ -गीत सख्या ५।

(२) परनदा करे पस घरि पारके, हत्या पणि पक्कि लीय हाथे।
खुदाय नी दरग याज्य पायचा, तांह मांनवियां तणे मायें ॥ ३ ॥
नीगरव नीगरर की कुछ होय नेकाइ, नहेज्ये न्याय अधरम न दीठा।
आपरो भूठ वखांण सुणि आदमी, पूलिय तके फारीक फीटा ॥ ४ ॥
श्रवणे छदी सुण अजुगतो आपणीं, हय हय न कर भत त्याग।
ताह तसकरा तण मुहि क्हे कव तेजियो, जूत घण उडिस्य वजस जाग ॥ ५ ॥
-गीत सख्या २।

एमा खरा और स्पष्ट वर्णन १६ वी शताब्दी मे किसी चारण कवि न डिंगल गीतो मे नही किया। इसी सदभ म निम्नलिखित कवित्त भी द्रष्टव्य है, जिसम मात्र पेट के लिए दूसरो की प्रशसा करन वाले कवियो पर गहरा व्यग्य किया गया है। उल्लेखनीय है कि यह सकेत चारणो के लिए है, और कवि स्वय भी चारण है —

सुरमेर सम थड, मीनख लोभ खडाए।
पेट काजि पुनवत, बोहत छदा बोलाए।
जे जोभे जगनाथ, वीण अपरठो कथावे।
गीत कवत छद ग्यांन, सरस सरळ सुर गावे।
वीनती विमन वाचा अचळ, सुणे सांम्य सारगधर।
उचर तेज तोह चारनी, राख राज्य गुर सथर।

(ख) शन शन आने वाली मृत्यु, उसकी शक्ति जरा तथा सासारिक पदार्थों की नश्वरता का मार्मिक और प्रभावशाली वणन। इसी पीठिका म यत्र-तत्र सतगुरु जाम्भोजी के "सबद" सुनने सुकृत और जीवन्मुक्ति प्राप्त करन आदि का भी उल्लेख है। कवि की दृष्टि मे मृत्यु को हरदम याद रखना अनेक बुरे कर्मों से वचना है। कतिपय उदाहरण द्रष्टव्य हैं।[1]

१-(क) मरण मदवाड ता जोव डर जेतलौ, पाप त एतलौ डरे प्राणी ॥ १ ॥
अधरम ता ओसरे मरण पहलौ मरे, जीव जरणा जने जपे जाणी।
कठण कळिकाळ मा नीर होय निरमळो, परान सबळौ करे प्राणी ॥ २ ॥
सबद सतगुर तणा श्रवणे साभळो पाल्य निया दया आणि प्रतीति
माल मा माल सुम्यागता आपणा प्यारो सोय परचिय विसन प्रतीति ॥ ३ ॥
पछ हाथ पग धूजस्य हीण पडिसी हीय हुक्म फुरमाणि होसी हकारो।
आवियो अ ति उतावळो आळसू, प्राणियो छाडिसी सो पसारो ॥ ४ ॥
(शेषाश आगे देखें)

(ग) ऐसी स्थिति मे मानव को चेतावनी देना और उसके चरम प्राप्तव्य-मोक्ष-साधन की ओर प्रेरित करना। उदाहरणार्थ, कवि के बहु-प्रचलित जागडा गीत (सख्या-१२) के तीन दोहले देखे जा सकते हैं —

लेखो सतगुर मागि जिण दिन लेसी, ग्रीब सोई दिन गायो।
वधवाडी सू कौल कियो छो तो दिन आयो जी आयो ॥ १ ॥
मरण चीतारि म डरि मरण त, पाप ता डरि ऊ प्राणी।
जे वयों तू अधरम करिस अधारें, बीगुचिस रण विहाणी ॥ २ ॥
खालिक मारि जीवाळ खालिक, करे डबर करिसी कहार।
नीगरब होय नीगरूर नीकुछ होय, अब न करि गोवार ॥ ३ ॥

(घ) सहज भाव से आत्म-निवदन और स्वीकारोक्ति। ऐसे आत्मपरक डिंगल गीत कम ही मिलत हैं। धातव्य है कि कम करत-करते ही कवि न अपना काय-साधन कर लिया है। इस सम्बन्ध मे चौथा गीत नीचे दिया जाता है —

बीजा सब फोटि करि बारहट, हू हरि रो बारट हुवौ ॥ १ ॥
हू बारट हुवौ हरजी ताहरो, जीनस्य जीनस्य उपगार जुवौ।
काया रतनव नूर कापडा, हूरा तुरी वराक हुवौ ॥ २ ॥
करम करतो काम सीध काया, सीध वाच सीध वरत वखाण।
सरबस वाद सतोप सरब सुख, सारदा सुणौ सोरिद सु भेयाण ॥ ३ ॥
जहमति नहीं नहीं जोख्यौ, जुरा नहीं जम नाहीं जहा।
करम सुफाति दवारे जह कलमू, ताजदीन बारट तहा ॥ ४ ॥

इससे कवि की भौतिक सम्पन्नता का भी पता चलता है।

नीगर्म्यौ ना है जोवन पगि जायसी, आविमी आदमी जुराह एह।
उचर तेज अग्यान असौ नही, काया है जोजरी जाम केरू ॥ ५ ॥ (-गीत सख्या १)

(ख) अमत अचेतन चेत न काय आदमी, आव नि न्नि घट मग्गण एसी ॥ १ ॥
मग्गण विसार काय मानवी मारयस्य, एक दिन आद करि मरण आछ।
आज आखर तेरो काय तोमु न करि प्राणिया और तू करिस पछ ॥ २ ॥
महलिये मीत्रिये बेट न क्यौ बघवे सगपणे समधिय जोवो सीणाव।
आपरे तो साथि नेकी वदी आव्यसी, नफर गुलाम न को साथि आवै ॥ ५ ॥
बाळपणे गयो जोवन गयो आवे जुरा, ज्यों वराती पडा परी पेलौ।
मुवारे मुवारे मुवारे मुरेपौ, मारिस्यौ म्रति अन्याय मेरहो ॥ ६ ॥
आयो पगि एकलो अछ पगि एकलो, जायस पण एकलो जीतवा जना।
भोम्वग भुरे न देव्य निसप्रातिये, धीय पूता घरा भारेजा घना ॥ ७ ॥
सत्रीये सपुत्रे बघवे समैत्रे सगे न क्यौ समरये न हुव सामासि
वाट वमना पड न को वाट वाहर चड ती वमती तणौ विसो वेसासि ॥ ६ ॥
पारको माल पमाळ कीज नही कुलपणो न होयज मारीज्यस्यौ कालिह।
उचर तेज न सोपिय आतमा, चोरटा नचडा तणी चालि ॥ १० ॥
(-गीत सख्या ३)

(८) मुसलमान या मुसलमानी प्रभावान्तर्गत लोगों के लिए अरबी-फारसी बहुल शब्दों में उनकी धर्म-चर्चा के साथ अपना धर्म-कथन। स्मरणीय है कि जाम्भोजी के समय में अनेक छोटे-बड़े मुसलमानों ने भी विष्णोई धर्म ग्रहण कर लिया था जिनमें कई तो बहुत अच्छे कवि हुए हैं। तेजोजी का भाषा, भाव और धर्म सहिष्णुता का यह प्रयोग महत्व पूर्ण है। उदाहरण के लिए यह गीत देखिए —

कुफर सु दोसती करिस न कोजिय, जोणि इ मान बधों उपज ज्यान।
कु नी महि दीन असलाम सु दोसती, अति घणी करिज्यो होय आसांन ॥ २ ॥
अलाह का बदा औलादि आदम की, उ मते महमद की च्यारि इमांम।
आयतू दोसू रकातू सलातू, ममहब मांहि दीन सलाम ॥ ३ ॥
तयस अलाह की तू करि तेजिया, मुस्तफा मांय महमद मांय।
परहरे पुज मां पुजीय पाप छ, भाखियो साहिब भूतलांय ॥ ४ ॥
(-गीत सख्या १०)

इसी प्रकार की दूसरी रचना राग सोरठ मे गेय एक "हरजस" है। प्राचीनता, भाषा और गेय पद-परम्परा की दृष्टि से इसका विशेष महत्त्व है। उदाहरण स्वरूप आदि के तीन छन्द द्रष्टव्य हैं[1]।

भक्ति भाव, भाव-गाम्भीर्य, आत्मनिवेदन और स्वानुभूति की अत्यन्त सजक शान्त रसात्मक अभिव्यक्ति नीचे लिखी "करणा की" साखी में देखते ही बनती है। इसकी १२ से १५ पंक्तियों में जाम्भोजी सम्बन्धी साम्प्रदायिक मान्यता का उल्लेख है और एकाध स्थल पर किंचित् परिवर्तन के साथ सबदवाणी की अर्द्ध-पंक्तियाँ भी आई हैं। प्रतीत होता है मानो थोडे से छोटे छोटे शब्दों मे कवि ने अपने समस्त अनुभव का सार इसमे व्यक्त किया हो -

साच तू मेरा साई, अवर न दूजा कोई ॥ १ ॥
जिण आ उमति उपाई, सिरजणहारा सोई ॥ २ ॥
साचां सेती सनमुखि, दुमनां सेती दोई ॥ ३ ॥
खालक सू छांन, कित रहिय छिप जाई ॥ ४ ॥
करता न सूझे, सरब उपाई ॥ ५ ॥
किहूंका (म)द्दयर थावो कहूंका वहण र भाई ॥ ६ ॥
सब देखतां चाल्या, काहु की कुछि न वसाई ॥ ७ ॥
हंसा उडि चाल्या, वेलडिया कुमलाई ॥ ८ ॥
हंसा उडण वारी, सुकरत साथि सखाई ॥ ९ ॥

१- सरवर श्र विया सुळतान, सुळतान श्र विया, सुळतान सहज सु स्वाम्य।
तकरीर मत्र लाज केसी पडीय काम ॥ १ ॥ टक ॥
दुनिया नहद हजार आलम, जाए रचना जोय।
दोसती तरी नवी महमद, सिरजिया सब कोय ॥ २ ॥
पाषाण वण तिण प्रथमी, सीस तार श्र वर सूर।
मोहबति तरी नवी महमद, सिरजिया सद्र क सूर ॥ ३ ॥ -प्रति सख्या ४८ से।

इण सुगर मोमिण, सत की पाळ बधाई ॥ १० ॥
आवलो खोजो, ल्यलो खोज समाही ॥ ११ ॥
कोडि पांच पहुंता, सागी यारा जाही ॥ १२ ॥
कोडि सात पहुंता, हरिचंद सू सचियाई ॥ १३ ॥
कोडि नव पहुंता, अब बारां वारी आई ॥ १४ ॥
साह सही सू आयो, यळ सोरि एकळवाई ॥ १५ ॥
निरगुण सुरूप निरजण, अलख न लखियो जाई ॥ १६ ॥
दीन ताजदीन बोले, साह तेरी सरणाई ॥ १७ ॥

कवि ने अपने लिए-तेजो, तेज, ताजदीन बारह्ट, दीन ताजदीन, कवि तेज, कव तेजियो, तेजियो, तेजिया आदि अनेक नामो का प्रयोग किया है।

कवि की समस्त रचनाऐं आध्यात्मिक और शातरसपरक है। इनसे उसके गहरे सासारिक ज्ञान, अनुभव और निरीक्षण-शक्ति का पता चलता है। जिस विश्वास, दढ़ता और स्पष्टता से उसने अपनी बातें कही हैं, उसके मूल म उसकी आत्मिक-शक्ति, तत्त्व-प्राप्ति, अनुभव-परिपक्वता और भगवान पर अटूट विश्वास झलकता है इसलिए इनका प्रभाव स्थायी और शोधक है। बेसुध पडे हुए व्यक्तियो को झकझोर कर चैतन्य करना इनका एक बडा गुण है। इससे मनुष्य स्वत ही अपने आप पर विचार करने को बाध्य हो जाता है। कवि की यह सबसे बडी सफलता है जो साखी और गीतो म देखी जा सकती है। राजस्थानी साहित्य म अनेक दृष्टिया से साखी, हरजस और गीतो का विशिष्ट महत्त्व है।

२ समसदीन (विक्रम सवत १४९०-१५५०) साखी-२

ये नागौर के काजी थे। प्रसिद्ध है कि राव दूदा वाली घटना[1] के पश्चात् सवत् १५१९ मे ये सर्व प्रथम जाम्भोजी की ओर आकृष्ट हुए और सवत १५४२ मे दुर्भिक्ष के समय तो उनके कार्यों और सिद्धि से प्रभावित होकर एकबारगी उनके भक्त बन गए। इसी सवत म जब जाम्भोजी ने सम्प्रदाय-प्रवत्तन किया तो ये भी 'पाहळ' लेकर उनके शिष्य बने। ये ही प्रथम मुसलमान थे जो इस समय सम्प्रदाय में दीक्षित हुए। उसके बाद ये ७-८ वर्ष और जीवित रहे। उसी बीच अनेक लोग जाम्भोजी के शिष्य बने और "पाहळ लेकर पवित्र हुए"। कहा जाता है कि नीचे उद्धृत दूसरी साखी इन्ही लोगो को लक्ष्य कर कही गई थी, जिसकी इन पक्तियो से उपर्युक्त बात स्पष्ट होती है —

हसा हदी टोळी आव, सरवर करण सनेह ॥ ५ ॥
जांह की पाहळि पातिग नास, लहियो मोमिण एह ॥ ६ ॥

सवत १५५० मे या इससे कुछ पूर्व, दिल्ली मे इनका देहान्त हुआ। वहां कुतुबमीनार के पास कही इनको दफनाया बताते हैं। स्वर्गवास के समय इनकी आयु ६० वर्ष की कही

१-द्रष्टव्य-अध्याय ४, "जाम्भोजी का जीवन-वृत्त"।

जाती है। इस प्रकार, इनका समय लगभग संवत् १४६० से १५५० अनुमित होता है। विश्नोई-समाज के अतिरिक्त नागौर के मुसलमानों में इनका नाम अब भी गौरव के साथ स्मरण किया जाता है।

रचनाएं — इनकी दो "कथा की" साखियां उपलब्ध हुई हैं —

(क) तिथरो उतपति को राव, साईं राजा मन जपिये[1] । १९ पंक्तियां।

इसमें हरि-नाम-स्मरण, गुरु-वचन-पालन, "जुगत" में जाने, आचार-विचार और आहार की पवित्रता तथा सांसारिक नश्वरता को वर्णित करता हुआ कवि अगम और अथाह भव-सागर से पार उतरने के लिए 'स्वामी' को खेवट बनाने का अनुरोध करता है। उदाहरणार्थ ये पंक्तियां द्रष्टव्य हैं —

हे हरि दिल को साथ, जमल रळि मिलिय ॥ २ ॥
धरियो धरम जोग्य, अवघर परहरियो ॥ ३ ॥
अवघरि वडला रोग, आफरि नां मरियो ॥ ५ ॥
ज्यों ज्यों कस म्हारो साम्य, आग आग पग धरियो ॥ ६ ॥
देखि हरीड़ा बाग, चोरी मदा मां करियो ॥ ७ ॥
चोरी है अणराग, जीवड़ा म डरियो ॥ ८ ॥
ठाढो वेळू की रेत, बाबुळा पंथण घणां ॥ ९ ॥
वरसो आजो को राति, काल्हो का द्यौस घणां ॥ १० ॥
सायर लहरयां लेह, ऊंडो देखि डरां ॥ १४ ॥
सबळ छो जा पासि, सेइ मोमिण पार लघ्या ॥ १५ ॥
सबळ विहुणां चोर, कुरव तीर खन्धा ॥ १६ ॥
कुरव राति र द्यौस, घायला ज्यों कुरहै ॥ १७ ॥
अगर चदण की नाव, वडो म्हार साम्य सक्यो ॥ १८ ॥
बोले समसदीन, खेवट पारि लघ्यो ॥ १९ ॥

(ख) मीठा बोलो नुंवि चुवि चालो, न तोडो गुर सूं नेहा[2] । ११ पंक्तियां।

इसमें उदात्त गुण-ग्रहण, पाहळ लेकर पवित्र होने, शरीर की नश्वरता, अन्त में केवल अपनी करनी-नेकी-बदी के साथ चलने तथा अमृत के समान मीठे धर्म-ग्रहण करने का वर्णन है[3] । इस सम्बन्ध में कतिपय बातें उल्लेखनीय हैं —

१-प्रति संख्या-६८ (त) ५ ९४, १४१ १४२, १६१, २०१, २१५।
उदाहरण प्रति संख्या २०१ से है।

२-प्रति संख्या ७६ (ढ) ९४, १४१, १४२ १६१ २०१, २१५ २६३।

३-मोमिण होय स आपो मार, औरयां मारण केहा ? ॥
मोमिण होय स तुरी साध, मरियो दुसमण घात केहा ॥३॥
छनी सभा मा पडदो पाड, दोजखि जला दुसटी एहा ॥४॥
हंस चलत पिंड पडलो वास कळियळ केहा ॥७॥

(शेषांश आगे देखें)

कवि ने अत्यन्त कुशलता से अपने गुरु जाम्भोजी और विष्णोई सम्प्रदाय की श्रेष्ठता व्यंजित की है (प्रथम साखी, पंक्ति-१८)। दूसरे खिवयों-गुरुओं के पास तो साधारण लकडी की नौका है या हो सकती है किन्तु जाम्भोजी की नौका "अगर-चन्दन" की है। अन्यत्र अपने दीन-विष्णोई-धर्म को "माहारस" अमृत के समान मीठा बता कर वह इसी की पुष्टि करता है (दूसरी साखी, अंतिम पंक्ति)।

संसार-सागर से पार उतरने के प्रसंग में, प्रकृति की विपरीतता और विशेषत मेह बरसने की बात का उल्लेख कवि की अनोखी सूझ है (प्रथम साखी, पंक्ति १४)। इस वर्णन में (वही, पंक्ति ९, १० १५, १६ १७) जहा पार उतरने की कठिनता की व्यंजना है, वहा इस कार्य के शीघ्र ही किए जाने का सारगर्भित संकेत भी है। उसका मंतव्य है कि आत्मोद्धार के लिए अविलम्ब चेष्टा आरम्भ कर देनी चाहिए।

कवि का समस्त प्रयास आत्मोत्थान के लिए है, वह इसी की प्रेरणा देता है। गुण, अवगुण, नश्वरता, मृत्यु आदि से सम्बंधित कथन इसी निमित्त हैं। इनका सामूहिक प्रभाव पाठक को इसी ओर मोड़ता है।

उसने अपनी भावाभिव्यंजना बहुत ही कोमल एवं लोक-प्रचलित किन्तु सशक्त और प्रभावशाली शब्दों में की है। कई स्थलों पर तो एक-एक पंक्ति से अनेक बिम्ब उभरते दिखाई देते हैं तथा अनेक भावों की सृष्टि होती है। साखियों से अप्रस्तुत रूप में तत्कालीन समाज के विषय में भी थोडी ही सही किन्तु अच्छी जानकारी मिलती है। भाषा, शैली और भाव-सभी दृष्टियों से ये रचनाएँ महत्त्वपूर्ण हैं तथा सम्प्रदाय में अत्यन्त समादृत हैं। प्रसंगवश एक और बात का उल्लेख करना कदाचित् अनुचित न होगा। दूसरी साखी की कतिपय पंक्तियों को किंचित् परिवर्तन के साथ जसनाथी सम्प्रदाय के श्रद्धालुओं ने मौखिक परम्परा के नाम पर जसनाथजी की रचना बताकर प्रचलित और प्रचारित किया है[1]। दूसरे, इसी आधार पर अन्य विष्णोई कवियों की रचनाओं को समसदीन के नाम से चालू करके प्रकारान्तर से इनको जसनाथजी का शिष्य साबित करने की चेष्टा की गई प्रतीत होती है[2], जो अनुचित है।

।

माटी सू माटी रल्य मल्य जली, कुं कुं वरणी देहा ॥८॥
सस्या ऊपरि पुंवण झूलता धणहर बरसेला मेहा ॥९॥
नेकी दनी थार माथ्य हुव ली, जग करौला जेहा ॥१०॥
ओह माहारस समसदीन बोल्है, मीठो दीन सनेहा ॥११॥

१-द्रष्टव्य - श्री सूर्यशंकर पारीक सिद्धचरित्र, पृष्ठ ८४, ८५ संवत् २०१४।
२-"वरदा" पत्रिका (बिसाऊ) में "संत कवि समसदीन" -लेख। इसमें जिस "मोवण्या मिलो मिलावो" रचना का उल्लेख है, वह विष्णोई कवि जोधोजी रायक की है। देखें -जोधोजी रायक (कवि संख्या ११)।

३ डेल्हजी (संवत १४९० १५५०)[1]

ये प्रारम्भिक हजूरी कवि और लालासर के पास गांव के गृहस्थ ब्राह्मण थे तथा जाम्भोजी की महिमा से प्रभावित होकर उनके शिष्य बने थे। "पद साखी" (प्रति संख्या २०१ म) की अंतिम साखी "गुण परगाण" इन्होंने अपने पुत्र को लक्ष्य कर कही है –

भणं डेल्ह परसोतम पूता, राज करी परवार सजुता।

अवस्था म ये जाम्भोजी से भी बड़े बताए जाते हैं। इनका समय उपयुक्त अनुमित है। इनकी रचनाओं पर सबदवाणी का प्रभाव है। उदाहरण के लिए "कथा महमदी" म अभिमन्यु का युद्ध म जाना सुन कर उत्तरा का यह कथन —

अबळा रा बाळ विछोहिया, का लाया कूडा आळ।
का गउ पीवती तारवी,[2] रन लीया मुराळ[3] ॥४६७॥
सांह विनां रा पाप लागा, हू न सकी थाय।
विसन न जप्यो आळसी,[4] तिहु लोकां को राय ॥४६८॥
किया अगोतरि पाप, इणि भव आडा आविया।
का मु ठा मण्यहार, का के बांभण धाइया[5] ।
का के बांभण धाइया, न का सरवर फोडी पाल्य।
का डूगर दु व लाइया,[6] जीव हत्या परजाळ[7] ।
जगजीवण जाण्यों नहीं, जप्यों नांहीं जाप ।
इणि भव आडा आविया, किया अगोतरि पाप ॥४७२॥

इसी प्रकार "साखी" के इस छन्द पर भी —

घोडे मांहि घोडे रो दीज,[8] धरम करता भाय रहीज।
पांणी पीवती गउव न मारी,[9] मीत न करि वेस्या भिखियारी ॥११॥

डिंगल कवि पीरदान लालस ने अपने "परमेसरपुराण" मे जाम्भोजी (समराथणी) तथा अनेक भक्तो और कवियो के साथ इनका नामोल्लेख भी किया है —

बाभण डेलू बोलिया, काइम राजा केथि।
धिणी तुहारो धारआ ओ जोई बठे ओथि[10] ॥८९॥

ध्यातव्य है कि अनेक विष्णोई कवियों ने जाम्भोजी को "कायमराजा" कहा है। डेल्हजी के संदर्भ मे उपयुक्त कथन ठीक ही है।

१–के० का० शास्त्री कविचरित, भाग १–२, पृष्ठ १२०–१२२, संवत् २००८, भी द्रष्टव्य है।
२+६ ३+६, ४, ५, ७, ८–तुलनीय सबदवाणी, क्रमश ५९ ११, १२, ५९ १७, ६६ ११ ५६ ९, ८३ २८, ९२ ४।
१०–पीरदान लालस ग्रंथावली, पृष्ठ १६, बीकानेर, सन १९६०।

रचनाएँ इनकी दो रचनाएँ उपलब्ध हुई हैं –

१–बुध परगास[1]–साखी (२७ चौपई),

२–कथा अहमनी[2] (कथा अहदांवणी)। चौपई, दोहो और "छन्दो" में रचित, ७१७ दोहा परिमाण की।

बुधपरगास –यह राग विहाग में गेय छोटी सी साखी है। इसमें नीति-वचन, एवं करणीय-अकरणीय कृत्यो आदि का सरल भाषा में वर्णन किया गया है। जैसा कि नाम से प्रतीत होता है इसमें बुध परगास, अर्थात् बुद्धि को प्रकाश देने वाले ज्ञान का उल्लेख है। कवि के शब्दों में— बुध परगास सुण सभ कोई, मूरिख सुण स पिंडत होई ॥२॥ इससे तत्कालीन मरुदेशीय समाज में मान्य आदर्श, लोक व्यवहार, रीति-नीति विश्वास, धारणा आदि कितने ही विषयों का बड़ा अच्छा परिचय मिलता तथा ज्ञान-वृद्धि होता है। समस्त विष्णोई साखियों में प्रस्तुत साखी अपने ढंग की एक ही है। उदाहरणार्थ ये छंद द्रष्टव्य हैं –

ओछै वास कीय न वसोज, कुळ हीण वर कन्या न दीज।
पर घरि हाढत वरजो भारी जातो विसहर चंपि न मारी ॥३॥
वड अपणो गुझ कहीं न कहीजै, वध विणि धन व्याज न दीजै।
अ ण'र विमास्यो काम न कीज चिंता होय मैं काया छीजै ॥४॥
अप्रवाणि जळ कीव न पसी। इधक न बोलि सभा मा वैसी।
चोहटे वात न कहिय पराई। सभा मा बोल बोलियै विचारी ॥७॥
हासो न करो काठ कूव, भणै डेल्ह मत खेलै जूव।
कूडी साखी न कही पराई, कूठो आळत कहीं न लाई ॥९॥
उतरि नाह न ओघट घाटं, कन्या न वेचि गरथ क साटं।
प्राहुण आय आदर कीज, जूनू कापड ढोर न लीज ॥१४॥
मूखो गाय न जाई सियाळै, जीम र गांव न जाई उन्हाळ।
सावणि भाद्रव गाय न जाई इधक न जीमो जो न सुहाई ॥१६
हाथे वाको वाण न लीज, दुव सम्या नींद न कीजै।
साजन घरे न जाइ मल वेसो। आदर भाव न कोय करेस्यो ॥१८॥
चू धत गउव न कहीय पराई, धाव म घाती सुणहैं बिलाई।
उतिम सरसो सग न मेल्ही, कायर मत पडै दुहेली ॥२०॥

कथा अहमनी – यह राग धनासी, मारू, सोरठ, गवडी, धोवळ और असाधाहडो में गेय आख्यान काव्य है। इसका कथासार इस प्रकार है —

कवि विनायक की स्तुति और सतगुरु से अपना चित्त अविचल रखने के लिए कामना

१–प्रति सख्या–२०१, २०७ (ड), २०८ (ठ)।

२–प्रति सख्या–१५२ (छ), २०१, फोलियो ३४७, २०७ (ट), २०८ (ड), २३४ (म), २४१ २५८, ३२९। दोनों के उदाहरण प्रति सख्या २०१ से दिए गए हैं।

करता है। यह 'अभिमन्यु का गीत'' गाया जाता है।

कृष्णजी ने और दानवों को मारा। मथुरा के असुरों का वध किया जिनमें 'अहिलोचन' भी था। उसकी गर्भवती स्त्री भागकर वन में चली गई। वहाँ उसके एक बलवान पुत्र "अहिलोचन" उत्पन्न हुआ जो "उणियारे" में वर्णन किया जा चुका था।

अहिलोचन ने अपनी माता से अपने गोत्र, पिता, नगर तथा वध के कारण आदि के विषय में पूछा। बालक वय के होने पर माता ने बताया-तेरा गोत्र ... कृष्ण ने तुम्हारे वंश का मूल छेदन किया है। वह अवतार बताया है, द्वारका में बसता है और पान्चजन्य शंख बजाता है। उस पर क्रुद्ध होकर कृष्ण को मारने का संकल्प किया और आकाश में गया। विश्वकर्मा के पास बैठ कर उसने १२ वर्ष तक तप किया। तब विश्वकर्मा ने उसका कष्ट पूछा। वह बोला-मेरी वंश का अन्त हुआ है, नारायण को मारने के लिए एक 'जन्तर' बना दो। विश्वकर्मा ने 'जन्तर' बना दिया और उस पर लिखा-'जो इसमें पहले प्रविष्ट होगा, वही मरेगा'। 'जन्तर' को उठाकर वह द्वारका की ओर चला। रास्ते में नारायण एक बूढ़े ब्राह्मण के वेश में मिले और बोले-मैं सोचता हूँ कि तुम मथुरा के अहिलोचन के समान ही दिखाई देते हो, अतः मेरे जजमान हो। वह प्रसन्न होकर कहने लगा-मैं अपने पुरोहितजी की मनोकामना पूरी करूँगा, किन्तु यह तो बताओ तुम रहते कहाँ हो? ब्राह्मण बोला-द्वारका में। उसने नारायण के विषय में पूछा तो ब्राह्मण ने कहा-न वह छोटा है, न बड़ा, वह तेरे जैसा ही है, या तेरे से कुछ बड़ा। यदि तू इसमें समा सकता है तो हरि भी, और अधिक मुझे मालूम नहीं। तब दैत्य ने 'ताले चाबियाँ गुरु को दीं और स्वयं उसमें प्रविष्ट होने लगा। ज्यों ज्यों वह अन्दर घुसता गया त्यों त्यों ब्राह्मण ताले लगाता गया और अन्त में पान्चजन्य बजाया। वह बोला-मैं अन्दर घुट रहा हूँ, तुम तो घर के पाण्डे हो, हँसी मत करो। कृष्ण ने कहा-हँसी हँसी में मैंने अनेक दानवों को मार डाला है। तुम्हारे पिता अहिलोचन को जब मारा था, तो तुम गर्भवास में थे। अब मैं तुम्हारा कार्य पूरा करूँगा, तुम्हारे बिछुड़े परिवार से मिलाऊँगा। दैत्य बोला-कूड़-कपट से मुझे मत मारो सम्मुख दाव खेलो। कृष्ण ने उत्तर दिया—यदि गुड़ देने से मर जाए, तो विष क्या दिया जाए? मैं तो अपनी पसन्द से ही मारता हूँ। इस पर वह ऊँचा उछला और 'जन्तर' को हरि पर पटकने की सोची। यह देखकर कृष्ण ने पान्चजन्य बजाया जिससे उसकी काया गल गई और वह भँवरा बनकर अन्दर गुंजार करने लगा। 'जन्तर' लेकर कृष्ण द्वारका आए (छन्द १—४१)।

कृष्ण की राणियाँ नारद से पूछने लगीं -कृष्ण रत्न, धन, गहने जो भी लाए हैं, वे हमें बताओ। हम कब उनसे शृंगार करेंगी? नारद ने उत्तर दिया—जब अठारह अक्षौहिणी सेना जुड़ेगी, पाण्डवों की जय होगी, तब। सोलह सहस्र राणियाँ अपनी-अपनी मन-चाही शृंगार-सामग्री माँगने लगीं। इसके लिए वे बाई सुभद्रा से प्रार्थना करने लगीं। उसने अपने भाई की शंका न मानकर चाबी लेकर ताले खोल दिए। 'जंतर' खुलते ही भँवरा भन-भना कर बाहर उड़ा और-मुखद्वार से सुभद्रा के पेट में चला गया। दुःख से व्याकुल होकर

वह कहने लगी–इसके गर्भवास म होने स तो मैं मरी ही छूटू गी । आठ महिने होने पर–नवें मे बालक गर्भ मे खेलने लगा। उसने सातो समुद्रा को पीस डालने की इच्छा की और छत्तीस भुजाएँ कर ली । तब श्री कृष्ण ने पान्चजन्य बजाया जिससे उसके केवल दो ही भुजाएँ रह गईं, शेष गल गई । वे चक्रव्यूह की बात बताने लगे–पहले द्वार पर गुरु द्रोणाचार्य, फिर क्रमश शल्य, करण, विसासेण, काळीपचाळ, लाखन और दुर्योधन होंगे। सुन कर दानव ने "हु कारा' दिया (छन्द ४२–६४)।

श्रीकृष्ण ने सुभद्रा का विवाह अर्जुन से करा दिया । सुभद्रा के एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम अहमन (अभिमन्यु) रखा गया । सर्वत्र हर्ष छा गया, राज्य मे बधाई बाटी गई । बालक धीरे–धीरे बडा होने लगा, इससे कृष्ण शंकित होन लगे । उन्होंने अपने भानजे के बल की परीक्षा ली और उसको अतुल बलशाली पाया । छप्पन कोटि यादव कृष्ण से कहने लगे–सगा भानजा ही प्रथम शत्रु है, इस पर घात कसे लगाएँ ? बारह वर्ष का होने पर तो वह बडा हो जाएगा और अपना कुल क्षय करेगा । जब अभिमन्यु आठ वर्ष का हुआ, तो भीम भतीजे पर परीक्षार्थ 'चोट करने' लगे, जिनको उसने दो–दो खण्ड कर दिया । अखाडे म रखी भीम की गदा को भी उसने ब्रह्माण्ड मे फक दिया । तब भीम ने कु वर के अगाध बल की बात राजा युधिष्ठिर से कही । उन्होंने कुवर के विवाह हेतु–श्रीकृष्ण को द्वारका से बुलाया । भीम ने कहा–अपने भानजे का विवाह करो । इस हेतु पुरोहित और भाट ने अनेक ठिकाने देखे, किन्तु कोई भी नहीं जचा । वे विराट म बील्ह नरेश के यहा गए । उनकी सभा म उस समय राजकुमारी उत्तरा श गार किए घूम रही थी । उन्होंने राव से बातें की और कन्या मागी । राव ने अत्यन्त हर्षित होकर यह प्रस्ताव स्वीकार किया और उनको पाँचो कपडे दिए । इसी समय अग्निकोण मे "कागग' बोली । राजा की एक दासी चारो युगों की बातें बता सकती थी । वह शकुन विचार कर बोली–यदि इस शकुन पर कन्या दी जाएगी, तो वह अपने पति को गँवा देगी । कुवरी कहने लगी–यदि तुझे इतनी बातें सूझती हैं, तो यहा दासी बनकर क्यो आई है ? उसने अपने पूर्व जन्म की बात बताते हुए कहा कि जुए मे पति को हारने के कारण मैं उनकी हत्यारिन हुई और इस कारण मुझे दासी बनना पडा । राजा ने चलते समय उनको 'तीन लाख सुपारिया दी' । वे लोग शीघ्र ही हस्तिनापुर आगए । यहा सब लोगो ने बडी उत्सुकता से राजा, देश, वधु आदि के विषय मे पूछा और उन्होंने बताया । हर्षित होकर सबने उनका यथोचित सम्मान किया । अब शीघ्र ही विवाह की तयारिया होने लगी (छन्द ६५–११८)।

सुभद्रा ने ज्योतिषी से पूछा —विनायक की स्थापना कब करेंगे ? विवाहोचार कब होगे ? वह बोला–विनायक तो ठीक अष्टमी मंगलवार को स्थापित हो जाएँगे, किन्तु विवाह मे तो विघ्न लिखा है और 'सा'वा' भी सपूज है । सयोग ऐसा है कि या तो अग्नि बाण उछलेंगे अथवा अचिंत्य युद्ध होगा । यह सुनकर सुभद्रा और अर्जुन दोनो बहुत ही दुखी हुए । अर्जुन ने बुरे विघ्न टाल कर और अच्छा 'सा'वा' देखने को कहा । कुन्ती बोली हे गवार बहू ! तू गहली है, अनहोनी तो होगी नही और होनी टलेगी नहीं, जा विष्णु

करेगा वही होगा, उसका स्मरण करो सब काम वही सवारेगा। सब कुमन्त ने शृंगार किया। सब ओर मान द दिया गया। विप्र को दान दिया जाने लगा। युधिष्ठिरजी ने कुंकुम-पत्रियां लिखवाई। नगाड़े बजने लगे। बरात में साढ़े आठ अक्षौहिणी सेना जुटी। जनतियों ने पूनमालाएँ डाली गई, अभिमन्यु ने 'मौड' बांधा और गजकर बरात चली। रथ, घोड़े, हाथी और 'सांढ' ऐसे चले मानों नदियों का पानी हिलोर ले रहा हो। विराट नगर से एक योजन आगे "पडआनी" सामने आए। भीम ने उनको 'सुपारियाँ दीं'। वहां के प्रधानों ने राजा युधिष्ठिर की जुहार की। पान के बीड़े दिए गए (छन्द ११९-१५८)।

बरात ज्योंही तोरण के पास आई, त्योंही काग बोला। दासी ने कहा-शकुन सभी बुरे हो रहे हैं, सहेलियां बोली-हरि सब ठीक करेंगे। उत्तरा के मन में अति-उत्साह था। "जान" देखने के लिए वह अपने आवास पर चढ़ी और सखियों से इसके विषय में पूछा। उन्होंने पाँचों पाण्डवों और कृष्ण का, उन सबके प्रमुख कृत्यों का बखान करते हुए सविस्तर परिचय दिया। सुनकर वह प्रसन्नता से बोली-अपने तो मनुष्य हैं किन्तु पाण्डव देवता हैं। यह हमारे कर्मों का ही फल है कि वे यहां पधारे हैं, नहीं तो आक और आम एक स्थान पर नहीं उगते (छन्द १५९-१८७)।

पचासों पकवान किये गये। "जान" का "जीमणवार" हुआ। बड़े घर में विवाह होने से बधावा भी बड़ा था। सभी "जानी" तृप्त होकर जनवासे में गये। मंडप बनाया गया। चोवा, चंदन, कस्तूरी पृथ्वी पर छिड़के गये। "आले-नील" बांस रोप कर लाल तम्बू ताने गये। सखियां मंगल-गीत गाने लगीं। बायें-दायें पीढ़े डाले गए और अभिमन्यु को घर में बुलाया गया। उसका विवाह हुआ। राजा युधिष्ठिर मन में प्रसन्न थे, उन्होंने विराट-राव की प्रशंसा की। ब्राह्मण, भाट सुयश गान करने लगे। खूब दान दिया गया। जनेत को "सीख" हुई और सब हस्तिनापुर पधारे (छन्द १८८-२०८)।

नारायण ने एक बात सोची। उन्होंने नारद को बुलाकर कहा-तुम पाताल जाओ और 'तालू" दैत्य को समझाओ कि वह इन्द्र पर चढ़ाई करे। कहो कि यह मैंने कहा है। ऐसा ही हुआ। दैत्य ने इन्द्र पर चढ़ाई कर दी। उसकी सहायतार्थ शीघ्र ही अर्जुन इन्द्र-लोक गया। अब नारायण कौरवों के दीवान बनकर गये और कहा-तुमको धिक्कार है, घात करने का यही समय है क्योंकि अर्जुन घर में नहीं है। इस पर उन्होंने युद्ध की तैयारी की। द्रोणाचार्य ने चक्रव्यूह-युद्ध का बीड़ा युधिष्ठिर के पास भेजा। वे बड़े ही चिंतित हुए। सब के सामने उन्होंने यह बात रखी। भीम, सहदेव, नकुल, घटूका (घटोत्कच) सबने बारी-बारी से युद्ध में जाने की आज्ञा मांगी, किन्तु राजाजी ने चक्रव्यूह का भेद न जानने के कारण उन सबका प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया। इस पर अभिमन्यु ने पूछा-कौरवों का सरदार कौन है और उनके दल में कौन बांका वीर है? राजा बोले-दुर्योधन और द्रोणाचार्य। तब उसने युद्ध का बीड़ा ले लिया। इस प्रकार भीम के भतीजे, नारायण के भानजे और सुभद्रा के पुत्र अभिमन्यु ने कुल की लाज रखी। बधाई बांटी गई और बाजे बजे। कुंवर की आयु इस समय दस वर्ष की थी (छन्द २०९-२६५)।

नारद ने आकर सब बातें सुभद्रा से कही। पहले उसको आश्चर्य हुआ फिर खेद। सोचने लगी–मुकुट पहन सभी पाण्डवों के रहते अभिमन्यु को युद्ध मे क्यो भेज रहे हैं ? उसने अभिमन्यु को युद्ध की भयकरता और उसके वियोग-दुख की बात कहकर युद्ध मे जाने से रोकना चाहा। वह बोला–सात अक्षौहिणी सेना म से बीडा किसी ने नही लिया। धर्मराव बोले–मेरा पिता घर पर नही है और उनके बिना चक्रव्यूह का भाग कोई जानता नही है। तब मैंने बीडा लिया। तुम विलाप मत करो, इससे सभी को लाज लगेगी। मुझे 'बाळा' मत कहो, क्योकि गरुड, चन्द्रमा, सूर्य, अग्नि, मेह, केहरि और सर्प ये–"बाळा" ही भले होते हैं। तब कुन्ती ने बहू को यादव वश और कृष्ण की महिमा का स्मरण दिलाकर तथा अन्य अनेक प्रकार से सान्त्वना दी, किन्तु उसका शोक कम नही हुआ। बोली–अन्धे की तो मानो लकडी ही छीन ली गई है। वह रोने लगी। कुन्ती ने समझाया–सत्पुरुषो का जीवन धन्य है। यदि सामन्त युद्ध मे भिडे तो नाम रह जाता है। सुभद्रा बोली–'हे सास ! तुम्हारे तो पाँच हैं, किन्तु मुझ अबला के तो एक ही है। मेरा भला चाहती हो, तो राजाजी से पुछवाओ कि भीम के पीछे रह जाने से वे प्रसन्न होगे या जिसका पिता सुर-भुवन म है उसको रण म भेजने से। वह सोचने लगी–सहोदर भाई कृष्ण ही वैरी हो गया, वही मेरे कुँवर के पीछे पडा है, उसी ने यह सहार मचाया है। यदि कुल-वधू इस समय घर म आ जाती तो अच्छा होता, क्योकि कष्ट-निवारक अर्जुन तो सुर-लोक म है। उसके मन से अभिमन्यु के जीवन की आशा जाती रही (छन्द २६६–३२१)।

गवाक्ष मे बैठ राजा युधिष्ठिर ने रवारियो को बुलाया और पूछा–घडिया म योजनो दूर जाने वाली कितनी 'सा'ढो' तुम्हारे पास हैं ? महणो, मोखो, राघो, और रतन-चारो रैवारियो ने अपनी अपनी 'सा'ढ़ो के विषय म बताया। तब विराट जाने के लिए सहस्रा साढो मे से छाट कर १६ 'सा'ढो' पर "पलाण माडे" गए। उनके साथ एक ऊट भी गया।

इससे पहले की रात के चारो प्रहरो मे उत्तरा ने चार दुस्वप्न देखे। सखियो ने समझाया–तेरे स्वप्न झूठे हैं। ये उन्ही के सिर पर पडें जो पतियो का बुरा चाहती हैं तथा जो अदोषियो को दोष लगाते और झूठ बोलते हैं।

रवारियों ने आधी रात म ही विराट आकर "पोळियों" से तत्काल ही "पोळ" खोलने को कहा। वील्हराव ने पूछा–बिना शत्रु-मित्र का पता लगे "पोळ" कैसे खोलें ? उन्होने अपना परिचय दिया —पाण्डवो के प्रधान के रूप म आए हैं और उत्तरा कुँवरी के पाहुने हैं। कुँवर शीघ्र ही रणक्षेत्र मे जाएगा। हम यहा देर न लगाकर वापिस हस्तिनापुर जाकर ही सोएँगे'। राव ने कुशल समाचार पूछे। उन्होने सारी स्थिति बताते हुए कहा–कुँवर ने रण का बीडा लिया है। सुनते ही राव पाण्डवो को बुरा-भला कहने लगा। इस पर सारग भाट बोला–तुम बार-बार पाण्डवो की निंदा करते हो, यह हम पसन्द नही है। राजा होकर व्यर्थ की बातें क्यो बोलते हो ? उसने पाण्डवो, घटोत्कच और अभिमन्यु की वीरता और नीति-कुशलता का विस्तार से बखान किया। तब वे नगर मे प्रविष्ट हुए, साढों को महल के आँगन मे ही "झकाया"। उत्तरा की माता ने पाहुनो से अकेले आने का

राही-नही कारण पूछा। उन्होंने युद्ध की बात बताई और कहा-और तो सब ठीक हैं किन्तु कुंवर की कुशल नहीं। सुनते ही रानी ढह पडी और मूच्छित हो गई। उत्तरा की आशा निराशा मे बदल गई। चेतना आने पर राणी ने कुन्ती और पाण्डवो को बहुत कोसा। बोली-बालक ने तो युद्ध की सोची है, किन्तु राजा अमर रहेंगे न! कुन्ती को क्या लाज है! उसने तो काम ही ऐसे किए हैं, कुंवारपने मे ही कर्ण को जन्म दिया था। सहदेव की पुस्तक-विद्या नष्ट हो, नकुल घडी भर भी न जिए, राजाजी को पाप लगे और भीम को दुख-दाह हो। वे बोले-राणी! व्यर्थ की बातें मत करो, बहुत कह चुका। राजा सत्यवादी हैं और कुन्ती महासती। राणी ने कहा-हमारे मन मे जो चाव था वह कुंवरी को नहा दे पाई। मेरी ये बातें पाण्डवो को मत कहना। जुवारी की भांति हम तो हार गए, हाथ शिला के नीचे आ गया। हृदय की बातें अपने स्नेहियो से कही जाती हैं। उत्तरा बोली-माजी! जीभ की मर्यादा मत मिटाओ। पाण्डव प्रत्यक्ष देव हैं, स्वयं देव ने ही यह किया है, दोष किसका दें? मेरे पूर्वजन्म का पाप ही सामने आया है। मेरा भला चाहती हो तो मुझे शीघ्र ही हस्तिनापुर भेजो, क्षण भर की भी देर मत करो, रात्रि मे ही वहा जाना है। तब राजा का प्रधान मेहते की दुकान से कुंवरी के लिए लूग, साडियाँ, रेशमी वस्त्र आदि लाया। दासी ने शकुन देखकर कहा-करतार से भेंट नही लिखी है (छन्द ३२२-४८७)।

उत्तरा ने शृंगार किया। अन्तःपुर मे वह सबसे मिली, सबने आशीर्वाद दिया। राजकुल की सभी रीतियाँ की गई। बिदाई के समय सबकी आखो मे आंसू आ गए। सब के सब केवल खडे रहे, बोले कुछ नही। कुंवरी को लेकर सोलह सांढें चली, मानो शक्ति विमान जा रहा हो। चार देश लांघने पर उत्तरा को ध्यान आया कि उसका तीन लाख का काजल का 'कूपला" तो घर मे ही रह गया। तब एक रबारी ऊंट पर उसको लाने वापस विराट गया। आठ देशों का फासला शीघ्रता पूर्वक लांघ कर वह उनसे आ मिला। कुंवरी ने उसको बधाई दी, कार्य सिद्ध होने पर अन्य रबारियो को भी यथोचित पुरस्कार देने का वायदा किया। सांढें चलती गई और सूर्योदय से पूर्व ही उन लोगों ने हस्तिनापुर आकर राजा से जुहार की (छन्द ४८८-१३८)।

उत्तरा ने अभिमन्यु के दर्शन किए। बोली- तुम्हारे सभी विघ्न दूर हो, नेत्र तो तृप्त हो गए पर मेरे मन मे चिन्ता है, तन का मिलाप तभी होगा जब हरि चाहेगा। अभिमन्यु के आगन में आते ही वह निश्वास छोडने लगी और मूच्छित हो गई। सचेत होने पर बोली- मैंने तो जीवन ही हार दिया, मेरी तो मन की मन मे ही रह गई। अभिमन्यु युद्ध मे चला। सुभद्रा ने आर्त होकर श्रीकृष्ण से अभिमन्यु को वापस घर भेजने के लिए कहा। वे बोले- मती, शूर, पानी और हाथी वापस नही लौटते। स्त्री और माता के विलाप करने से क्या होता है? फिर सुभद्रा ने प्रार्थना की- या तो छः मासी रात्रि करो अथवा अभिमन्यु को अजेयता का वर दो, मुझे 'कांचली' करो। कुन्ती बोली-इन दोनो मे से एक भी बात नही होगी। तू भोली है भेद नही जानती, आखो मे आसू मत भर। कृष्णजी ने कौल किया किया कि अभिमन्यु वापिस आएगा, "कूकडे के बाग देते ही वह पाछे नही रह पाएगा (छन्द ५३९ ५६३)।

प्रभात हुआ। घर के आगन मे वह पधारी। मोतियों का थाल भरे कुन्ती आगन मे खड़ी हुई। वह आरती और कुलाचार करने लगी। अभिमन्यु को विदा देने के लिए नर-नारियो के 'थाट' जुड गए। उसने अपनी पत्नी को आखो म काजल "सारे" देखा। इतने मे मुर्गे ने बाग दी। सुभद्रा ने पुन कुन्ती से कहा– यह बडे-बडे राजाओ को कैसे जीतेगा ? क्या घडा सागर सोख सकता है ? उसके टप टप आसू पड़ने लगे। गवाक्ष मे खड़ी होकर देखन लगी कि शायद कही से क्षण– मात्र मे अर्जुन आ जाए। तभी श्रीकृष्ण अभिमन्यु से बोले– मैं गूढ बात कह रहा हूँ, दुर्योधन युद्ध का आकाक्षी है, यदि नही करोगे तो कौरव गालियाँ देंगे। स्त्री का मोह मत करो, श्री रामजी भी स्त्री-मोह के कारण जगल मे भटके थे। मामा की बात सुनते ही उसने घोडे जुता हुआ रथ निकाला। सबसे पहले उसने उनकी ही पूजा की। उत्तरा ने लगाम पकडली और बोली– यदि आप नहीं रुक सकते, तो मुझे किसी के सुपुर्द करके जाओ। अभिमन्यु न उसको अपनी मा के सुपुर्द किया और रण म चल पडा। विदाई के सम्बन्ध मे सुभद्रा ने उत्तरा से पूछा, तो वह बोली–प्रिय रोके न रुके, मोह उन्होने त्याग दिया (छन्द ५६४–६११)।

रणवाद्य ढोल तूर्य आदि बजे। चक्रव्यूह के पहले दरवाजे पर अभिमन्यु ने गुरु द्रोणाचार्य से युद्ध करके उनको परास्त किया और आगे बढा। इसी प्रकार शेष छहो दरवाजो पर उसने क्रमश शल्य, कर्ण, विमासेण, काळीपचाळ, और दुर्योधन से युद्ध करके उनको हराया। चक्रव्यूह के सातो ही महारथी परास्त हुए किन्तु वह उससे वापस निकलने का रहस्य नही जानता था। उन सबने छद्म करके कुँवर को ढहा दिया। उसको तलवार नहीं मिली। भूमि पर पडने पर जयद्रथ आया और उस पर घाव किया। मरते समय उसको नारायण से अपने पूर्व वैर का स्मरण आया। कौरव तो घर गए किन्तु रण का मामी रणखेत म ही रहा। उसको किसी मनुष्य न तो मारा नही था, कृष्ण ने ही मारा था। उसकी मृत्यु की खबर सुन कर उत्तरा अत्यन्त व्याकुल हुई (छन्द ६१२–६५४)।

तभी इन्द्रलोक से उतर कर अर्जुन वापस आया। पुत्र का मरना सुन कर उसको अपार दुख हुआ। उसने सभी को उलाहना दिया। सुभद्रा ने कृष्ण की सब बातें उसको बता दी। कहा– कृष्ण का तुमसे साथ है, किन्तु भानजे को मरवा दिया। दुखी होकर अर्जुन ने अन्न त्याग दिया। कृष्ण से बोला– अभिमन्यु को दिखाओ, जो प्रीति पहले पालते थे, वह अब भी पालो। अर्जुन की बात मानकर भगवान ने उसको अभिमन्यु से मिलाने की सोची। वे दोनो कुरुक्षेत्र मे पहुचे। वहा एक ब्राह्मण हल चला रहा था। बीज के लिए घर जाते हुए उसके पुत्र की राह मे साप काटने से मृत्यु हो गई थी। ब्राह्मण को इसका पता नही था। वह उसको पुकारने लगा और पुत्र के न सुनने पर खीजने लगा। अर्जुन बोला– तेरे पुत्र की तो जगल मे साप डसने से मृत्यु हो गई है, तू जाकर उसकी सम्भाल कर। यह सुनकर वह कहने लगा– हे अर्जुन ! मर जाने पर मैं जाकर क्या करूगा ? उसके शरीर को तुम्ही घसीट दो। ससार मे बेटा-बेटी कोई नही है, केवल बात की बात है। उसकी बात से अर्जुन के मन मे शान्ति हुई। ब्राह्मणी को इसका पता लगा तो वह भी दुखी नही

हुई। अर्जुन ने पूछा– पुत्र का मरा सुनकर भी तुम्हें कष्ट नहीं हुआ ? उसने उत्तर दिया– पुत्र तो उन पखेरुओं के समान होते हैं जो सन्ध्या-समय तरुओं पर बसेरा लेकर प्रभात होते ही बिछुड़ जाते हैं और फिर वापस नहीं मिलते। इसलिए पुत्र का मोह नहीं करना चाहिये। उसकी बहू को जब इसका पता लगा, तो वह रोई भी नहीं। अर्जुन बोला– स्त्री तो एकदम मूर्ख निकली। उसने उत्तर दिया– मरने पर तो मूर्ख ही रोते हैं (छन्द ६५५-६६८)।

अर्जुन ने अपने पुत्र को पासा खेलते हुए देखा और देखते ही उसके नेत्रों से हर्ष के आंसू पड़ने लगे। अभिमन्यु ने पूछा– यह कौन है, जो इतने आंसू बहा रहा है ? कृष्ण बोले– यह तेरा पूर्व पिता अर्जुन है, तू इससे उठ कर मिल। उसने कहा– मेरे पिता तो पवन हैं, यह उत्पन्न करने वाला कौन है ? अर्जुन यदि जयद्रथ को मारे, तो अभिमन्यु उठकर मिल सकता है। मैं तो स्वयं हरि से मारा गया हूं। मरने पर उस मूर्ख ने मेरे शरीर में घाव किया था। कृष्ण ने अर्जुन को समझाया– यदि तुम जयद्रथ को मार डालो, तो अभिमन्यु उठकर मिल सकता है। अर्जुन ने प्रतिज्ञा की– मैं खोज कर जयद्रथ को अवश्य मारूंगा। हे अभिमन्यु, सुन ! यदि नहीं मार सका तो मुझे बड़े से बड़ा पाप लगे। अब कृपा करके मुझसे मिल। तब अभिमन्यु उठकर अर्जुन से मिला। अर्जुन ने वापस आकर जयद्रथ का वध किया। अभिमन्यु की मृत्यु के पश्चात् अठारह अक्षौहिणी सेना खपी। अन्त में कवि का कथन है कि इस कथा के सुनने और मनन करने से मोक्ष मिलता है। (छन्द ६९५-७१७)।

वर्णन और भाव-व्यंजना

यह संवाद-शैली में रचित वर्णन-प्रधान गेय आख्यान काव्य है। ये वर्णन तीन प्रकार के हैं—(क) संवाद रूप में (ख) कवि-कथन रूप में, (ग) पात्र-विशेष के भावरूप में। समस्त कथा में सर्व प्रथम ध्यान आकृष्ट करने वाले इसके संवाद हैं। ये अत्यन्त नाटकीय, प्रभावशाली और कथा को गति प्रदान करने वाले हैं। प्रेषणीयता, भावोत्कर्षता तथा संख्या–सभी दृष्टियों से ये महत्त्वपूर्ण हैं। प्रमुख संवाद निम्नलिखित हैं —

पात्र	विषय	छन्द-क्रमसंख्या	कुल छन्द संख्या
१-अहिलोचन की पत्नी और उसके पुत्र अहिदानव का	कृष्ण, उनका आवास और बल।	५-१३	९
२-अहिदानव और विश्वकर्मा का	'जन्तर' बनाने की प्रार्थना	१४-१५	२
३-ब्राह्मण वेशधारी कृष्ण और अहिदानव का।	पारम्परिक परिचय, कृष्ण और द्वारिका की जानकारी दानव का बन्दी होना और छोड़ने की प्रार्थना–	२३-२८ ६ + ३०-३८ ९	१५

४–नारद और कृष्ण की राणिया का।	शृंगार-सामग्री	४१–५२	१२
५–राणियों और सुभद्रा का।	शृंगार-सामग्री	५३–५४	२
६–दासी और उत्तरा का।	शकुन–फल और पूर्व-भव कथन।	१०१–१०३	३
७–पाण्डव-परिवार और भाट का।	विराट-राव और उत्तरा	११०–११८	९
८–ज्योतिषी और सुभद्रा का।	"सा'वा थापना"	११९–१२४	६
९–कुन्ती और सुभद्रा का।	अशुभ फल और कुन्ती का समझाना।	१२८–१३६	६
१०–सुभद्रा और अभिमन्यु का।	युद्ध मे जाने से रोकना, अभिमन्यु का दृढ निश्चय।	२७०–२९२	२३
११–सुभद्रा और कुन्ती का।	पाण्डवों को उलाहना, कुन्ती की सात्वना।	२९३–३०७	१५
१२–युधिष्ठिर और रवारियो का।	साढों की जानकारी, उत्तरा को लाना।	३३६–३४५	१०
१३–विराट-राव और रवारियो का	प्रवेश-द्वार खोलना, पाण्डवो की चर्चा।	३८४–४१२	२९
१४–उत्तरा की मा और रवारियो का	अभिमन्यु का युद्ध मे जाना +	४२०–४२८	९
	पाण्डव-परिवार	४३८–४६०	२३
१५–रवारी और उत्तरा की मा का।	काजल का 'कूपला"	५२२–५२८	७
१६–सुभद्रा और कृष्णजी का	अभिमन्यु की वापसी	५४९–५५७	९
१७–उत्तरा और अभिमन्यु का।	उत्तरा को मा के सुपुर्द करना	५९४–६०२	९
१८–सुभद्रा और उत्तरा का।	युद्ध म जाने सम्बन्धी समाचार।	६०६–६१४	९
१९–अर्जुन और (क) कुरुक्षेत्र के ब्राह्मण किसान	पुत्र–मत्यु।	६७४–६७९	६
तथा (ख) ब्राह्मणी का।		६८३–६८८	६

२०–श्री कृष्ण और अभिमन्यु की आत्मा का।	पुत्र–माता और मिलाप	६९८–७००	३
२१–अभिमन्यु की आत्मा और अर्जुन का	अभिमन्यु–मृत्यु और जयद्रथ–वध–प्रतिज्ञा।	७०१–७१०	१०

दूसरे प्रकार के वर्णन ये हैं —	कुल छन्द-संख्या
१–ब्राह्मण वेश–धारी कृष्ण का	३
२–अभिमन्यु के जन्म और विवाह का रूप	६
३–'सां'ढो का	१६
४–विराट नगर का	३
५–बरात का	२७
६–"जीमणवार" का	७
७–मंडप का	५
८–उत्तरा के रूप और शृंगार का	१७
९–युद्ध में जाते समय कुलाचार का	९

पात्र विशेष के भाव–कथन अपेक्षाकृत बहुत कम हैं तथापि जितने भी हैं, वे बड़े मार्मिक हैं। ऐसे प्रमुख स्थल ये हैं —

१–अभिमन्यु के युद्ध जाने की बात को पक्का समझकर सुभद्रा का दुःख,–छन्द ३०८ ३२१।

२–अभिमन्यु के चले जाने और उसके मृत्यु–समाचार पर उत्तरा की—
वेदना — छन्द ६१५–६२० तथा ६५२–६५४।

इन वर्णनों में कवि ने बड़े सजीव चित्र उपस्थित किए हैं जो संवाद और उनमें निहित नाटकीयता के कारण अत्यन्त हृदयग्राही हैं। उदाहरणार्थ बूढ़े ब्राह्मण और सां'ढो (ऊंटनिया) का वर्णन द्रष्टव्य है। जब अहिदानव 'जतर' उठा कर द्वारिका की ओर चला तो रास्ते में श्रीकृष्ण बूढ़े ब्राह्मण के वेश में उसको मिले। कवि द्वारा चित्रित उसका रूप और दोनों का संवाद इस प्रकार है —

नारांयण रै गळै अनत, को आयो दांणू बळिवत।
नारांयण हुवो ब्राह्मण वेस, माथै तिलक पंडरा केस ॥ २० ॥
गळै जनेऊ पतडी हाथि गंगा जवणी करोती धाति ।
पळटि बपा हुवो डोकरो, मीणे नीर चव मोकळो ॥ २१ ॥
हाथि डांगडी पोंई पुस्यो अहदांणो न सांम्हो मिल्यो।
गंगा जवणी धोती हाथि, तित धोती पहर जगनाथ ॥ २२ ॥

विपर रूप हुवो जगनाथ, जोयसी सोस चहोड हाथ।
मैं जाण्यो म्हारो जुजमान, अहलोचण बहलोचण व्रन॥ २३॥
हाथि पाए दीसं वा व्रन, मथुर नगर न जीरो मन॥
हू पांडे री पूरू आस, कांहा वस पाडे किण वास॥ २४॥
पाडे कहियो वीण विचारि, वसू दवारिका सखोधारि।
हू म्हार पाडे न आघो लेस, सोनू रूपो अति घण देस॥ २५॥
हू म्हार पाडे री पूरू रळी सू बळदा सूपू डोहळी।
हू पाड र लागू पाय, काळी कवळी देस्यों गाय॥ २६॥
जे यें वसो छो सखोधार, नारायण रो कहो विचार।
कहि पाडे नारायण भेव, कह परि दया किसी परि देव। २७॥
न वयों ल्होडो न वयों वडो, तो सारीखो तो जे घडो।
जे तू माव तो हरि समाय, और बुध मो नाव काय॥ २८॥

\+ + +

हासो कोज घडी एक ताळ, नाऊ कोज इतरी वार।
रे बाळा हास री बाण, मैं सखासिर मार्यो जाण॥ ३१॥
मुथरा जाय न मारियो कस इह हास थारो छेदयो वस।
अह हास अहलोचण हुयो, तू बाळा ग्रभवासे थयो॥ ३४॥
इह हास थारो गाळ्यो गोत तू पण हारयो पहल पोति।
बाळा थारो सारू काज, वीछडियो कुटव मिलाऊ आज॥ ३५॥

'साढा' का वर्णन कवि की अपनी विशेषता है जो अन्यत्र दुर्लभ है। अच्छी साढो की विशेषताएँ, उनका शृंगार, चाल और त्वरा आदि का सांगोपांग वर्णन कवि की तत्सम्बन्धी सूक्ष्म-दृष्टि का परिचायक है। कुछ उदाहरण देखे जा सकते है —

(क) विराट जाने के लिए राजा युधिष्ठिर का पूछना और रबारियो द्वारा अपनी-अपनी साटा की विशेषताओ का वर्णन —

रबारो भीतरि तेडाया, तेडे दहूठळ राव।
कतरी साढया थार भणज, घडिया जोयण जाय॥ ३३६॥
पहलो रबारी इण परि बोल, राजाजी अवधारि।
छोट किवाडी तीखे काने, साढीडा सच्यारि॥ ३३७॥
भरहा काळा सरवण काळा, कया मजीठी वानी।
वाळी से तो वाव न सहिरय, से वयों सहिस्य पानी॥ ३३८॥
लांबकळी लटकती हाल, ग्योळ मुही अर वगो।
घडी घडी के जोयण हाल, मुकराणी अर चगो॥ ३४०॥
घुघरमाळ जहि गळ घातो, केई छ मुकराणी।
साढीडा रे ओठीडा रे, पेट म लहक पाणी॥ ३४२॥

रातडी न घोळ मजोठी, मगरे काळी रेट्।
यावां प्र इयफेरी हाल, भुय उड ज्यों खेह ।। ३४४ ।।

ये 'सां'ढ वसी था, दगया वचन —

थळी उपनी थळी चरती आंकोडे घरि आंणी।
येलां लू ग फ्गाड़ा चरती, सोळा सांढि पलांणी ।। ३४६ ।।
सहसा मांहियो टाळ'र आंणी, सांढि आंयती दीठी।
घडी घडी के जोयण हाल, रागा घोळ मजोठी ।। ३४७ ।।
काळी काजळी नवरगी नीळी, रतन रातडी जाति।
आसालुधी कर करहा, करहा मेलो साथि'।। ३४८ ।।

(ख) सांढा का श गार वरणन —

सांढियां रा सिणगार, बाहुवे बोह रेखां भळहळ।
सोवन जडत पलाण, कांन सखो री झळहळ।
कांन सखी री झळहळ, गळे घटा रा झणकार।
पगे नेवर वाजणा घूघरे घमकार ।
कसणे त सीरख सावटू, मुखमल झूल अपार।
बांहुवे त झावा सोवनां, सांढिया रा सिणगार। ३७५।

(ग) विराट जाते और वापस हस्तिनापुर आते समय सांढो और ऊंट की चाल एव त्वरा का वरणन। जाते समय का वरणन द्रष्टव्य है —

वाळी राग चडया रबारी, आय जुहारयो राय।
गळती राति उठती करकी, वाए मिळिया वाव ।। ३७८ ।।
काजळियो पग काठो कुहुटो, करहो काढ कान।
सापा ज्यों सळकती हाल, ज्यों वतूळ पांन ।। ३७९ ।।
केई घडी रातडी चलाई गोण विळबी खेह ।
जोजन जोजन कर करहा, ज्यों उतराधो मेह ।। ३८० ।।

इनके अतिरिक्त कवि ने नारी-मन का वडा मोहक वरणन किया है। परिस्थिति-विशेष म नारी-सुलभ क्रियाओं, चेष्टाओ, आशा-आकाक्षाओं विचारो और भावो के अनेक सजीव चित्रण इसम मिलत हैं। सुभद्रा, उत्तरा, उत्तरा की मा और कुन्ती—इन चारो के विभिन्न समयो और परिस्थितियो म कहे गए उद्गार और काय-व्यापार नारी-हृदय के कई पन्नुओं की भांकी प्रस्तुत करते हैं। उल्लेखनीय है कि भाव, विचार और काय की दृष्टि से ये सभी सामान्य नारी के रूप म ही दिखाई देती हैं। कतिपय उदाहरण देखे जा सकते हैं —

(क) जतर लेकर श्री कृष्ण के द्वारका आने पर उनकी राणियो और सुभद्रा का (भाभियों और ननद का) शृ गार-सामग्री सम्बन्धी वचन —

किसनजी आयो पवळ दवारि । सोला सहस माग सिणगारि ।
एक माग एकावळि हार । एक माग नेवर झणकार॥ ५३ ॥
एक माग कक्ण अरघडी । एक माग चूडा राखडो ।
सोन रूप अ ति ही जडो । गोपी अरज करे अति खडो ॥ ५४ ॥
विनव गोपी लाग पाय । बाई सोहिदळ गहणा म्हा पहराय ।
सखरा गहणा हू पहरेस । रहता सहता थान देस ॥ ५५ ॥
गोविया र मन सका घणी । तू छ बहण नारायण तणी ।
ले कू ची ताळा उघड । बधव तणी न सका कर ॥ ५६ ॥

(ख) मा के रूप म, उत्तरा की मा और सुभद्रा के उद्गार । दोनो के दो दष्टिकोण हैं,प्रथम का अपनी बेटी की हित-कामना और दूसरी का पुत्र की । दोनो अ ततोगत्वा अभिम यु की कुशलता म ही सम्बधित हैं । इसके अतिरिक्त उत्तरा की मा एक सास और समधिन भी है । उसके कथनो म इन सब नाते-रिश्ता की सामूहिक झलक दिखाई देती है वे अत्य त सहज और मनोवनानिक हैं । रवारिया के साथ हुए निम्नलिखित सवाद मे, उसके आक्रोश, दुख, और बेटी की मा होन की बेबसी का मार्मिक और घरेलू वणन कवि ने किया ह —

राणी कहै रीसाय, कहि कु ता कायों कियो ।
पाचू पाडू पाळि, बाळ न बीडो दियो ।
बाळ न बीडो दियो, न भींव भड छो पासि ॥
निरखे निकळो सूर सहदे, सारा ही साबासि ।
बाळो रिणवट मोकल्यो, न रूडा न कियो राय ।
जिसडा छा तिसडो करी, राणी कहै रीसाय ॥ ४४० ॥

\+ \+ \+

कु ता न केहवी लाज, जिण कारज एहवा किया ।
सहदे रा पुसतक जाह, निकळो घडी न जीविजो ।
निकळो घडी न जीविजो, न सहदे रा पुसतक जाह ।
राजाजी न पाप लागो, भींव नै दुख दाह ।
भागो भाणो रेहीय, उघड अ ति पाज ।
करन कवारी जळमियो, कु ता नैं कहवी लाज ॥४४८॥

\+ \+ \+

राणी म झखो आळ, कहि कुपती भाखी अती ।
राजाजी लीळ विळास, निरमळ कु ता महासती ।
निरमळ कु ता महासती, न राय बोल साच ।
तीहू लोकां मा मानिय, राजाजी री वाच ।
निरखे निकळो सूर सहदेव, सहदेव सूझै काळ ।
कळक जोगा नहीं पाडू, राणी म झखो आळ ॥ ४५२ ॥

खवासियों के इस वचन पर उसको अपनी स्थिति का भान हुआ। अपनी पूर्व बातों के न कहने का अनुरोध करती हुई यह अपनी बेबसी और दुख का वर्णन इस प्रकार करती है —

माहर नित रो हु तो कोड, कोड कवरि पूगा नहीं।
पयो पडये जाय मत दाखवि जो म्हे कही ।
मत दाखवि जो म्हे कहि, न मांहरी बात विचारि ।
हाथ झाडि उठि हालेया, जिम जूवारो हारि ।
म्हा मंहि असडी हुई, हारियो धन होड ।
कोड कवरि पूगा नहीं, नितरो हु तो कोड ॥ ४५६ ॥

\+ + +

कर आयो सिल हेठ, काय हुव घण बोल्यि ।
जा सणा सू सीर, ताह सू अन्तर खोलिय ।
ताह सू अन्तर खोलिय, न कहिय बात विचारि ।
म्हार पोत पाप हुता, पापे दीन्हो हारि ।
धणियां न धनवाळ हो चोरा दुख पट ।
काय हुव घण बोलिय, कर आयो सिल हेठ ॥ ४६० ॥

अपन ससुराल की निंदा उत्तरा भी नहीं सह सकी, मा के ऐसा कहने पर उसका यह कथन द्रष्टव्य है —

गहली माय गिवारि, जोम्या न मेटी आंयनां।
पांडू परतगि देव, देवा सरसा सांयनां ।
देवां सरसा सांयना, न रग केहो रोस ।
आप देव आण दियो कहो कुणां ने दोस ।
लिखयं विण लाभ नहीं, जोडो हुव नर नारि ।
बुरो न बोल पडवां, गहली माय गिवारि ॥ ४६४ ॥

सुभद्रा का वात्सल्य प्रेम और अभिमन्यु के बिछुडन का दुख अनेक स्थलों पर अभिव्यक्त हुआ है और उत्तरोत्तर घनीभूत होकर उसमें गहराई आती गई है। उसके अभिमन्यु, कुन्ती, कृष्ण और उत्तरा से हुए संवाद तथा स्वयं की अभिव्यक्ति, सामूहिक रूप से उसके मातृ-हृदय के विभिन्न भावों का मार्मिक चित्र उपस्थित करते हैं। कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं —

(क) अभिमन्यु का युद्ध में जाना सुनकर उसकी मनोव्यथा और पुत्र को रोकना —

सुणी सरवण बात इचरज दीठो एहडो।
मेल्हो साह मरजाद, माया विणिधो छेहडो ।
माया विणियो छहडो न सुव उधारयो चीर।
पवण पहूं सांचर, नीणे त झुरव नीर ।

मोड बधा सह राव बठा, बठो धरम रो जाव।
मेल्ही लाज उतावळो, करि अहमन साह्यौ बाहि।
माया साहि बुझ्यो नहीं ॥ २७२ ॥

छाडि कवर रिणमाळ तो न रिणा न मोकळू।
मोकळ मारू भीव, दत जुरासिंध मारियौ।
दल जुरासिंध मारियौ, न मोकळ मारू भीव।
ज री हाका होवर थरहर, पड सु डाळा सीव।
खेर वखेरा कर दाणव, दता करण ज काळ।
छाडि कवर रिणमाळ, तोन रिणा न मोकळ ॥ २७५ ॥

(ख) कुन्ती के बारबार समझान पर उसका कथन —

सासू थार पाडू पाच, मो अबरा र अहमन एकलो।
जाय पुछाडो राय, जे चाहो म्हारो भलो।
जे चाहो म्हारो भलो, न जाय पुछाडो राय।
भींव पुरिप वास रह्यौ, राजाजो सुख थाय।
पिता ज रो सुरा भुवणे, हुव छाडयू हाच।
म्हार अहमन एकलो, थार पाडू पाच ॥ ३०७ ॥

(ग) उत्तरा से बिना मिले ही अभिमन्यु को युद्ध मे जाता देख कर श्री कृष्ण से अपने सबधों की याद दिलाते हुए सुभद्रा की प्रार्थना —

सोहेद्रा कहै समझाय, सिरजण हारा साभळी।
उतरा अर अहमन, कहि क्यौं करि पूज रळी।
कहि क्यौं करि पूज रळी, न लिख्यौ मसतग लेख।
किसनजी कहियो करो, भांणज दिस देखि।
सरण ताहरी सामजी, उरि मेटो अणराय।
कवरो घर दिस मोकळो, सोह्द्रा कहै समझाय ॥५५१॥

\+ \+ \+

करता साभळ कान, वर नारि सबळो विखो।
का करो छ मासी राति, का अहमन अजरोटो लिखो।
का अहमन अजरोटो लिखो, (न) अबळा कितो बसेख।
किसन बकसो काचळो, भाणज दिस देखि।
अरज कर आतर थकी, वीनती आह मान।
वर नारी सबळो विखो, करता साभळ कान ॥ ५५७ ॥

(घ) रोकने के सब प्रयास विफल होने पर स्वय का दुख प्रकट करना —

एक पूत हे मेरी माय, घर सूनू ने बाहरि जाय।
थार मुहि आव याम रो घाण, क्यों जोपलो राणो राण ॥ ५८५ ॥

रोणायर वर्यों सोत घडं, अपत बाळ वर्यों रिण मां थिड ।
घुळके घुळके आंसू आव, मुह अनन भाय ॥ ५८७ ॥
गोख चडी चुह दिस जोय, मत खिण अरजन आव ।
अरेजन पात जे घरे होय, बाळ रिणां न मेल्है कोय ॥ ५८८ ॥

उत्तरा के रूप म कवि न ऐसी परिस्थिति म पडी हुई एक सामान्य पत्नी की भावनाओं का सक्षिप्त किन्तु बडा भव्य वर्णन किया है। कथा-प्रवाह इस ढग स नियोजित किया गया है कि उसको कुछ अधिक कहने का अवसर ही नही मिलता। उत्तरा की पति के प्रति मगल कामना, मिलनोत्कठा वियोग और मरणोपरान्त दुख का वर्णन सहज और स्वाभाविक हान से प्रभावशाली है। उदाहरण इस प्रकार है —

(क) रवारी के विराट से वापस 'कूपला' लान पर उत्तरा का कथन —

कवरो वेधि मया करि बोल, रवारी वधारो ।
दसे आंगळिय वेल पहरावो करहै लूण अ थारो ॥ ५३४ ॥
भाई राधा भाई रतनां, सांभळि माहरी वात ।
माहरो साई जीपे आवे, गाय दिराडू सात ॥ ५३५ ॥
कवरि वसि मया करि बोल ओ रवारी रूडो ।
रवारी ने लाख टका, रवाण्रय नं चूडो ॥ ५३६ ॥

(ख) हस्तिनापुरा मे उत्तरा का अभिमन्यु को देखना और उसके तत्काल ही रवाना होने पर अपनी विवशता और दुख का वर्णन —

सूर घणां हो उगव, मो लाग अळिया ।
धन आजोरो उगियो, नीणे पीव मिळिया ॥ ५४२ ॥
नणं मिळिया नण, उतरां अहमन पेखियो ॥
निरखे अपन नीण, पीवजी दरसण देखियो ।
पीवजी दरसण देखियो, न मन माहि चिंता मोह ।
तन मेळो तोई हुव, जे हरि पूज्यो होय ।
अहमन आंण आंगण, सो सजण सो सण ।
मुरछा गति आई महलि, नीणे मिलिया नीण ॥ ५४५ ॥

\+ \+ \+

मूवयो नारि नेसास, पीवजी रणे पधारियो ।
मांहर दुःस रही मन माहि मैं जमवारो हारियो ।
मैं जमवारो हारियो, न दुःस रहो मन माहि ।
ओ जमवारो पीव विनां सा करता सिरजो काय ॥
विरह दहै ज्यों धातदे, अन्तर भागी आस ।
पावजी रण पधारियो, मूवयो नारि नेसास ॥ ५४८ ॥

(ग) युद्ध म जात समय घोडे की लगाम पकडकर उत्तरा की अन्तिम प्रार्थना, अभिमन्यु का

सान्त्वना देना और उसका विरह-वर्णन। विवशता और वेदना का मानो सजीव चित्र कवि ने प्रस्तुत कर दिया है —

उतरा विळगी वाग, पीवजी रहै न पालियो ।
मो न कही भळाय, जे तू रिणोही हालियो ।
जे तू रिणोही हालियो, न मोनें कही भळाय ।
नारी दुख सुख पीव पाखो, कहे कोण सू जाय ।
जग प झगडो साझणों, ग्रह दुख वैराग ।
कवरो रिणवट हालियो, उतरा विळगी वाग ॥ ५९६ ॥
बहू भळाई मात, तोन अळयो न भाखियो ।
तो करिसो सनमान, राजकवरि रसि राखिसो ।
राजकवरि रसि राखिसो न तो करिसो सनमान ।
आव भाव आदर घणो बोहत वेवण मान ।
घरि जाह पाछी कहै अहमन मुख सुणीज बात ।
कवरो रिणोही हालियो बहू भळाई मात ॥ ५९९ ॥
भळिया ढोर चराय माणस भळिया क्यों रहै ?
पीव पाखो दिन जाय, से दिन तो मोन दहै ।
से दिन तो मोन दहै, नें अतरि इयक अधोर ।
वीर विहूणो वहनडी, कांय सिरजो करतारि ।
जळणी ओदरि न जळी, कहा किंयो जगि आय ।
माणस भळिया क्यों रहै, भळिया ढोर चराय ॥ ६०२ ॥
पुरिय विहूणो नारि जिसो वेळू री वेलडो ।
प्रीव पाखो दिन जाय, नाह विना झूरू खडी ।
नाह विना झूरू खडी, नें विळक्त रोण विहाय ।
काय न सिरजो रोझडी धण माहि धोळो गाय ।
नारि निसास न मेल्हिज, नाह वीण निरधार ।
जिसो वेळू री वेलडो, पुरिय विहूणो नारि ॥ ६०५ ॥

(घ) अभिमन्यु का मरना सुनकर उसका दुख —

क्यों जायसी जमवार क्यों मनि पूज मो रळी ।
मो तडफति वीहाय, ज्यों जळ पाखो माछळी ।
ज्यों जळ पाखो माछळी, नें विल विल सोख थाळ ।
प्रीव पाखो प्राण त्यागें, कर जिसडो काळ ।
जीव तो जगदीस सारे, नाह वीण निरधार ।
क्यों मनि पूज मो रळी, क्यों जायसी जमवार ॥ ६५४ ॥

उत्तरा के रूप और शृंगार का वर्णन अधिक नहीं हुआ है और जो हुआ है, वह भी प्राय परम्परायुक्त है। जब भाट और ब्राह्मण विवाह तय करके विराट से आते हैं, तब

उसका वर्णन किया गया है, दूसरे उसके हस्तिनापुर से विदा होते समय और तीसरे अभिमन्यु के रण मे जाते समय। दूसरे का उदाहरण इस प्रकार है —

एहयो अयूक बोण, सु णि अट्मन री असतरी।
भुधर विलगो आय, कचण थभ केहरी।
कचण थभ केहरी, न एहयो अयूक बोण।
कठ कोकिल सोहणो बोलती लयलीण।
बाइयों जेहा वत सोहैं, जांणि सोन री फूलडो।
वरसाळ री बीज चमक यों चमक खेउ घड़ी।
कांकण चूड़ा रालडो, सोह पायळ पाय।
कचण थभ केहरी भुधर विलगो आय ॥४९२॥

उत्साह की भावना अभिमन्यु की अनेकान्त उक्तियो म प्रकट हुई है। उसके रण में जाने का निश्चय जान कर जब सुभद्रा ने उसको "बाळो" कहा तो उसने अनेक युक्तियो से समझाते हुए कहा कि "बाळो' ही भला होता है —

गरडा सर न काम, जे वयों तो बाळा भला।
बाळो पून्यो रो चद कर चहू चकि चादिणों।
बाळो वरस मेह, बाळो दणियर उगणों।
बाळो दणियर उगव नैं बाळो वरस मेह।
बाळो होतासण वन दहै जा न लाभ छेह॥
बाळो केहरि वन वस वना करो राय।
हाथियां रा झूळ भाज, वन छाडे जाय।
बाळो विसहर झाळ मेल्है, खडहड वरियाम।
जे वयो तो बाळा भला गरडा सर न काम ॥२९२॥

इसी प्रकार रण मे जाते समय वह प्रकारान्तर से इसी बात को श्री कृष्ण पर लागू करके पुन अपनी मा को सात्वना देता है। श्री कृष्ण के सम्बन्ध म उसका कथन अत्यन्त साभिप्राय है —

बाळो न कहि म्हारी माय जिण बाऊ इसडी करी।
मथुरा पछाडियो कस, सोळा सहस गोपी वरी।
सोळा सहस गोपी वरी, नै मोहि किसन मुरारी।
गोम्यद कारणि गींद र, पठो जमन मझारि।
पिनग पयाळो नाथियो, आण्यो वासिग राव।
बाळो कहतो लाजऊ, बाळो न कहि माय ॥५८४॥

ज्योतिष शकुन और स्वप्न के फलाफल पर कवि की गहरी आस्था प्रकट होती है। राजस्थानी लोकजीवन म आज भी इनके प्रति वैसी ही मान्यता है। इनके वर्णन क्रमश ये हैं —

ज्योतिष –

(क) अभिमन्यु के उत्पन्न होने पर ग्रह-नक्षत्रों का बताना —

सहदेव जोयसी जोयस जोर। नखत किण कवरो जन्म्यो होय।
चादणि चवदस न थावर वार। रूडै दिन जळम्यो राजकवार॥
सरवण नखत कवरो जावियो, कवरो कुळमडण आवियो।
चद्रमुखी नै पाय पदम कवरो नाव दियो अहमन॥८०॥

(ख) ज्योतिषी से अभिमन्यु के 'माव' का पूछना, विघ्न की बात जानना —

जोयसी जोयस जोय, कदि वियायक थापिस्या।
चदण तेल फुलेल, उवटणो कदि जापिस्या।
कदि करिस्या आचार, माहड मिल सोहेलडी।
मिलि गाव मगळचार, सुदिन सुवायत सुभ घडी।
मन पोग्य दावो मोहि कदि र वियायक थापिस्या॥जोयसी०॥१२१॥
आठुय मगळवारि, वियायक बस सही।
विगन लिख्यो विवाह, निरवाहो लिखियो नहीं।
निरवाहो लिखियो नहीं, न साहो लिख्यो सपूज।
जग्य वाणा उछळ, का हुव अचित्यो झूझ।
ग्रह नखत सजोग जुडियो, वाजस्य रिणतार।
इसडा साहा ऊघडै, आठुंय मगळवारि॥वियायक०॥१२४॥
कुरव सहोदरा माय, अरजनजी आसू छल।
विगन लिख्यो वीवाह पाप किसा हुता पल।
पाप किसा हुता पल न विगन लिख्यो वीवाह।
सोहेदळ सार वीनती, वळि वळि लग पाय।
पात प्रोहित सू कहै साहो फेरि लिखाय।
बुरा विगन सह टाळज्यो, सुर सहोदरा माय॥१२७॥

शकुन – शकुनो का उल्लेख दो प्रकार से हुआ है, एक वे जिनमे शकुन-विशेष न बता कर उसका फल निर्देश किया जाता है और दूसरे वे जिनमे इन दोनो का उल्लेख रहता है। दोनो के उदाहरण क्रमशः इस प्रकार हैं —

भाट और पुरोहित के विराट जाते समय—

(१) (क) वराठ न ज्यों चालिया तायें सुण अपूरब थिया॥१८॥

उत्तरा के हस्तिनापुर को रवाना होते समय–

(ख) सुणो कवरि न कूड, सुणे नहीं स सू णियो।
मन मां देखि विचारि, महली मायो घू णियो।
महली मायो घू णियो नै कहै मुख ता भाखि।
भरतार सरसो भेंट नांहीं, सूणे दोन्हीं साखि॥४८७॥

(२) जब 'विराट राव' ने अपनी कन्या देने का संकल्प किया–

(क) अमन्य कूं ण मां कागण्य बोल, महली सूं ण विचार।
मां सूणा नै कन्या बोज, ता कन्या पर हार ॥१०२॥

जब 'जान' विराट में तोरण पर आई–

(ख) तोरण आई जान, काग कड़व बोलियो।
दिल मां देति विचारि, महली रो मन डोलियो।
महली रो मन डोलियो, न दिल मांहि देति विचारि।
सूण सभ बावळ हुवा, मुजारी मुजार ॥१६०॥

(३) स्वप्न हस्तिनापुर जाने से पूर्व उत्तरा ने स्वप्न देखे और प्रत्येक बार अपने मन को समझाया। रात्रि के दूसरे प्रहर में उसने यह स्वप्न देखा –

दूज पहर रो विचार, अणव कवरि सुहिणां लह।
ऊभी गंगा तीरि, धोळा वसतर पहरिया।
गंगा केर तीर ऊभी हांऊ निरमळ नीर।
देखि देखू को नहीं, हियो न बंध धीर।
डूबती में साम्य सिंवरयो, मो दियो आधार।
अणव कवरि सुहिणां लह, दूज पहर रो विचार ॥३५७॥

कथा में तीन मोड़ हैं– (१) आरम्भ से लेकर अभिमन्यु के विवाह तक, (२) उसके युद्ध में वीर गति पाने तक तथा (३) अर्जुन के हस्तिनापुर आने से लेकर अन्त तक। इनमें सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अंश दूसरा है, जिसमें समस्त कार्य-व्यापार अत्यन्त क्षिप्र-गति से होते हैं, कथा बड़े वेग से आगे बढ़ती है तथा घटनाएँ अत्यन्त त्वरा से घटित होती दिखाई देती हैं। इस प्रवाह में अनेक मानवीय भावनाएं डूबती उतराती बहती हैं।

अभिमन्यु के युद्ध में विदा होते समय करुण दृश्य उपस्थित हो जाता है। इसकी आधार भूमिका भी पहले से ही तयार की गई है। वापस आने पर जब अर्जुन को अभिमन्यु की मृत्यु का पता लगता है, तब वह भी शोक में अभिभूत हो जाता है।[1] ब्राह्मण वाली घटना की योजना इसी शोक को कम करने के लिए है। स्मरणीय है कि अर्जुन का शोक शनैः शनैः ही कम होता है, एकाएक नहीं। इसका आरम्भ तब होता है, जब ब्राह्मण अर्जुन को यह कहता है —

१–वह श्रीकृष्ण को बार बार अभिमन्यु को दिखाने के लिए कहता है —
अरिजन की अरदासि, सिरजणहारा सांभळी।
अहमन नजरि दिखाळि, मन मांहे पूजं रळी।
मन मांहे पूज रळी, न अहमन नजरि दिखाळि।
प्रीति मोसूं पाळता, प्रीति मांई पाळि।
दीठि दरस्य भाजिसी, वरस भादव मासि।
सिरजणहारा सांभळी, अरिजन की अरदासि ॥ ६६६ ॥

सुण कर वो कहै पात, हू आए कार्यो क्रू ?
पवन गयो १स सोलि, करि धोखो मन मा घरू ।
करि धोवो मन मा धरू, धरि करू क्या धेठ ।
बाभण अरिजन नें कहै, दोयो खोळ घसेटि ।
बेटा बेटी को नहीं, अं वात की वात ।
हू आए कार्यो करू, प्रोहित कहै सुणि पात ॥६७९॥

इसी प्रकार ब्राह्मणी की बात सुन कर उसको ओर अधिक नान प्राप्ति होती है और शोक कम होता है —

बाभणी कहै सुणि बोलय, अरिजन साभळि आरिखो ।
तरवर वासो आय, पूत पखेरु सारिखो ।
पूत पखेरु सारिखो, नें सांझ मिल सजोग ।
परभाति हूवा वीछड, वीछडि कर विजोग ।
पछे वीछडि न आवही, मोह कर न बाळ ।
पूत पखेरु सारिखो बाभणी कहै सभाळि ॥६८८॥

इसकी चरम परिणति तो तब होती है जब अर्जुन को रोता हुआ देखकर भी अभिमन्यु की आत्मा उसको पहचानती तक नहीं और सासारिक नाते- रिश्तों का सही रूप कृष्ण को सबोधित कर, प्रस्तुत करती है । उदाहरणार्थ —

अहमन कहै ओ कूण, आसू तप कोया अता ।
साम्य कह्यो समझाय, अरिजन पूरिबलो पिता ।
अरिजन पूरिबलो पिता, न अहमन मिल न उठि ।
आसू तपि अरिजन कर पिता तुहारो पूठि ।
जिणि जळणी हू जळमियो, पिता कहीय पूण ।
अहमन करता सू कहै, ओह उपायो कूण ॥७००॥

पात्र (क) स्त्रीपात्र स्त्रीपात्रा म सुभद्रा, उत्तरा की मा उत्तरा और कुती प्रमुख हैं । इनम नारी के सभी रूपा बहन, बेटी, पत्नी और मा तथा उनकी भावनाओ का दिग्दर्शन मिलता है । प्रथम तीन के विषय म प्रकारान्तर से ऊपर लिखा जा चुका है । प्रतीत होता है कुन्ती को अभिमयु के पूर्व जन्म की कथा ज्ञात है । इस सम्बन्ध मे दो प्रसग द्रष्टव्य हैं —

१—अभिमन्यु के 'सा'व के अशुभ फल को सुनकर दुखी हुई सुभद्रा को कुन्ती ने समझाया कि विधाता का लिखा टलता नही । इस पर अत्यन्त भोलेपन से सुभद्रा के द्वारा विधाता के हाथ कटान का और प्रत्युत्तर मे कुन्ती का यह कहना कि तेरा भाई जैसा लिखाता है, विधाता वैसा ही लिखता है, इसी ओर सकेत करते हैं —

सुभद्रा वेह रा वढाऊ हाथ, ओछा साहा तू लिख ।
परो कढाडयू टोरि, वेह विना सारु पख ।
वेह विना सारु पख, न करू जिसड जोग ।

ओछा साहा तू लिख, जोगां कर विजोग ।
लख चोवरासी तू लिख, योद मां आ यात ।
काल्ही कइ न कायदो, वेह रा वडाडयू हाय ॥१३३॥

कुन्ती वेह न किसो वराज, वीर लिखाव वेह लिख ।
परथि न वाळू लेख, परमेसर पूछया पख ।
परमेसर पूछ्या पख, न परथि न थाळू लेख ।
विसन घर सोई हुव, लिख विधाता लेख ।
सिरजण हारो सिवरिय, सफळ सवार काज ।
वीर लिखाव वेह लिख, वेह न किसो वराज ॥१३६॥

इसका एक और उदाहरण अभिमन्यु के युद्ध म जाते समय सुभद्रा को समझाते हुए कुन्ती के इस कथन म मिलता है —

सोहेळा सांभळि वण, परमेसर माहीं पख ।
न कर छमासी रण, मां अहमन अजरोटो लिख ।
मा अहमन अजरोटो लिख, न सही विसोवा वीस ।
कह्यो न मांन कांन्हवो मने बोवणी रीस ।
भोळो भेद न जाणही, काय छाल नीण ।
अहमन अजरोटो लिख, न करे छमासी रण ॥५६०॥

इस प्रकार, कुन्ती श्री कृष्ण के कार्य को पूरा करने म प्रकारान्तर से सहायक सिद्ध होती है ।

(ख) पुरुष पुरुष पात्रो म श्री कृष्ण, नारद, अहिदानव अभिमन्यु और अर्जुन मुख्य हैं । श्री कृष्ण समस्त कार्य योजना के सूत्रधार हैं परन्तु अपनी इच्छा म व कथा प्रवाह को नहीं मोडते, मूल योजना म किंचित व्यवधान होने पर ही उपस्थित होते है । उदाहरणार्थ अभिमन्यु के विवाहोपरान्त इन्द्र पर चढाई करवाना और कौरवो को युद्धार्थ प्रेरित करना उन्हीं के कार्य हैं —

नारायणजी मत उपाय । रिख नारद न लियो बुलाय ।
नारदा तू 'र पयाळे जाय । तान्ू दत न कहि समझाय ॥२१४॥
तू तान्ू इ दरागगि जाय । तोहि मेल्ह तेतीसा राय ।
ताऊ इ दरानण योटियो । वग करि अरजनजी गयो ॥२१५॥
नारायण करयां वीवांणि । दळि लावण कीयो परवांण ।
पौटि रे करस्यो आहीं थान । घरे नहीं छ अरिजन पात ॥२१६॥

इसका दूसरा उदाहरण तब मिलता है जब व प्रभात होते ही अभिमन्यु को शीघ्र रण मे जाने के लिए प्रेरित करते हैं —

अहमन सुणि कहेवा गुन । राय दरजोधन मांगै मूस ।
आगां कइ देस्यें गाढि । तोहि रामडी परी ज राढि ॥५८९॥

असत्री तर्णो न कीज मोह । काढि कटारो वाढो छोह ।
असत्री तर्णो न कीज मोह । रीणि पसता लाग लोह ॥५९०॥
असत्री छळियौ वदरवाळि । श्री रांम हू पडयौ जजाळि ।
मामा तणा वण साभळे । फाडे रथ घोडा जोतरे ॥५९१॥

अन्त म पुत्र– वियोग म दुखी अर्जुन को ब्राह्मण के दृष्टान्त द्वारा सात्वना दिलाते हैं, साथ ही जयद्रथ– वध का काय भी सम्पूर्ण करवाने की योजना पक्की कर लेते है । इस प्रकार साधु– रक्षा और दुष्ट– दमन का काय वे पूरा करते हैं।

अभिमन्यु कथा का नायक है। अहिदानव के रूप म वह कृष्ण से बदला लेना चाहता था किन्तु न ले सका । अभिमन्यु–रूप म उत्पन्न होने पर उसको अपना पूवजन्म याद नहा रहा, केवल मृत्यु–समय ही याद आया –

वर आयौ राव मायँ किसन काज सवारियौ ।
नारांयण सु कूड रचियौ, पूरव वर चितारियौ ॥६४६॥

सुभद्रा के पूछने पर वह सहज भोलेपन से युद्ध के बीडे लेने की सारी घटना सुना देता है–बार बार उसके पिता का नाम लिए जाने पर उसने बीडा लिया । आत्मसम्मानार्थ और कुल की लाज के लिए वह युद्धार्थ कृत सकल्प रहता है । युद्ध मे जाने से पूव वह सवप्रथम अपने मामा की ही पूजा करता है, यही नही अपनी मा को मामा के वीर कृत्यो का बखान करके सात्वना देता है। उसके प्रति भाग्य की यह विडम्बना है ! वह पूवजन्म का दानव है तथापि अपने भोले स्वभाव और काय दृढता से सबकी सहानुभूति का पात्र हो जाता है । घर स विदा होते समय स्त्रिया के समूह म अपनी पत्नी को देखने पर उसके हृदय की स्निग्धता भी छलकती दिखाई देती है –

किनका नेह ब्रय, झीण सवाया पहरियौ ।
सुधी छली कपूरि नणे काजळ सारियौ ।
नणे काजळ सारियौ न नाह पेख नारि ।
सुरत सेझा सारिखो, न कियो करतारि ।
जीत रत मा न पामरू पीव भेटियौ समान्य ।
झीण सवाया पहरियौ, किनका नेहा ब्रय ॥ ५७५ ॥

अर्जुन यह एक सामान्य–मानव, सीधे और भोले–भाले निष्कपट वीर तथा कृष्ण–भक्त के रूप म चित्रित हुआ है । अभिमन्यु के प्रति उसका गहरा प्रेम है । 'सा वे' के अशुभ फल की बात सुनकर वह भी रोने लगता है । अन्त म श्रीकृष्ण उसका मोह दूर करवाते है ।
नारद राजस्थानी साहित्य मे ये कलह–प्रिय चित्रित किए गए हैं, यहा भी ये प्राय यही काय करते हैं, जो निम्नलिखित हैं —

(क) 'जन्तर' लाने पर कृष्ण की राणियो की उत्सुकता बढाकर उसको खुलवाने की प्रेरणा देना । (छन्द ४४–४६) ।
(ख) कृष्ण की आज्ञा से पाताल जाकर ताळू' दत्य को इन्द्र पर चढाई करने के लिए कहना ।

(ग) अभिम यु के युद्ध म जाने का समाचार सुभद्रा को कहना —

उचळ चीता कांय, प्र भा-सुत पधारियौ ।
सु णो सोहेदरा माय, ये जमवारो हारियौ ।
ये जमवारो हारियौ, न सु णो सोहेदरा माय ।
मिंदर बैठी माल्ह ही, मन नहीं अणराय ।
जांगी ढोल दड किया, वाजिया रिण सार ।
प्र भासुत पधारियौ, सुणौ सोहेदल विचार ॥ २६८ ॥

प्रस्तुत का य सगीत योजना और नाटकीय तत्वो के सफल गुम्फन और सहज घरेलू भाषा के कारण अत्यन्त लोकप्रिय रहा है। प्रत्येक काय और घटना मूल कथा को गतव्य स्थान तक ले चलते हैं। पाठक और श्रोताओं पर इन सबका गहरा प्रभाव पड़ता है और उनकी उत्सुकता बराबर बनी रहती है। *प्रचलित पौराणिक कथा म मूलभूत अन्तर भी* औत्सुक्य-वत्ति बनाए रखने मे एक कारण है। द्रोणाचाय के युद्ध का बीडा पाकर तो सभी कार्यों और घटनाओं मे अत्यन्त त्वरा आती है जिसमे पाठक और श्रोता सहज ही रम जाता है। इससे तत्कालीन लोकमान्यता, विश्वास, रीति-रिवाज, प्रचलित रूढि आशा-आकाक्षा आदि अनेक बातो का बडा अच्छा परिचय मिलता है। १६ वी शताब्दी के मरुदेशीय समाज के अध्ययन के लिए यह रचना अत्यन्त उपादेय है।

इसम प्रधानत शृगार, वीर, करुण और शान्त रस है, काय की परिणति अन्त म शान्त रस म ही होती है। कवि ने सवत्र उदात्त गुणो को ही प्रश्रय दिया है, पाठक और श्रोता को इन्ही के ग्रहण की प्रेरणा इससे मिलती है।

समस्त रचना मे मरुदेशीय आत्मा की झाँकी दिखाई देती है। इसके अनेक उदाहरण ऊपर आ चुके हैं दो नीचे दिए जाते हैं —

(१) जब अभिमन्यु की "जान" विराट के निकट पहुची तो 'पन्जानी सामने आए —
नगर हू ता जोजण आग, पन्दन साम्हा आया ॥ १५५ ॥
पड़दनियां ज्यों साम्हां आया, भीव दिय सोपारी ।
दुवटे दुवटे दू ण उछाळ, ग्यान कर के वारी ॥ १५६ ॥

यह रीति गावो म आज भी प्रचलित है।

(२) जब उतरा के लिए दुकान से सामान मगवाया गया तो महता ने "बुगचा" खोला —
ल्योहजो थार चित चड न साडो सालू चीर ।
आग बुगचा खोल्यज माहि जरक्स हीर ॥ ४८४ ॥

"बुगचा' राजस्थान म जन-साधारण के घर की चीज है।

रवारी राजस्थानी लोक-जीवन के प्रमुख अग रहे हैं, ऊट पालना और चराना उनका प्रमुख पेशा है। व श्रेष्ठ सवार-वाहक मान जाते रहे हैं। यहां भी ये यही कार्य सफलतापूर्वक निबाहते हैं। विराट म रवारियों की बातों और उनके कार्यों से उनकी स्वामि

भक्ति, शिष्टाचार तथा चतुरता का पता चलता है। यही नही, उनके अनेक कथन बहुत अर्थगर्भित और मनोवैज्ञानिक हैं।

कथा के प्रत्येक पात्र के हृदय की धड़कन सामान्य जन की सी ही हैं। छोटे और बडे सभी चरित्रो म पारस्परिक मानवीय सौहार्द्र की भावना पाई जाती है। उत्तरा का रवारियो को "भाई" कहकर सम्बोधन करना इसका सर्वोत्तम उदाहरण है।

हजूरी कवियो म पौराणिक कथानको पर आख्यान-काव्यों की रचना करने वालो मे तीन कवि प्रमुख हैं–डेल्ह, पदम भगत और मेहो। कालक्रम की दृष्टि से प्रथम दोनो कवि १६ वी शताब्दी आरम्भ के कवियो म से हैं। राजस्थानी साहित्य म आख्यान–काव्य–परम्परा का सूत्रपात इन्ही दोनो से होता है। प्रस्तुत रचना का महत्व इस कारण और भी बढ जाता है।

४ आछरे (सवत १५००-१५५०)

ये बीकानेर के आसपास के निवासी थे। विवेच्य साखी से इनका "हजूरी" होना ध्वनित होता है। इनका समय सवत् १५०० से १५५० के लगभग होने का अनुमान है। रचना से इनके सिद्ध योगी होने का सकेत मिलता है।

राग "मलार" मे गेय इनकी "कणा की" निम्नलिखित साखी मिलती है (प्रतिसख्या २०१, २६३) —

मेरे मन्य हुलास, सभरायळि जाइये ॥ १ ॥
सभरथलि जाइय खरच माहीं, वीच अमावस कीजिय ॥ २ ॥
उतारि गहणौं होय लहणो, विलसि लाहो लीजिय ॥ ३ ॥
काहे का मैं करू दीपग, काहे के री बातियां ॥ ४ ॥
काहे का मैं घिरत छालू जगौं छमासी रातियां ॥ ५ ॥
सोनै का मैं करू दीपग, रूप बाती छलाइया ॥ ६ ॥
सुर गऊ को घिरत छालू, जगौं छमासी रातियां ॥ ७ ॥
सधि होय करि जगो दीपग, दासि हू मैं तेरियां ॥ ८ ॥
अपण धणी सू सारि खेलू, कला राखी मेरिया ॥ ९ ॥
प्रबत ता दोय चार उतर्या, सोनै तार छलाइयां ॥ १० ॥
सोई पह (र) घण चौक बठी, इ द देखण आइयां ॥ ११ ॥
कहे आछरे करी करणी, पारि पहु चो भाइया ॥ १२ ॥ -प्रति सख्या २०१ से।

इसम योग की समाधि-अवस्था प्राप्त करने का उल्लेख है। इसी मूल भाव को दाम्पत्य-प्रेमपरक रूपक म व्यक्त किया है। एक प्रकार से इसमे रूपको की क्रमश तीन शृखलाएँ चलती हैं जो परस्पर सम्बद्ध और अन्योन्याश्रित रूप से एक दूसरे की पूरक हैं। ये निम्नलिखित है —

(क) पत्नी का समराथळ पर अपने पति से मिलने जाना (पंक्ति १-३),
(ख) वहां उसके साथ रमना (पंक्ति ४-९),
(ग) उसके सौन्दर्य-दर्शन के लिए चंद्रमा तक का आना (पंक्ति १०,११)।

समस्त प्रतीक-योजना हठयोग की प्रक्रिया से सम्बंधित है। ये प्रतीक सहज ही बोधगम्य हैं क्योंकि, एक तो सामान्य पाठक इनसे भली-भांति परिचित है, दूसरे इनमें प्रयुक्त प्रस्तुत और अप्रस्तुत में व्यापार, भाव और दृष्टि-साम्य है। प्रभाव की गहराई और कथन की ओर ध्यान केन्द्रीभूत करने की दृष्टि से बीच में प्रश्नोत्तर शैली का प्रयोग बहुत उपयुक्त है। ऐसी प्रतीक और रूपक-योजना जाम्भाणी-साखी साहित्य में दुर्लभ है। नीचे इसमें प्रयुक्त प्रतीक दिए जाते हैं -

(क) समराथळ = समाधि-अवस्था, कैवल्यावस्था।
अमावस्या करना = सूर्य-चन्द्र संयोग अर्थात् कुंडलिनी का ऊर्ध्वमुखी होकर सहस्रार में स्थित अमृत स्रावक चंद्रमा का अमृत पान करना।

गहना उतारना = आत्मस्थ होना। लय होकर विलास करके लाभ लेना= यह अमृत पान कर अमर होना।

(ख) सोने का दीपक = मूलाधार चक्र में स्थित कुंडलिनी। चांदी की बाती= सहस्रदल-कमल स्थित चन्द्रमा। सुर-गाय के घृत से भरना=अमृत-स्राव।
छमासी-रात्रि-जागरण = उन्मनावस्था। (मैं) नारी=जीवात्मा। पति (धणी)= ब्रह्म। चौपड़ खेलना=ब्रह्मलीन होना। कला रखना= समरसावस्था, तदाकार स्थिति।

(ग) पर्वत=मूलाधार चक्र। दो चोर=इड़ा, पिंगला। सोने का तार=सुषुम्ना। स्त्री (धण) का इनको पहनना=ऊर्ध्वमुखी कुंडलिनी। चोर में बैठना=सहस्रार में स्थित होना। इंदु का देखने आना=अमृत-स्राव होना।

५ पदम भगत (पदमोजी) (अनुमानत संवत् १५००-१५५५)

ये नागौर के पास गुणावती के निवासी और तेल का काम करने से तेली कहलाते थे। प्रारम्भिक हजूरी विष्णोई कवियों में इनकी बड़ी प्रसिद्धि है। महलाणा गांव के विष्णोई भाटों तथा साधुओं में प्रचलित मान्यता के अनुसार इनका स्वर्गवास गुणावती में ही संवत् १५५५ के आसपास हुआ था।

पदम के विष्णोई कवि होने के कई प्रमाण मिलते हैं -

१-संवत १६६६ में लिपिबद्ध "ब्यावले" की अद्यावधि उपलब्ध प्राचीनतम प्रति-अ० प्रति[1] में कवि ने स्वयं को वैष्णव बताया है -

त्रिभुवन तणा रूप की सच्या, आणइ एकणि वांणी।
हर जोसी तेड़ो नइ पूछया, वैष्णव पदम वषाणो ॥ १०० ॥ १७ ॥

प्रति संख्या १५२, २०१, २०६ और २०८ में वैष्णव के स्थान पर "साध" पाठ है और छन्द इस प्रकार है -

रुषमण्य रूप तणों की सच्या, आणों एका वांणी।
जादम तेडो मुकियो, पदमइय साघ वषाणो ॥ १२८ ॥

इससे दो बातें स्पष्ट होती हैं-(१) पदम विश्नोई कवि थे, सम्प्रदाय के अनुयायी "वैष्णव" भी कहलाते थे। 'विश्नोई' के लिए 'वैष्णव' शब्द का प्रयोग सम्प्रदाय की आरम्भिक और विकासमान स्थिति का द्योतक है तथा जिसके द्वारा मूलाधार मान्यता-विष्णु-उपासना का स्पष्ट संकेत किया गया है (द्रष्टव्य-विश्नोई सम्प्रदाय नामक अध्याय)। प्रति संख्या ९० में 'रुक्मणी मंगल' के अंत में भी वैष्णव शब्द का प्रयोग है -

भणे पदमैयो वैष्णव यूं सिघासण जगदीश।

(२) कवि प्रस्तुत रचना के समय साधु था। इसका समर्थन इस बात से भी होता है कि सम्प्रदाय में ये विश्नोई साधु ही माने जाते हैं।

२-सम्प्रदाय में रात्रि में "जागण" (जागरण) और "जम्मा देन" की प्रथा जाम्भोजी के समय से ही है। हजूरी कवियों की अनेक रचनाओं से भी इसकी पुष्टि होती है। इस सम्बन्ध में ध्यातव्य है कि - (क) जागरण में "ब्यावले" का गाया जाना तथा (ख) जागरण और जम्मे में आधी रात के बाद पदम कृत आरती करना आवश्यक कृत्य थे और इनका दृढ़तापूर्वक पालन किया जाता था। यही नहीं श्रद्धालु विश्नोइयों के यहां विवाहोपरान्त भी यह आरती[2] गाई जाती रही है। २९ धर्म-नियमों की भांति पदम की कृतियों का ऐसा सम्मान किया जाना बिना उसके विश्नोई हुए सम्भव नहीं था।

हरि महिमा गान के अतिरिक्त इसका एक प्रमुख कारण भी है। प्रकारान्तर से पदम की ये दोनों ही कृतियां गृहस्थ जीवन से सम्बन्धित हैं और मुख्यतः गृहस्थ लोगों को मोक्ष मार्ग दिखाना जाम्भोजी को अभीष्ट था। इस रूप में ये जाम्भोजी के ध्येय का संकेत कराने के साथ ही गृहस्थ लोगों में निष्ठा, कर्त्तव्य-भावना भरती और उनको साहस और सम्बल प्रदान करती हैं। अतः मंगल कामना स्वरूप दोनों का महत्त्व धर्मनियमों के समान समझा गया।

१-अभय जैन ग्रंथालय, बीकानेर, की प्रति होने से इसका नाम अ० प्रति रखा गया है। राजस्थान साहित्य समिति बिसाऊ द्वारा यह काव्य 'रुक्मिणी मंगल' नाम से प्रकाशित किया गया है, इसमें प्रकाशन संवत का उल्लेख नहीं है।

२-प्रति संख्या (क) ४८, (ख) २०१ तथा (ग) २२७ के "हरजस" संग्रह के अन्तर्गत।

३–प्राचीन और प्रामाणिक हस्तलिखित प्रतियों में विष्णोई हरजसों के अन्तर्गत पन्म इत उल्लिखित आरती[1] और एक 'हरजस' की गणना भी की जाती रही है। अब 'हरजसों' की भांति यह[2] भी सम्प्रदाय में बहु-प्रचलित है।

४–"ध्यांवल" की अनेक प्रतियाँ प्रत्येक साथरी में देखने में आई हैं तथा विष्णोई साधु

१–इसकी कतिपय पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं —

राग धनाश्री

आरती जो त्रभुवणनाथ किसन रुकमण आरती।
कर छ रुकमण री माय, कर छ भीषम राणी माय ॥ १ ॥ टेक ॥
धनि कुदणपुर रो राजियौ, धनि रुकमण री माय।
जिण कूंपि रुकमण अवतरी, वरी वडया जादुराय ॥ २ ॥
हरि र सहर सूरज सोहे, मुकट सोहै हीर।
काने कुंडळ रतन मळक, निरमळ सांम सरीर ॥ ३ ॥
ब्रह्मा वेद ज ऊचर्‌या, इंद्र क भारी हाथ।
आदि माया साई रुकमणी, परणी त्रभुवणनाथ ॥ ४ ॥
कसतूरी केसर अरगजो, चदन तिलक लिलाटि।
कर श्रीपति री आरती, किसन विराज्या पाटि ॥ ५ ॥
कसतूरी केसरि अरि कुंकम, सोवन सीप कपूरि।
हरि री सासू कर आरती, धन आजवणी सूरि ॥ ६ ॥
दाणौ मारि दफ किया, नासि गयौ सिसपाळ।
नहच त कारज सरयौ, जीतो श्री गोपाळ ॥ ९ ॥
हरि री सासू कर वीनती, साभळ त्रभुवणनाथि।
सोळा सहस गोपी घरि थारे, भोजन रुकमण हाथि ॥ १० ॥
सोनो दीनूं सोलवो, रूपो अत न पारि।
भण पदम जन आरती, आवागुवण निवारि ॥ ११ ॥ ७८ ॥–प्रति संख्या ४८।

२–राग सोरठि

नोपणियो हेला देतो जाय, नोपणियो वाळदि लादे जाय।
नोपणियो ताळी देतो जाय * प्राणीड न रापूं र विळजाय ॥ १ ॥ टेक ॥
आसण थारो आतमां, दिन दस रहियो आय।
पेम मगन मा राचियो, चल्यौ नीसाण वजाय ॥ २ ॥
वार वरस लग वेलणौं, तीसा वळि इधकार।
चाळीसा चळ चळ हुई निकसण लागो भार ॥ ३ ॥
ग्यान गरथ करि गूदडी, हरि भोळी ले हाथि।
करण कुमाई सगि चल, पाचूं चेला साथि ॥ ४ ॥
वीछडिया मेळो दुहेलो, तरवर पान प्रसग।
फीरि पाछ पायजो नही ज्यों काचळी भुवग ॥ ५ ॥
पतर पुराऊ थारो पम सूं रग री रेळा पेलि।
मन माहे डरती रहूं जण जोऊं ऊभी मेल्हि।
जीमिजो जूठिजो विलसिजो, हरि भजि लीजौ भोग।
पदम भण पायजो नहा श्री औसर औ जाग ॥ ७ ॥ १०८ ॥

–प्रति सख्या २०१ से।

* प्रति सख्या २०१ म यह अद्धपंक्ति त्रुटित है। यहा यह प्रति सख्या ४८ से दी गई है।

सबदवाणी के समान ही उसको विष्णोई कवि की कृति मानकर आदर-सम्मान करते है।

५-"ब्यावले" के "बृहत्" रूप वाली प्रतियो से भी पदम के विष्णोई कवि होने का अनुमान होता है (द्रष्टव्य-आगे, तृतीय समूह की प्रतियाँ)।

रचनाएँ

पदम की ये रचनाएँ प्राप्त हैं -

(१) **त्रिष्णजी रो ब्यांवलो**[1] (यह 'ब्यावलो', 'विवाहलो', 'रुक्मणी मगळ' नाम से भी प्रसिद्ध है)।

(२) **फुटकर पद, आरती, हरजस आदि**[2]।

"ब्यावलो" ब्यावलो इनकी अक्षय कीर्ति का आधार है, जिसकी रचना अनुमानत सवत १५४५ के लगभग की गई थी। राजस्थानी साहित्य का यह सर्वाधिक लोकप्रिय, प्रचलित और प्रसिद्ध आख्यान काव्य है, जो राग मारू, रामगिरी, सोरठ, केदारो, सिंधु, हसो और धनाश्री मे गेय है[3]। इस कारण मूल पाठ में गायकों की इच्छानुसार परिवतन परिवद्ध न हो जाना स्वाभाविक है। उपलब्ध प्रतियो मे पाठ-भेद, विपयय और प्रक्षिप्ताश

१-प्रति सख्या (क) ९०, (ख) ६१, (ग) १०३, (घ) १३८, (ङ) १५२ (ङ), (च) १६० (ख), (छ) २०१, (ज) २०६ (ट), (झ) २०८ (ग), (ञ) ३२७, (ट) ३३६, (ठ) ४०३, (ड) ४०५ (झ)। इनके अतिरिक्त अयत्र भी इसकी अनेक प्रतियाँ प्राप्य हैं —

(१) कैटालाग आफ दि राजस्थानी मनुस्क्रिप्टस, पृष्ठ ६, अ० स० ला०, बीकानेर।

(२) हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का सक्षिप्त विवरण (सन् १९०० से १९५५ ई० तक), प्रथम खण्ड, पृ० ५३८, काशी, सवत २०२१ तथा—वही, द्वितीय खण्ड, पृष्ठ ३१६, ३२६।

(३) ए कटालाग आफ मनुस्क्रिप्टस इन दि लाइब्रेरी आफ एच० एच० दि महाराना आफ उदयपुर, पृष्ठ २००, श्री मोतीलाल मेनारिया, सन् १९४३।

(४) राजस्थानी हस्तलिखित ग्रन्थ सूची, भाग १, पृष्ठ १४, जोधपुर, सन् १९६०।

(५) ना० प्र० स० द्वारा प्रकाशित हस्तलिखित हिन्दी ग्रन्थो के खोज विवरण अपेक्षित सशोधन, मुनि कान्तिसागर, ना० प० पत्रिका, वप, ६७, अक ४, सवत २०१९।

(६) राजस्थान के जन शास्त्र भडारो की ग्रन्थ सूची, चतुथ भाग, पृष्ठ २२१, जयपुर, १९६२ ई०।

२-प्रति सख्या (क) ४८, (ख) ६५, (ग) १५२(च), (घ) १७१(ग), (ङ) २०१, (च) २२७(घ), (छ) ३०१, (ज) ३०६, (झ) ३१४(च) (ञ) ३३८(क), (ट) ४०३ (ठ) ४०५।

३-अ० प्रति मे इनके अतिरिक्त राग देवसाख, वेलाउली और धवलधनाश्री का भी उल्लेख है।

बहुत है, किन्तु मूल पाठ का निर्धारण किया जा सकता है जो ऐसे महत्त्वपूर्ण प्राचीन काव्य के लिए परम आवश्यक है। इस सम्बन्ध में विभिन्न प्रतियों में प्राप्त पाठ का तुलनात्मक अध्ययन करने पर निम्नलिखित निष्कर्ष निकलते हैं। असंगत न होगा कि ये निष्कर्ष ग्रन्थ के उचित महत्त्व और मूल्यांकन में तो सहायक हैं ही पर साथ विष्णोई कवि राम[illegible] (कवि संख्या-९०) के विषय में भी उल्लेखनीय जानकारी देते हैं। इनसे भी ग्रन्थ का विष्णोई कवि होना ध्वनित है।

१-इनकी विभिन्न प्रतियाँ तीन परम्पराओं का द्योतन करती हैं, जिनके ये तीन समूह माने जा सकते हैं – (१)–अ० प्रति, (२)–प्रति संख्या १५२, २०१, २०६ और २०८ तथा (३)–प्रति संख्या ९०, ९१, १०३, १३८, ३२७ ३३६, और ४०३।

२–प्रथम समूह–अ० प्रति

(१) इसमें पाठ-विपर्यय के अनेक उदाहरण मिलते हैं जो कथा तारतम्य और प्रसंग की दृष्टि से असंगत हैं। विपर्यय एक छन्द की पंक्तियों और दो छन्दों में ही परस्पर नहीं, अपितु प्रसंग-विशेष के छन्द-समूह में भी है। अंतिम के दो उदाहरण ये हैं –

(क) छन्द १२५ से १३२ तक ८ छन्द, रुक्मिणी की अम्बिका पूजा से सम्बन्धित हैं। इसके पश्चात छन्द १३३ से १५० तक रुक्मिणी के अम्बिका पूजनार्थ जाने और उसके शृंगार का वर्णन है। स्पष्ट है कि ये ८ छन्द उसके बाद होने चाहिएँ, पहले नहीं।

(ख) श्रीकृष्ण के विवाहोपरान्त द्वारिका आगमन के पश्चात् क्रमशः (१) छन्द २५८ से २६१ तक फलश्रुति, (२) छन्द २६२ से २६४ तक 'बधावा' और (३) छन्द २६५ से २७० तक गाली गीत हैं। गाली गीत कुन्दनपुर में विवाह के समय, बधावा गीत द्वारिका आने पर तथा अन्त में माहात्म्य वर्णन होना चाहिए।

(२) समस्त रचना ३३ कडवकों में है किन्तु प्रत्येक के अन्तर्गत छन्द-संख्या में एकरूपता नहीं है।

(३) इसमें कई छन्द त्रुटित भी हैं। उदाहरणार्थ ६३ वें छन्द के पश्चात "अंतर नक्षत्र सूर पर गइ वर" से आरम्भ होने वाला अंश रुक्मिणी का अपनी माता के प्रति कथन है किन्तु एतद् विषयक उल्लेख वाला छन्द त्रुटित है। यह प्रति २०१ में यों है –

इमरत को कूप पलटि क, जहर पीवै कुण जांणि।
कचण काच पटतरो, गहली माय म जाणि॥ ६५॥

इसी प्रकार, इसमें कतिपय प्रसंगों में प्रक्षेप भी प्रतीत होता है। फलश्रुति के चार छन्दों (संख्या २५८–२६१) में उल्लिखित दूसरे समूह की प्रतियों में केवल २६१ वां ही अन्त में मिलता है।

३–द्वितीय समूह की प्रतियाँ

(१) इनका पाठ अपेक्षाकृत अधिक प्रामाणिक है। प्रक्षेप इनमें भी है। उदाहरणार्थ संदेश संबंधी यह दोहा, जो ढोला-मारू काव्य का है और उसकी प्राचीन प्रतियों में मिलता है–

सनेसो इ लख लहै ने कहि जाण कोय।
ज्यौं हू अखू नीण छलि, यों ने अख सोय ॥७२॥

(२) एक स्थल पर छन्द-समूह का विपर्यय इनमें भी है। छन्द १२१ से १२८ में कृष्ण का कुन्दनपुर में आने के पश्चात 'पथी' से रुक्मिणी के विषय में पूछना और उसका उत्तर वर्णित है। वस्तुतः यह अंश द्वारिका में कृष्ण और पथी-ब्राह्मण में हुई बात-चीत है। प्रथम और तीसरे समूह की प्रतियों में भी यह इसी सदर्भ में दिया गया है। छन्द सख्या क्रम में उपर्युक्त दोनों समूहों की प्रतियों में भूल है।

एक छन्द में नियमानुसार पंक्तियां न होकर कम-वेश इन सभी प्रतियों में है।

यत्किंचित त्रुटित पाठ के उदाहरण इन सभी में हैं।

४-**तृतीय समूह की प्रतियां** सुविधा के लिए इनमें प्राप्त "व्यावले" को "बृहत्" रूप कहा जा सकता है। इस समूह की सभी प्रतियों में प्रभूत परिमाण में प्रक्षेप हुआ है, जिसके कुछ मुख्य कारण ये हैं —

(१) पदम ने कृष्ण-रुक्मिणी विवाह प्रसंग से सम्बन्धित अनेक फुटकर पद भी लिखे थे। अनेक प्रतियों में उपलब्ध और सम्प्रदाय में बहु-प्रचलित ऐसे पदों से इसकी पुष्टि होती है। "व्यावले" की पृष्ठभूमि पर, विवाह-विषयक होने से उनमें एक क्षीण सा तारतम्य भी दिखाई देता था। प्रत्येक पद अपने आप में तो पूर्ण था ही, वह एतद विषयक कथा का अंश भी प्रतीत होता था। फिर, ये भक्तिरस पूरित और हृदय ग्राही थे ही। अतः "बृहत" व्यावले के निर्माण में प्रधान आधार-(क) मूल व्यावले का अंश तथा (ख) ये सब पद रहे। स्मरणीय है कि मूल व्यावले का समस्त पाठ इसमें ज्यों का त्यों ग्रहण नहीं किया गया। "बृहत" व्यावले में पदम कृत काव्य का अंश तो इतना ही है, शेष मिलावट अन्य कवियों द्वारा रचित प्रसगानुकूल पदों और छन्दों की है।

(२) इसके निर्माण की प्रक्रिया एक अन्य विष्णोई कवि रामलला के 'रुक्मिणी मंगल' (रचनाकाल-अनुमानत संवत् १८००) के पश्चात विक्रम उन्नीसवीं शताब्दी पूर्वार्द्ध में आरम्भ हुई लगती है। कारण यह है कि इसमें उक्त 'रुक्मिणी मंगल' के अनेक छन्दों के अतिरिक्त ये दो छन्द-समूह भी सम्मिलित किए गए हैं —

(क) एक सम नारद मुनि आय भीष्म के भवन गये।
नर नारी रणवास उठि सब जोगेश्वर के पायन नये॥-लगभग २० छन्द।

(ख) तेल छुवो म्हारी राजकवारी।-लगभग ८ छन्द।

(३) "बृहत" में पदम और रामलला की रचनाओं के अतिरिक्त, कम से कम दो और अज्ञात कवियों की रचनाएँ भी मिली हुई हैं। प्रवृत्ति, प्रसग, टेक, भाषा और शैली के आधार पर इसको सिद्ध किया जा सकता है।

(४) प्रक्षेपकर्ता ने मूल व्यावले की कथा और तथ्यों को बराबर ध्यान में रखा है। यही कारण है कि प्रक्षेप मूल के अनुरूप और उसमें प्राप्त संकेतों के आधार पर

ही हुआ है, जो सगत लगता है। यह दो स्थानों में हुआ है —(१) वर्णित प्रसगों में और (२) नवीन प्रसगोद्भावनाओं में। इनमें नवीन विषयक विभिन्न प्रसग विशेष ध्यान आकृष्ट करते हैं। मूल में गाली गीत में शिवजी का उल्लेख है किन्तु यहां उनके स्थान पर गणेश है।

(५) 'व्यांवले' का 'रुक्मिणी मगळ' नाम भी उपयुक्त समय से हो विशेष रूप से प्रसिद्ध हुआ लगता है।

(६) प्रतीत होता है कि "वृन्त्" का निर्माता भी या तो कोई विष्णोई कवि था अथवा इसमें उसका विशेष हाथ रहा था। इसकी अनेक प्रतियों में रुक्मिणी के कथन रूप में सबदवाणी के ५६ वें सबद को किंचित् परिवर्तन के साथ लिया गया है। इसी प्रकार "अनोपावनी भक्ति" का उल्लेख भी सबदवाणी (६१ ६) के आधार पर है। इससे भी पदम के विष्णोई कवि होने का सकेत मिलता है।

(७) इस समूह की विभिन्न प्रतियों में आपस में भी पाठ-भेद और घटा-बढ़ी है।

यह भी उल्लेखनीय है कि इन समूहों की विभिन्न प्रतियों की प्रतिलिपि-परम्परा से भी मूल व्यावले का रचनाकाल १६ वीं शताब्दी मध्य का अनुमित होता है। अन्यत्र भ्रम से इसका रचना-काल सवत् १६६९ बताया गया है,[1] जो वस्तुतः अ० प्रति का लिपिकाल है। नागरी प्रचारिणी सभा के विवरणों को ध्यान से न देखने के कारण यह भूल हुई है[2]।

इसकी छद-सख्या २६०-६१ के लगभग होनी चाहिए। प्रधान छद दोहा, चौपई हैं। सक्षेप में इसका कथासार इस प्रकार है[3] —

कवि गणपति और सरस्वती की वदना करता है। राजा भीष्मक और 'रुक्मैया रुक्मिणी के विवाह-सम्बन्धी मत्रणा करने बठे। राजा ने श्रीकृष्ण को सब प्रकार से उपयुक्त वर बताया। रुक्मैये ने कृष्ण के कृत्यों और कुल की आलोचना करते हुए इसका प्रतिवाद किया और बदले में शिशुपाल को ही योग्य वर ठहराया। शीघ्र ही कुमार ने विवाह-प्रस्ताव भी शिशुपाल को भेज दिया। वह सदल-बल बरात सजा कर कुदनपुर आ गया। राणी ने रुक्मिणी को उसका यह वर दिखाना चाहा, तो उसने कहा-वर तो श्रीकृष्ण को ही वरूगी। उसने एक ब्राह्मण के हाथ पत्र द्वारा कृष्ण को सब समाचार लिखे और पूर्व-प्रीति का स्मरण दिलाते हुए तीन दिनों के भीतर उद्धार की प्रार्थना की। ब्राह्मण पाँच-सात योजन चल कर सो गया पर प्रभु-कृपा से द्वारका में जगा। उसने कृष्ण को पत्र दिया और सब बातें बताई। उन्होंने तत्काल ही विशाल सेना एकत्र करवाई तथा बलभद्र और नेमिनाथ

१—डा० सियाराम तिवारी हिंदी के मध्यकालीन खण्ड काव्य, पृष्ठ १२४, सन १९६४।

२—द्रष्टव्य—(क) अ नुअल रिपोर्ट आन दि सर्च फार हिंदी म न्यूस्क्रिप्ट्स फार दि ईयर १९००, श्यामसुदरदास ना० प्र० स०, काशी विवरण सख्या-२४, ९२ तथा (ख) खोज रिपोर्ट काशी, सन १९२९-३१, सख्या २५६। इनमे ९२ सख्या वाली ही उल्लिखित अ० प्रति है। सभा के विवरण में भी इसका लिपिकाल सवत १६६६ बताया गया है, रचना-काल नहीं।

३—दूसरे समूह की प्रतियों के आधार पर। इसके उदाहरण प्रति सख्या २०१ से हैं।

ाहित ससैन्य कुन्दनपुर आए। ब्राह्मण ने यह बात रुक्मिणी को बताई और खूब दान पाया। राजा भी बहुत प्रसन्न हुए। अब रुक्मिणी ने अम्बिका पूजनार्थ जाने की तयारी की। यह जान कर जरासंध ने सब राजाओं को शीघ्र ही उसके साथ जाने को कहा। मंदिर में देवी पूजन करके रुक्मिणी बाहर निकली। तभी ससैन्य कृष्णजी आए, रुक्मिणी को अपने रथ पर बठा लिया और शंखनाद किया। इस पर दोनों ओर के योद्धाओं में भीषण युद्ध होने लगा। शिशुपाल हार कर भाग गया। तब जरासंध ने जुरा को बुलाया। उसने भी हार कर दल्यों को भागने की ही सलाह दी। रुक्मैया को कृष्ण ने रथ के पीछे बांध लिया पर रुक्मिणी की प्रार्थना पर वह मुक्त कर दिया गया। कृष्ण की विजय हुई। कुन्दनपुर में 'चवरी' रचाई गई। धूमधाम से लौकिक संस्कारों सहित दोनों का विवाह सम्पन्न हुआ। राजा ने खूब दहेज दिया। सखियों ने सुमधुर गालियाँ गाई। विदा होकर वे द्वारिका आए। वहां हर्षोल्लास छा गया और घर-घर में मंगलाचार होने लगा।

यह एक श्रेष्ठ आख्यान काव्य है, जिसमें संवाद, वर्णन और पात्र-कथन प्रधान हैं।

संवाद प्रसंगानुकूल, नाटकीय गुणों से युक्त और कथा को प्रवाह देने वाले हैं। इनमें ये उल्लेखनीय हैं —(क) राजा भीष्मक और रुक्मैये का,[1] (ख) राणी और रुक्मिणी का तथा (ग) श्रीकृष्ण और ब्राह्मण का।

वर्णन बहुत सुन्दर, चुने हुए शब्दों में और विषय का साकार रूप उपस्थित करने वाले हैं। कवि कथित होने से आख्यान की नाटकीयता में तो इनसे किंचित अवरोध अवश्य उत्पन्न होता है, किन्तु काव्य-सौष्ठव में वृद्धि ही होती है। मुख्य वर्णन ये हैं —(क) शिशुपाल की समय बरात का, (ख) श्रीकृष्ण की ससैन्य बरात का, (ग) रुक्मिणी के रूप और शृंगार का, (घ) युद्ध का, (ङ) वैवाहिक रीति-रिवाजों का और (च) द्वारका में श्रीकृष्ण

1—रुपमइयो यो बोल राजा, तमे धणेरो जाणौ।
हमन मत बीसारो आव, परियो तमे पिछाणौ ॥ १३ ॥
वळतो राव भण रुपमइया, वर वनमाळी जाणौ।
छपन कोडि जादम नो राजा, वंस विसुध वषाणौ ॥ १४ ॥
अभुवणे खवणे सभळना, सवडि कोई न दीठा।
रुपमइयो न राजा भीवष, मतर करेवा बठा ॥ १५ ॥
राय सुणो सुत बीनव, जाहरा एवड मान।
गोकळि गउ चरावतो, कायो सराह्यो कान्ह ॥ १६ ॥
वनरावन मा गउ चरावी, भटवाळा र साथे।
कामण्य मोहण वस वजायो, जीम्यो ताहर हाथे ॥ १७ ॥
परनारी न पाल भून, माग दान मही नू।
तमे वहो प्रभु वणे राना, तीज पडि मही नू ॥ १८ ॥
पनी वस तणी मति ओछी, पर पोडार जाणौ।
जिणरे कुळे कुसाप्या आवं, तिणरो कायो वषाणौ ॥ १९ ॥
दरसण कान्हो बोल कूडो, मुपि मधरो अभेमानो।
गोरळि गऊ चराव राजा, कायो सराह्यो कान्हो ॥ २० ॥

के स्थापन का। उसकी विविध बातों ऐसा जा सकती है[1]।

पाठ-रचना बड़ा और पारिभाषिक स्वरूप और छन्द-बद्ध है। इनके प्रमुख है —(क) रुक्मिणी की कृष्ण के प्रति उद्गार का प्रयास, (ख) उसके की कृष्ण को सन्देश, (ग) उसके सुहाग गान की रुक्मिणी का प्रापना और (घ) कुन्दनपुर में विवाह समय गालियाँ का गायन-गान[2]।

१२-(क) शिशुपाल का वरान—
हम सग गेह हाथ चोरी, गरदा पार न आणो।
मोट बधी न माप न आणो, राजा पड़दा छिपाणो ॥ ५० ॥
पखाळण पोहल चढि चाली मन मन मोहन माणो।
पूगल पहुँचा पहुँ चोना, उभय गिरा न थाणो ॥ ५१ ॥
जाणा ढोल सराया किलकारड़ किल सुगा।
वाजा वाज घर घर माय, पुरि रज छाया सूरो ॥ ५२ ॥
एक एक गू दापा चाले, धवका धावण भाले।
नर नरव गू दपणा चाले गाये गान उतारे ॥ ५३ ॥
(ख) रुक्मिणी का रूप और शृंगार—
पाय री अगळी पोतरा प्रटया रयता गुन्दी नव गारा।
पहरि पटोलनी हीरां नी चोलनी, मुख रा सोमाण हिरण हरया ॥
चोन्दि चालती अग निहाळती, चाली सी सुन्दरी माव जोय।
मांय चमकन्ता घूठि पूरा चरणा, आज गयी मोरे विमर मळा ॥ १३० ॥
रतण जो रापडी वीणि वासेग जडी वांहरी सवरा सहज सोळी।
स्वाति को विन्दो नासिका नमळी, आज आलिंगार विसन वेरी ॥ १३१ ॥
वेलनी अमनी अग नी ओपमां, मेन्द्री रूप लियो गोरी।
सत्नी ओपमा इधक अनोपमां दृढ अरापति चाल चोरी ॥ १३२ ॥
श्रीफळ सारिषा कठन पयोहरा उरि ग्रहमहता तरण सारा।
गग नो चदलो जे मुख प्रटियो चपला चसमली अत भारा ॥ १३३ ॥
नाण जो चाहुला वीण जो वाहुला, गोप्य गुजाधरा देव दीठा।
रुपमणी ग्रग्य तो रली पूरव पत्म पणवत नाथ तूठा ॥ १३४ ॥
हार डोर सुघट सोहै, छया माग सतूर।
रापडी रतन अनेक भळक जाण्य उगो सूर ॥ १३७ ॥
वीर नासिका इधक सोहै मुगट पल सउति।
अहर विद्रम ओपमा टसण हीरा जोति ॥ १३८ ॥
व कान सोवन भाळ भळक अवसि रभा होय।
मारग वाणी सरस आणी नाहि तोलै कोय ॥ १३९ ॥
१३-राग धनासी
नवरगलाल विहारी, गाव कुन्दनपुर की नारी।
दत मिसो मिस गारी, माग लूग सुपारी ॥ २२५ ॥ टेव ॥
आयो काहइया आयो, महादव वाहे कू ल्यायो।
आक धतूरा चाव, वाळक सभ डराव ॥ २२६ ॥
जीम काहइया पाजा, तू तीय भुवण को राजा।
जीम काहइया चावळ, थारा साथी सभ वेळावळ ॥ २२७ ॥
जीम काहइया लपसी थारी जान महादेव तपसी।
थारी वाहण सोहदेरा जाणी, अरेजन क रुपि लोभाणी॥ २२८ ॥ (शेषांश आगे देखें)

लोकरंजन, अध्यात्म-निष्ठा और रुचि-परिष्कार जितना इस काव्य ने किया है उतना राजस्थानी की अन्य किसी रचना ने नही। कवि ने हृदय-रस से सिंचित कर लोकमानस का दिशा-विशेष मे सही चित्रण किया है और यही कारण है कि यह अब तक लोक का कण्ठहार बना हुआ है। समस्त काव्य भक्ति रस पूरित है जिसमे वीर रस का भी भव्य निदर्शन मिलता है। कृष्ण के चरित्र मे एक विशेष मर्यादा लक्षित होती है। यहा वे भक्त उद्धारक के रूप में ही चित्रित हुए हैं। इस सम्बन्ध मे एतद् विषयक पौराणिक कथाओ से इसकी भिन्नता द्रष्टव्य है। ब्राह्मण से समाचार जान कर वे अकेले ही कुन्दनपुर नही आते, ससैन्य आते हैं। हरण करते समय भी वे सेना सहित जाते हैं। रुक्मिणी को रथ मे बैठाते ही वे भागने का उपक्रम न कर शंखनाद करते हैं। इसके कथाप्रवाह मे तत्कालीन लोक-मानस अनायास ही मुखरित हो गया है। लोक प्रचलित अनेक रीति रिवाजों का इसमे यथास्थान समावेश है। कुल, कृत्य और जाति को लेकर ऊँच-नीच की भावना समाज में व्यापक रूप से थी। रुक्मये और रुक्मिणी दोनो के कथनों से इसकी पुष्टि होती है।

फुटकर पद दो प्रकार के हैं -एक वे जिनमे कृष्ण-रुक्मिणी विवाह विषयक विभिन्न प्रसगो का चित्रण, उल्लेख है तथा दूसरे वे जो हरि भक्ति, चेतावनी और आत्म-निवेदन परक हैं। उपलब्ध पदो मे सर्वाधिक सख्या पहले प्रकार की ही है। ब्यावले के अधुना-प्रचलित "वृत्त" रूप के मूल मे इनका विशेष आकर्षण रहा है। ये एक दूसरे से स्वतन्त्र होते हुए भी, कथा-तारतम्य का आभास देते हैं। उल्लेखनीय है कि इसी पद्धति पर आगे चल कर सूरदास ने कृष्ण-विषयक विशाल पद-साहित्य का निर्माण किया था।

कवि का प्रत्येक पद कांतियुक्त मोहक मोती है। समष्टि रूप मे ये राजस्थानी गेय पदमाला के जाज्वल्यमान मनके हैं। उदाहरणार्थ तीन पद नीचे दिए जाते हैं[1]। अनेक

थारी भूवा भरम गुमायो, कुता करन कवारी जायो।
जन पदम् जस गावै, कुद्धि गाळी देत दत पावै ॥ २२६ ॥

१-(क) राग सोरठ
माई म्हे तो सुपन मै परणी गोपाल ॥ टेक ॥
थे जाणो बाई सुपनो साचो, सुपनो आळजजाळ ॥ १ ॥
हरि हरि पाग केसरिया जामा, हाथा मदी लाल ॥ २ ॥
छपन कोड जादू चड आए सनमुख आए ब्रजलाल ॥ ३ ॥
पदम भणे प्रणव पाय लागू , चरण कवळ वल जात ॥ ४ ॥-प्रति ६५ से।

(ख) राग धनाश्री
दोडी दोडी गवाल्यो लिया जाय । टेक ।
राव जुरासिंघ और दत वक्तर सामो झेलो आय ॥ १ ॥
कवर रुक्मइयो यू उठ बोल्यो कुळ को धरम घटाय ॥ २ ॥
पदम भणे प्रणव पाय लागू , भीसम सीस निवाय ॥ ३ ॥-प्रति सख्या १०६ से।

(ग) सामेल सिसपाल के चढयो रुक्मकवार।
गुडला सिर सवारिया, पाच लाख असवार।
सोड सोडिया और गीदवा दीना जान अपार।
हरख्या लोग सब नगर का विलखी राजकवार।
पदम भणे प्रणव पाय लागू इण विध जान उतार ॥-प्रति सख्या ३०६ से।

दृष्टियों से राजस्थानी साहित्य को इनकी अविस्मरणीय देन है। 'झमाल' राजस्थानी के प्रारम्भिक आख्यान काव्यों में से एक है और इस परम्परा में प्रकाश-स्तम्भ के समान है। इसके अतिरिक्त प्रबन्ध और पौराणिक कृष्ण विषयक काव्य परम्परा में भी इसका महत्वपूर्ण स्थान है। राजस्थानी के भावी ऐसे काव्यों का यह प्रेरणास्रोत रहा है। इस प्रकार, इनके फुटकर पद शैली एवं पद परम्परा की प्रारम्भिक रचनाओं में से हैं। मीरां काव्य की पृष्ठभूमि का निर्माण इन्हीं से प्रारम्भ होता है।

सोलहवीं शताब्दी पूर्वार्द्ध की गद्यभाषा के अध्ययन के लिए 'झावला' अत्यन्त उत्तम देन है। तत्कालीन समाज और संस्कृति का शुद्ध और मनोरम परिचय इनकी रचनाओं से मिलता है।

६ कोल्हजी चारण (विक्रम संवत १५००-१५९०)

कील्हजी सामोर शाखा के चारण सोनोजी के पुत्र थे। ये सुजानगढ़ (बीकानेर) के पास हरासर नामक गांव में उत्पन्न हुए और बाद में कसूंबी में रहने लगे थे। बनारस में विद्याध्ययन करके ये प्रकाण्ड शास्त्रज्ञ विद्वान् बने। एक कवित्त में कवि ने विद्या की महत्ता बताई है —

विद्या तो घर नागरी, मोख ससारां तारी।
विद्या मीत्र बदेस, खड प्रशंड पेयारी।
विद्या आदर दांन, मांन पण विद्या पाव।
विद्या रूप करूप, जहां जाय तहां समाव।
विद्या नागर बेल सो, चतरा नरा रिझावणी।
मीठो मिसरी खाड सो, कील्ह कहे मन भावणी ॥-प्रति संख्या २०१।

वहां से वापस आने के बाद, जाम्भोजी से प्रभावित होकर इन्होंने उनका शिष्यत्व स्वीकार कर लिया। प्रसिद्ध है कि ये और तेजोजी समवयस्क थे। दोनों ही सामोर शाखा के चारण और कसूंबी के रहने वाले थे। ये तो विद्याध्ययन-हेतु बनारस गए किन्तु तेजोजी ने अध्ययन घर पर ही किया। तेजोजी भी जाम्भोजी के शिष्य हुए और ये भी। कवि दोनों ही थे। इस दृष्टि से इनका बनारस जाकर विद्याध्ययन करना कोई काम नहीं आया। इस कारण इन पर थळियो खाल्हो (=कील्हो) कहावत प्रचलित हो गई जो पढ़े-लिखे, किन्तु व्यवहार और तत्त्व-ज्ञान शून्य व्यक्ति के लिए आज भी बहु-प्रचलित है। सुप्रसिद्ध कवि ऊदोजी नैण ने अपने एक कवित्त में इनका उल्लेख किया है —

झभ गरू दातार, तीर्थ तेतीसां तारण।
जाह जम्यो विसन को नाव, सारया तांह मोटा कारण।
किरिया कमावो ताखरी, न्हाण ते अठसठ न्हायो।
ते लाधो धुरे होज, झभ जे इक मन ध्यायो।

अठसठि तीरथ काय भुवो, कील्ह गयो बाणारसी ।
रतन कया अर पार गिराव, झाभराय तूठा लाभसी ॥ ४६ ॥
–प्रति सख्या ४२ तथा २०१ ।

ऊदोजी के "छपइयो" की रचना सवत १५८५ तक हो चुकी थी। इनके अध्ययन से पता चलता है कि इनम उल्लिखित व्यक्ति इस काल से पूव दिवगत हो चुके थे। इस कारण कील्हजी का स्वगवास काल सवत १५८५ से पूव ही होना चाहिए। कवित्त का भूतकालिक प्रयाग भी इसी ओर सकेत करता है। अनुमानत इनका जीवनकाल सवत् १५०० से १५६० तक माना जा सकता है।

सम्प्रदाय मे आरम्भ से ही सवमान्य, प्रामाणिक साखियो म इनका 'बारामासो" भी एक है जिससे इनका विष्णोई मतानुयायी होना सिद्ध है। अनक कवित्तो मे विष्णु-महिमा, विष्णु-नाम-स्मरण और स्वय के लिए "विसन भगत' आदि उल्लेखो से भी कवि का विष्णोई होना ध्वनित होता है। इसके अतिरिक्त एक कवित्त जो आगे उद्धृत किया गया है, की "सुगणा सुरगे जायस्य" पक्ति तो प्रकारान्तर से सबदवाणी (७३ ४ तथा पाठान्तर) की ही है।

रचनाएँ —कवि की निम्नलिखित रचनाएँ प्राप्त हुई हैं —

(१) **बारामासो**-४२ दोहे[1] । (२) **फुटकर कवित्त**-३३[2] ।

"**बारामासो** 'राग सिंधु मे गेय है जिसम, "मेर उमाहो चन्नभुज का ह रो, परवसियँ रा धघळ रै स। कु वर क ह्इयो पुरि बस" की टेक लगती है। लिपिकार ने "टेक" को एक छन्द मान कर, कुल छ द सख्या ४१ दी है, जो २० वीं सख्या के दो बार लिखे जाने के कारण ४२ होनी चाहिए। इसको दो भागो मे बाटा जा सकता है। आदि के १२ छदो म कृष्णावतार, उसका हेतु, गोपी-प्रेम, वियोग, स्मरण आदि का मार्मिक वणन है[3] । दूसरे म, सावन से बारहमासा शुरू होता है। प्रत्येक माह में होने वाले विविध काय-कलापो को लक्ष्य कर प्राकृतिक परिवतन के परिपार्श्व मे, गोपिया अपनी विरह-वेदना व्यक्त करती हैं जिससे उनकी शारीरिक और मानसिक व्यथा मानो फूटी पडती है। एक दोहा यह है -

खडी उडीकू पथ सीरि, नणे मु के नीर।
ग्रह वीयाप हे सखी, छीज सकळ सरीर ॥ २५ ॥

इसमे सावन पर चार, कातिक और जेठ पर तीन-तीन तथा शेष महीनो पर दो-दो छन्द हैं। अन्त में आषाढ म कृष्ण का वापस आना दिखा कर गोपियो के हर्षोल्लास का

१-प्रति सख्या २०१, फोलियो ४४-८१ पर "ग्र थ साखी" के अ तगत।
२-वही-(क) "कील्हजी के कवित्त" के अन्तगत, २६ कवित्त क्रमसख्या-८४-१०९ तथा (ख) वहीं, फोलियो ५५१ पर १, ५४१-४३ पर ४ तथा १८८ पर २ कवित्त।
३-ऊ च म ा र घण चरै, सरवर बोल्या हम।
गोपी कर वधावणा, जाणे कान्ह वजायो वस ॥ ८ ॥
दूण गोवळ र डाडिल, लप आव लप जाय।
एक न आयो का ह्जी, रह्यो निमावर छाय ॥ ११ ॥

वर्णन किया गया है[1]। समस्त रचना में मरुदेशीय प्रकृति और राजस्थानी लोक भावनाओं के सुन्दर चित्रण मिलते हैं। नमूने पर दो दूहे देखे जा सकते हैं —

सावण मास सुहांवणो, जे घरि पीवो होय।
पोष मास सुहांवणो, जे घरि वल्लह होय॥ १२॥
धण गरज यौवनि लिय, धावण मनै उदास।
तर टलिया तिळता रहै, मनां न पूरी आस॥ १५॥

कवित्त — कवित्तों में विष्णु-नाम-स्मरण विद्या, दान, गुण-दोष, गुणी, गँवार, कपट, कड़वी-मीठी वस्तुएँ, स्त्री के गुण, पुण्य-पाप, अवसर, भाग्य-प्रबलता, ईश्वर की करनी, सांसारिक चतुराई की व्यर्थता, स्वाभिमान, कपटी सज्जन आदि आदि विषयों का वर्णन है। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित बातें उल्लेखनीय हैं —

(१) कवि परस्पर विरोधी गुण, धर्म, भाव या वस्तुओं का पृथक्-पृथक् वर्णन करके पाठक को उदात्त गुणों की ओर आकृष्ट करता है। पाप-पुण्य, दान-कृपणता, कड़वी मीठी वस्तुओं आदि पर लिखे गए कवित्त ऐसे ही हैं। इनमें उपमान न देकर कवि दोनों के गुण-दोषों को सामने रख दिया जाता है। उदाहरणार्थ गुणी और गँवार पर ये कवित्त देखे जा सकते हैं —

सुगणां तो सदा सुरंग रंग सुगणा मां दीस।
सुगणां था इ कर्ध किया, सुगण मनि इम्रत वस।
सुगण माय बाप का भगत, सुगण परमारथ भाव।
सुगण सदा सुविचार सुगण मनि बुरो न आव।
सुगण न पूज ल्ला सौ, सुगण मे धीरज रहै।
सुगणा सुरगे जायस्य, यो नारायणजी कील्हो कहै॥ १॥
अडक सदा आटो रहै, अडक औगण नहि छाड।
अडक मुहि कुवचन कहै, अडक आपो ही भोडं।
अडक दहै पाडोसि, राडि अणहुती माड।
अडक सदा उझडि वहे, अडक चाल नहि डाइ।
अडकाई आठू पहरि, निस बासरि उळझ्यो रहै।
अडक न सिरजो देवजी, नारायणजी कील्हो कहै॥ २॥

(२) कतिपय कवित्तों में सीधे व्यवहार-ज्ञान और नीति कथन किया गया है, जैसे —

किसो तया सणगार नारि ज होय निलजी।
किसो तुरी को तेज, सहे, चामठी बाजो।

१-आसाढे आसा घणी, वगी झिगारं मोर।
कील्ह कहै हरि आवियो, सुणी जळहर की घोर॥ ३९॥
आगणि वाहू एळची, वरड नागर वेळ।
कान्जी घरे पधारिया, म्हारा हिवडा कूं पळ मेल्ह॥ ४२॥

किसो पुरिय को बोल, बोल बोलियो न पाळ ।
किसो नदी को नीर, नीर सूकै उन्हाळै ।
निलज नारि माठी बुरी, खरळ ज बाह सूकणों ।
तन, मन, रा ठोळ, पुरिय ज वाचा चूकणों ॥

(३) कुछ कवित्तों में कवि अत्यन्त यथार्थ सामाजिक-चित्रण के माध्यम से गुण-विशेष का कथन करता है। इसमें मूल उद्देश्य तो गुण-कथन ही रहता है, किन्तु उसके प्रकटीकरण में अनायास ही यथार्थ-चित्रण प्रस्तुत हो जाता है। उदाहरणार्थ, यह कवित्त देखा जा सकता है —

विण दीन्हा फळ एह, भील ज्यों भुव भिखियारी ।
काध पाछ छाज, हाथ सिरि घणख बुहारी ।
तन छीना वसत रघो धिग, बोझ सिरि सहैं कपाळी ।
काया सदा कुचीळ, नीर नहीं देख पताळी ।
पगे न जुड पाणही व रीण वासरि सायरि पडि रहैं ।
विसन भगत कील्हो कहै, विण दिया फळ ए लहैं ॥

(४) कुछ कवित्तों में कवि किसी वस्तु, पात्र या गुण का वर्णन करता है जो दो प्रकार का है —एक तो वह जिसमें गुणों का ही वर्णन रहता है और दूसरे जिसमें गुण-अवगुण दोनों का। उदाहरणार्थ यह कवित्त देखिए —

सवारी दातण कर, सीस कागसी सुवार ।
अहरी चव मजीठ, नेत ज्या काजळ सार ।
लांबी जिसी खिजूरि, राय आगण ज सोहै ।
बोल मधुरी वाणि, बोलती सभा विरमोहै ।
मील कोळ सजम रहै, सभा देखि वास रहै ।
देह महेली मन सवीं, नारायण कील्हो कहै ॥

मूलतः कवि विष्णु का परम भक्त है। विष्णु का नाम ही उसके लिए सबसे बड़ा सहारा है। वही उसका मूलधन है[१]। उसका दृढ़ विश्वास है कि पापों का शत्रु केवल मात्र विष्णु-नाम ही है। इस कवित्त में अनेक उपमाओं के द्वारा कवि ने इस बात को स्पष्ट किया है —

ज्यों चंद रिप राहु, रीण रिप सूर सदाई ।
कुंजर वन को रिप, नीर रिप अगनि उपाई ।

१-मेर माथ विसन को नाव व्याज वोहरू वधारू ।
वह दोनो दुणी सवाई चौगणो करू वौपारू ।
मोमी मिपरण सात्य, नाव ले करू ग्रहारू ।
वीडा पान तबोळ, नेत उठि ल्यौह सवारू ।
ग्यानी त गुण सिसटि, घरि आयो गाहक सहू ।
विसन भगत कील्हो कहै, सामीजी पाप पुन लेखो करू ॥

पिसणां को रिप गुरड़, हेम रिप सुहागो होई।
पांणी को रिप पून, तेणि रिप मगळ जोई।
करम को रिप द्रव-गुन, अरापति कट्टे भई।
पाप को रिप विसन नांव, भण कोल्ह तिवरी सही।।

इस कवित्त में दोष-निरीक्षण करता हुआ कवि अपने उद्धार के विषय में अपना अनुताप व्यक्त करता है। ऐसी आत्मपरक स्वीकारोक्ति तथा आत्म-दर्शन अन्यत्र कम कवितों में ही प्राप्य है —

अजू कया मां कोप, अजू रीत मनि भाय।
अजू पांच वसि नहीं, अजू मन दोह दिस धाय।
अजू मूरख तिस घणी, अजू परतामत ईणां।
अजू याद अहंकार, अजू माया मन लीणां।
एक जीव करो अता, कुसंग साथ घट सू कल।
कळी काळ कोल्हो कहै, किसन किसो परि म्हां मिल ?

इहलोक और परलोक—दोनों सुधारने के लिए कवि ने विष्णु-नाम-स्मरण और 'धर्म करना' ही सार माना है, उसकी समस्त भावधारा का निचोड़ यही है —

रतन विसन को नांव, दुलभ समारि उदाधो।
विसन नांव वाखाणि, हेत करि काया साधो।
पुन होणां न लहत, लहै ते ताळा खोया।
ते पापी जाचत, सदा पाप मन मोह्या।
रतन विसन को नाव है, पायो ता साथ क्रम।
किसन भगत कोल्हो कहै सेई धन्य से कर ध्रम।।

कवि की कतिपय उपमाओं में तो युग-युगीन राजस्थानी लोक-जीवन की झाँकी दिखाई देती है —

नारद जोतिग वाचिया सांस पडयौ सरीर।
आसू नाख मोर ज्यों, नीणे झुरव नीर।। ७ ।।—बारहमासा।

कोल्हजी की प्राप्त रचनाओं में १६ वीं शताब्दी पूर्वार्द्ध के राजस्थानी समाज, उसकी मान्यता, विश्वास और बोलचाल की भाषा के दर्शन होते हैं।

७ सुरजनजी (अनुमानतः विक्रम संवत १५००-१५७०)

सुरजनजी नाम के तीन व्यक्ति हुए हैं -(१) पहले सुरजनजी भावुक भक्त, हुजूरी कवि और सम्भवतः ब्राह्मण थे। साम्प्रदायिक प्रसिद्धि के अनुसार इनका समय उपयुक्त अनुमित है। ये 'गीतों' के विशेष कवि के रूप में प्रसिद्ध हैं किन्तु एक साखी के अतिरिक्त इनकी अन्य रचनाएँ प्राप्त नहीं हैं।

(२) दूसरे सूजोजी (अपरनाम सुरजनजी) भी हुजूरी विरक्त साधु थे। इनका समय भी लगभग वही है जो पहले सुरजनजी का है। ये परम तपस्वी माने जाते हैं। ऐसे ही दूसरे तपस्वी हैं– ऊदोजी, जिनको साधारणत ऊदोजी तापस कहा जाता है।

(३) तीसरे सुरजनजी भीयासर गाव के पूनिया, वील्होजी के शिष्य और केसोजी गोदारा के गुरु भाई थे। इनका स्वर्गवास सवत १७४८ म हुआ था। इनके एक सुप्रसिद्ध डिंगळ गीत म उपयुक्त दोनो सुरजनो का उल्लेख मिलता है (–द्रष्टव्य–सुरजनजी पूनिया)।

पहले सुरजनजी की "राग सुवह" म गेय "वणां की" १३ पक्तियो की एक साखी मिलती है (–प्रति सख्या ६८ (ग) तथा २०१)। यह "जम्म" की चौथी साखी है। इसमें गुरु भाइयो को "आठ धरम" और "गुर फुरमाणी" पालन करने, "जम्मे" म ग्रान, वहा सत्सग करने, विष्णु-नाम जपने का अनुरोध तथा जाम्भोजी का महिमा गान है। इसके मूल मे आवागमन से छुटकारा दिलान हेतु सरल उपाय बताने का प्रयास कवि ने किया है। साम्प्रदायिक मान्यता है कि जाम्भोजी "जोत" के रूप म सदा-सवदा सवत्र विद्यमान हैं। इस साखी मे इसका सकेत भी है। परम्परा और प्राचीनता की दृष्टि से भी इस साखी का महत्व है। साखी यह है –

जम आवो गुर भाइयो, सुपही करो ज काय ॥१॥
ग्यान सरवणे सभळो, सबद सुणो हित लाय ॥२॥
गुर फुरमाई सा करो, कुपही करो न काय ॥३॥
दान दया जरणा जुगति, सतव्रत सील सभाय ॥४॥
आठ धरम नवधा भगति, साध सेव सत भाय ॥५॥
आचारे व्रभा सहो, जोग ज ध्यान दिढाय ॥६॥
आन तजो विसन भजो, पाप रसातळि जाय ॥७॥
जिण ओ जीव सिरिजियो सो सतगुर सुर राय ॥८॥
जुगा जुगा जीव जको, अवगति अकल ज थाय ॥९॥
मात पिता जाक नहीं पख परवार न थाय ॥१०॥
जोति सरूपी जग मई, सरवे रह्यो समाय ॥११॥
अटल इडग एक जोति है, ना काहीं आव न जाय ॥१२॥
जन सुरिजन वा परसिया, आवागुवण न थाय ॥१३॥४॥

–प्रति सख्या २०१ से।

८ सिवदास (अनुमानत विक्रम सवत १५०० १५७०)

इनकी गणना आरम्भिक हजूरी कवियो म है।

राग "सुहब" म गेय २० पक्तियो की इनकी एक "वणा की' साखी मिलती है[१]।

१–प्रति सख्या (क) ६८ (ग), (ख) ७६ (ढ), (ग) ६४, (घ) १४१, (ङ) १४२ (च) १६१, (छ) २०१, (ज) २०८ (ढ), (झ) २१५। उदाहरण (छ) प्रति से है।

इसम मानव जीवन को उसकी समग्रता म विहंगम दृष्टि से देखा गया है। गर्भवास से लेकर मृत्युपर्यन्त मनुष्य की विभिन्न अवस्थाओं, सांसारिक कार्यों, माया, मोह, भोग म आसक्ति, नाते रिश्तों की असारता तथा काल की प्रबलता का उल्लेख किया गया है। उदाहरणार्थ ये पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं –

साइयां सुण दातार, पांणी सू पिंड करणा ॥१॥
गरभ रह्यो दस मास, ऊंमर दिन ढलणां ॥२॥
सु वण सुख सदि जीव, साईं तो सरणां ॥३॥
साइयां बाहरि काढि, दस यह तो करणां ॥४॥
ज्यों पूगा दस मास, बाळक अवतरणां ॥५॥
लागो बळू को वाव, प दिन बोसरणां ॥६॥
अरय गरय धन माल, बीज घर सरणां ॥७॥
रूडो राज क्यारि, इयकां आभरणां ॥८॥
सोवण सेस सुल घात, पाटू पायरणां ॥९॥
ज्यों पूगी जम डांग, गास्ति परहरणां ॥११॥
मात पिता सुत नारि, मधय च्यारि जणां ॥१५॥
किमो पिछोकड वास, ले गया बोसवणां ॥१६॥
आपे भरणां होय, औरां कू क्या झुरणां ॥१७॥
कोयल कर क्लिाव, बठी अब वणां ॥१८॥
बोलै मधरा वण दुखियां न दुरा घणां ॥१९॥
सति बोल सिवदास, हाजरि हक मरणां ॥२०॥

कवि का मूल मन्तव्य है– आत्मदर्शन कराना, जिसका प्रभाव शन शन पडता हुआ अन्त मे घनीभूत होता है। जीवन के प्रमुख पहलुओं का यह वर्णन, सारगर्भित और भावपूर्ण है। साखी की महत्ता इसी से सिद्ध है कि विष्णोई साधुओं के अन्त्येष्टि संस्कार के समय यह गाई जाती है।

६ एकजी (अनुमानत विक्रम संवत १५०० १५७०)

ये आरम्भिक हजूरी कवियो म से हैं। हीरानद के 'हिंडोलणो' म अन्य विष्णोई भक्तों के साथ इनका नामोल्लेख है।

"छदा की" साखियो के अन्तर्गत राग 'गवडी' म गेय इनकी ४ छन्दों की यह साखी मिलती है (प्रति संख्या २०१ म) —

कंता मैं दासि तुम्हारी थी, सीख दियो स सु णोज।
कर जोड कामणि कहै, पर नारी नेह न कीज जी।

इसम एक स्त्री की अपने पति से पर नारी से प्रीति न करने की 'सीख' है। अनेक प्रकार से वह उसको समझाती है। कौरवो और कीचक का उदाहरण देकर वह इसके

दुष्परिणामो की ओर ध्यान दिलाती हुई उसको इससे विरत करना चाहती है। उदाहरणार्थ अन्तिम दो छन्द द्रष्टव्य हैं –

प्राहुणडां घर नां र वस, न को दीठो न सांभळ्यो।
देखो म्हारा कता करव खय गया, कीचक भीवड निरदल्यो।
निरदल्यो कीचक भीव पांडव, प्रीति पर नारी तणी।
विसन वीगुता घणा दीठा, जोयल था पति घणी।
एक सुख थोडा दुख बोहळा, देखि दुरिजण म य हस।
परनारि परहरि आव प्यारे, प्राहुणां घर नां वस ॥ ३॥
दइयां दोस न दीजिय करिसी जसडो पाव।
सतान चडै सिर उपरं, सुबधि न कांई आव।
सुबधि न आव कुबधि कुमाव, वत सुर एकारँवो।
पर नारि केरो सग इसडो नित छनीछर बारमू।
एक भण कविता सुणो लोई, कुसग सग न कीजिय।
पर नारि परहरि आव प्यारे, देव दोस न दीजिय ॥ ४॥

साखी म प्रयुक्त "हुव ओजस अति घणो," "जीव पर हथि वेचणो", "प्राहुणा घर ना वस", "देव दोस न दीजिय" आदि उक्तियाँ लोक प्रचलित हैं। पूरी साखी में एक ही विषय का अनेक प्रकार से उल्लेख होने से इसका समग्रता म प्रभाव बहुत अच्छा पडता है। हुजूरी कवियो मे इस विषय पर लिखी गई यही एकमात्र साखी है।

१० अमियादीन (अनुमानत विक्रम सवत १५००-१५७०)

प्रसिद्ध है कि ये नागौर के गहस्थ मुसलमान और जाम्भोजी की सिद्धियो से प्रभावित होकर उनके शिष्य बने थे।

इनकी १४ पक्तियों की एक "कगा की" साखी मिलती है,[1] जिसमे धम-प्रेम, ज्ञान, गुण-ग्रहण, सुकृत करन, अवगुण, लोकाडम्बर और दुष्कम त्यागने, ससार की अनित्यता और मृ यु की प्रबलता का उल्लेख करत हुए स्वय को पहचानने की चेतावनी दी गई है।

लोक-व्यवहार और दिखावे सम्बन्धी उक्तियाँ तो बहुत ही सुदर और यथाथ हैं। इनसे कवि की सूक्ष्म निरीक्षण-दृष्टि का पता चलता है। रचना मे ठेठ बोलचाल के शब्दो का प्रयोग है। साखी नीचे दी जाती है —

दीन मीठो मेवो, जुग करि देखो खारो ॥ १ ॥
ग्यान इम्रत मेवो, मोमिणां न दीन पियारो ॥ २ ॥
झूठ चोरी झगडो, कहर करोध निवारो ॥ ३ ॥
लो णि दांणी खोणा, वादो अर अहकारो ॥ ४ ॥

1-प्रति सख्या (क) १४१, (ख) १५२, (ग) २०१, (घ) २६३।

ताको मदन मर्हियो, आयो सुकर हवारो ॥ ५ ॥
कूना रहंण न सहिगो यो हो गयो ततारो ॥ ६ ॥
अट् धागर धाड़ो, काय हरियावा मारो ? ॥ ७ ॥
हरियाव मरणो मोमिणां म कां पहेरारो ॥ ८ ॥
कूना कय माणू, हरीरय काय निवारो ॥ ९ ॥
रण पाट उतरि गयो दुनियां रव्यो पगारो ॥ १० ॥
पोह मरणो मेल्हाो, धोय करि मयो अ पियारो ॥११॥
ते तो धात रहिया, जावो तर टो लारो । १२ ॥
ते तो पारि पहुता जाहु को म य जमारो ॥ १३ ॥
दोन अ नियां बोल, उरि म राणी देई पारो ॥ १४ ॥
–प्रति सख्या २०१ से ।

११. जोधो रायक (अनुमानत विक्रम सवत १५००–१५७०)

प्रसिद्ध है कि अवस्था म ये जाम्भोजी से बड़े और उनके जैसलमेर पधारने के पूव ही स्वगवासी हो चुके थे । साखी की "हम वागो वसियो माल्यक के दरबारि' (पक्ति ३) तथा अ तिम पक्ति से भी यह स्पष्ट है । अनुमानत इनका समय लगभग सवत् १५०० से १५७० है । ऊँट पालने वाले का रायक, रायका या रबारी कहते हैं । यह जाति अपेक्षाकृत निम्न-श्रेणी की मानी जाती रही है । इसम मारू और चळकिया दो भेद हैं । मारू का व्यवसाय केवल ऊट पालना है और चळकियो का ऊटो के साथ साथ भेड–बकरियाँ भी । इनकी स्त्रिया पीतल के विशेष आभूषण धारण करती हैं, इस कारण ये पीतळिया नाम से भी प्रसिद्ध हैं[1] । जाम्भोजी ने अनेक आचार-विचार और धम-कमहीन ऊच–नीच जातियों के लोगो को विष्णोई सम्प्रदाय म प्रविष्ट कर पवित्र किया था । रायके भी उन्हीं म से थे । जोधोजी इसी जाति के रत्न थ । सुप्रसिद्ध कवि केसोजी गोदारा ने राग धनाश्री म गेय अपनी एक "छदा की" साखी (आप लियो अवतार साम्य समरथळि आवियो) म जाम्भोजी द्वारा अनेक लोगो के राह पर लाए जाने का वणन करते हुए रायकों का भी उल्लख किया है । सबदवाणी के प्रसगो म रायको का और कवि ऊदो कृत कथा अहमनी म रबारियो तथा उनकी सा'ढो (ऊँटनियो) का वणन है ।

"राग हसो' म गेय इनकी १७ पक्तियो की "करणा की' साखी मिलती है[2] । इसमे 'जुमल' म जाने, साधु–सगति करने, मानव-देह की नश्वरता, ससार म रत न रह कर सार-वस्तु सग्रह, और तत्त्व प्राप्ति-हतु सतत प्रयास करने का बहुत ही भाव-भरा वणन और अनुरोध किया गया है । सार ग्रहण करने क सदभ म करण, विदुर, हरिश्चद्र, पाण्डव और

१–श्री बजरगलाल लोहिया राजस्थान की जातियाँ, पृ० १९५, सवत २०११, कलकत्ता ।
२–प्रति सख्या (क) १५२ (ख) २०१, (ग) २१५ (घ) २६३ । उदाहरण (ख) प्रति से है ।

ढुती का भी उल्लेख है। सबदवाणी मे इनका उल्लेख होने से जाम्भाणी कवियो का यह प्रिय विषय रहा है।

साखी की शब्दावली चुनी हुई और घरलू है, उसके भाव सहज ही ग्राह्य हैं। कवि की उपमाएँ तो विशेष रूप से दर्शनीय हैं। ये मरु-लोक का जीवन्त वातावरण चित्रित करने म सक्षम हैं। राजस्थानी गेय-पद परम्परा मे ऐसी रचनाएँ एक नगीने की भांति अपना प्रकाश विकीर्ण करती प्रतीत होती हैं। उदाहरण स्वरूप ये पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं —

मोमिण आव लाहो जी, करि कुजा जेहो डार ॥ ५ ॥
मोमिण मिल लाहो जी लाबी लाबी बांह पसारि ॥ ६ ॥
मोमिण बस लाहो जा, हसा की उणहारि ॥ ७ ॥
मोमिण बोल लाहो जी, करि मोरा ज्यों झगार ॥ ८ ॥
भुय लाधो छै हो जी, जे कण ल्यौह नोपाय ॥ ९ ॥
कण लुणि चुण्य लीज जी, राखि न रहो ससारि ॥ १० ॥
दहि विरख पडलो जो, धरण्य सहै भुय भारि ॥ १५ ॥
जमला जाग लाहोजी, कासी क झणकारि ॥ १६ ॥
जोधो रायक बोल जी, कळि दसव अवतारि ॥ १७ ॥

१२. केसौजी देड (विक्रम सवत १५००-१५८०)

सम्प्रदाय में केसौजी नाम के चार प्रसिद्ध व्यक्ति हुए हैं —प्रथम केसौजी देड। ये गाव सलूडे (तहसील नोखा, बीकानेर) के निवासी हुजूरी कवि थे। आयु म ये जाम्भोजी से बडे और तेजोजी चारण के कुछ वर्षों बाद स्वगवासी हुए मान जाते हैं, अत इनका समय उपयुक्त अनुमित है। दूसरे, केसौजी गोदारा, जो माडिया गाव (तहसील नोखा) के और वील्होजी के शिष्य थे। इनका स्वर्गवास सवत् १७३६ म हुआ था। तीसरे वे केसौजी जो गाव रोटू म भादुओ के घर रहते थे और जहा उनका खाडा अब भी मौजूद है। प्रसिद्ध है कि उनको यह खाडा जाम्भोजी ने प्रदान किया था। लोगों द्वारा निन्दा किए जाने पर भादुओ ने बेटी का विवाह उनसे कर दिया। उनके वकुण्ठवास के पश्चात् वह खाडा रोटू में भादुओ के घर मे ही रहा। वतमान मे वह वहा के बिश्णोई मदिर म मौजूद है। इनका समय अनुमानत सवत् १५०० से १५८० है। चौथे-'मगलाष्टक' वाले केसौजी।

उल्लिखित प्रथम केसौजी देड की एक साखी मिलती है[1] जो "जम्मे" की तीसरी साखी है। इनका महत्त्व इसी से प्रकट है। यह राग सुहव मे गेय १४ पंक्तियो की "कणा की" साखी है। इसमे भीतर के विकार त्याग कर "जुमले" मे आने, सृजनहार के जप करने, जाम्भोजी और "सतपथ" की महिमा, दान पुन करते हुई मृत्यु और उसकी अनिवार्यता तथा समय रहते सुकृत करके मोक्ष के अधिकारी बनने का प्रभावशाली वर्णन किया गया

1-प्रति संख्या ६८ (ख), ७६ (ढ), ६४, १४२, १४३, १५२, १९१, २०१, ३३४।

है। मेरा मन-परमात्मा में तुम्हे का तथा प्रेम मानियों की भांति, मन मानता भी नर रूपा में रूप में भगता वैशिष्ट्य रखती है। साखी यह है —

वो मिलो जमल तुनो तिवरो सिरजणहार ॥ १ ॥
सतगुर सतपथ चालजो, मरतर सदा पार ॥ २ ॥
हाभिनर निभिया जणो, भोगरि छोड़ विकार ॥ ३ ॥
सांपनि सिरजणहार को, विष मू करो विचार ॥ ४ ॥
अपसरि मोल म कीजिय, पछे म तहियो पार ॥ ५ ॥
जम राजा वांस वहे सझवो लियो तवार ॥ ६ ॥
पहरो पसत म पानिय, उरि परहरि इकबार ॥ ७ ॥
पाई हुता योछडया, नारी सतगुर करिसी सार ॥ ८ ॥
सेरो सिवरण प्राणियां, अतरि पड़ो अपार ॥ ९ ॥
पर नद्या पार्या तिर, मूलि उदायो भार ॥ १० ॥
परळ होयस्य पाव ता, मूरिल सहिस्य मार ॥ ११ ॥
पाछ हो पछतायस्यों, पार्या तणो पहार ॥ १२ ॥
औगणगारो आदमी इळा रहें उरवार ॥ १३ ॥
केसो कहे करणी करो, पावो मोल ववार ॥ १४ ॥—प्रति सख्या २०१ से।

१३ लालच द नाई (अनुमानत विक्रम सवत १५००–१५८०)

ये हुजूरी कवि और बीकानेर रियासत के किसी गाव के नाई थे। 'लूर' म इनका नाम दूसरा है। इससे इनकी प्रसिद्धि के साथ इस बात का भी पता चलता है कि प्रारम्भ म ये अन्य मतावलम्बी थे किन्तु बाद म जाम्भोजी की महिमा से प्रभावित होकर विष्णोई सम्प्रदाय म दीक्षित हुए थे।

"छ दा की" साखियों के अन्तर्गत इनकी राग गवडी मे गेय ४ छन्दा की एक साखी मिलती है[1]। कहा जाता है किसी विख्यात ज्योतिषी को लोगों का भविष्य बताते देख कर जाम्भोजी की विद्यमानता म ही कवि ने यह साखी कही थी।

इसम मत्यु की अनिवार्यता, प्रबलता, मत्योपरान्त देह की स्थिति और यमराज के सम्मुख जीवात्मा के पश्चात्ताप–चार दशाओ का उत्तरोत्तर घनीभूत होता हुआ प्रभावशाली चित्रण किया गया है। रचना मे एक चेतावनी है जो पाठक को सदैव जागरूक रहने की प्रेरणा देती है, अत इसका प्रभाव स्थायी और बोधक है। जीवन को ऊँचा उठाने और उदात्त-गुणो की ओर उन्मुख करने मे ऐसी रचनाओ का विशेष महत्त्व है। यह बोलचाल की मरुभाषा म है, जिसम चुने हुए दैनदिन शब्दो का प्रयोग किया गया है। उदाहरणार्थ दो छन्द द्रष्टव्य हैं —

1–प्रति सख्या ७६ (ढ) ६४ १४१ १४२ १६१ २०१ २६३, २८९।
उदाहरण प्रति सख्या २०१ से।

सो दिन लिखि दे रे जोयसी, हसराय कर पयाणौं।
धधो इघक निवारिय, सब जुग होय विडाणौं।
सब जुग विडाणौं मन पछताणौं, विसनो विसन धियाइय।
पुन मारग धरम क्रिरिया, दिया होय स पाइय।
सुक्रत पाखो ल्गछ लिछमो, सग्य कछु न होयसी।
जा दिन हसराय कर पयाणौं, सो दिन लिखि दे रे जोयसी ॥ १ ॥
नख चख ता (जदि) जोव निसर, ता दिन को डर भारी।
न जाणौं कह गु णि रो सण छोडि चल्यौ कुढि प्यारी।
छोडि कुढि जदि हस चाल्यो, हेत हुरमति सब गई।
नित वारि चदण खोलि करतौ, छिनक मा गदी भई।
परहरी माया ल्गछ लिछमी, पून प्रीतम नारिया।
नख चख ता जदि जीव निकस, ता दिन को डर भारिया ॥ ३ ॥

१४ का्होजो बारहट (सवत १५००–१५८०)

ये रोहडिया शाखा के बारहट रापडाम (जोधपुर) के चाहडजी के पुत्र थे। चाहडजी ने बीकानेर राज्य की स्थापना म राव बीकोजी को महत्त्वपूर्ण योग दिया बताते हैं। इसके उपलक्ष्य मे रावजी न इनको खु डिया एव चाहडवास सहित १२ गावों की ताजीम दी तथा बीकानर का "पोळपात" बारहट बनाया था। इस विषय का एक कवित्त[1] बहुत प्रसिद्ध है जिसम १२ गावो की ताजीम का उल्लेख है। चाहडजी से रोहडिया चारणो की चाहडोत शाखा चली। खु डिये म ही सवत १५०० के लगभग का्होजी का जन्म हुआ। ये राव बीकोजी और राव लूणकरणजी के समकालीन थे। प्रसिद्ध है कि राव लूणकरणजी को जाम्भोजी की ओर आकृष्ट इन्होंने ही किया था। इनका स्वगवास सवत १५८० के आस पास हुआ माना जा सकता है, यद्यपि इस आशय का लोक-प्रसिद्धि के अतिरिक्त और कोई ठोस प्रमाण हमे उपलब्ध नही हो सका है। इनके बडे भाई भीमजी के नाम पर उल्लिखित गावो म एक का नाम भीयासर पडा। भीमजी ही अपने पिता के स्वगवास के पश्चात बीकानेर के 'पोळपात' हुए। खु डिये मे एक पुराना देवी का मन्दिर है, जिसम एक छोटी सी 'माताजी' की मूर्ति रखी हुई है। कहा जाता है कि यह मन्दिर इन्हीं भीदजी बारहट ने बनवाया था। का्होजी पुत्र विहीन थे, इस कारण इनका वश नहीं चला खुन्डिये के रोह-

---

१–समप गाव सीगडी[1], दुम्रो नगासर[2] दाखू ।
साापरसर[3] खडतवास,[4] भलो भीयासर[5] भाखू ।
गोमटियो[6] गिळगटी[7] मज्झ मळवास,[8] मिहेरी[9] ।
बाळेरी रो वास[10] धरा दम सहस'विनेरी[11] ।
मामणा गाव बारा सहत, मज्झ थळी सिर मडियो ।
सुल्तार बीक जोध मुतन, खतरी समप्यो खुडियो[12] ।

सासारिक माया-जाल, नश्वरता, चित्त की एकाग्रता, पाखण्ड और क्रोध-त्याग, हरि भजन, सत्सग, दान, गुरु-ज्ञान-ग्रहण, सत्सग तथा आयु घटने की चेतावनी आदि आदि विषयों का अनेक प्रकार से वर्णन किया गया है। रचना म स्पष्ट ही दो प्रकार के विषय वर्णित हैं-गुरु-कृपा से विद्या के सार-बावन अक्षरों का रहस्य समझना तथा उस रहस्य को इन अक्षरों के माध्यम से व्यक्त करना। "बावनी" म ३३ छन्द हैं, और प्रत्येक छद की तीन पक्तियों के पश्चात चौथी पक्ति "भणि भणि भगवत भणि भणि बुधर, बांवन अक्षर बूझि गुरु" टक रूप में आती है। उदाहरणस्वरूप "अ" "च" और "म" से सबधित छन्द देखे जा सकते हैं[1]। "बावनी" राजस्थानी साहित्य का एक सशक्त काव्य-रूप है और इस परम्परा म प्रस्तुत रचना का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

फुटकर छदों म जागडो गीत ७ दोहलो का है जिसम अनेक प्रकार से जम्भ महिमा वर्णित है[2]। अपने आराध्य के गुणगान सबधी डिंगल गीतों म इसका अपना वैशिष्ट्य है।

कवि के निम्नलिखित दो कवित्त तो अत्य त ही लोकप्रिय हैं और यथावसर कहावतों की तरह कहे जाते हैं। कवि ने व्यावहारिक ज्ञान और दैनदिन प्रयोग की-वस्तुओं के माध्यम से प्रथम कवित्त मे भगवान की सर्व-समर्थता और दूसरे मे राम-नाम माहात्म्य का बखान किया है।

१-अआ आव घट मरण दिन आव, अवथा जनम हुव अपणों।
आया तजि आप तणों करि अवगण, अ ेत तणों गुण अवचरणो।
अभ अ तरि सिवर अहोनिस अवगति एण उपाय बोहत अ तर ॥ ३० ॥ भणि० ।
चचा से चतर कहीज चारण, चत्रभुज कीरति उचरणों।
चचळाई छाडि अवर नहि चाहें चेत चमटावें हरि चरणो।
चेत दुण पहर चवता चौत्रवता, चित मा साय न को चहर ॥ भणि ॥ ६ ॥
ममा ग्रह मूळ मळ मत मेल्है, माहवो नाव स महमहणो।
ममता तजि मोह मांग तज्य नद्या, माया मल्हि असती मरणों।
मन सिवरण जोति अ धेरो मिटिमी, मनसा देह तणा मधर ॥ भणि ॥ २५ ॥
२-नर निरहारी भभ निकळती अ नत अ नत गुर एक अछ।
पणमिया जके नर पारि पहु चिसी, पाअीयळ नर रोयसी पछ ॥ १ ॥
एकळवाइ थळ मिर ऊभो केवळ ग्यान कथ करतार।
सुरग देवण आयो सुचियारा, विसन जपो दसव अवतारि ॥ २ ॥
त्रिपा नींद पुध्या तिम नाही, जावो भगतो आळीगार।
आदि बोसन समरथळ आयो, लक तणां गढ लेवणहार ॥ ३ ॥
पेडभा क र रीछ ह्वीकय, पथरे जळ क जीपाजा।
भगन पुध्या तिस नींद न गज्यो, रावण सुध्य रोडवण राजा ॥ ४ ॥
रोडविया राकस दस महा रिण, कौन लहै करतार कळे।
अकट कोट नै लेय कणि सीता वाळी सो आवियो वळे ॥ ५ ॥
आई सहरि समद री लोका वूठो छ ते वाहो।
वारो वारि न लभिसी प्राणी, रतन कया रो दावो ॥ ६ ॥
का्ो कहै मु गों काने कय भवगति गुर माहरो अछ।
बीकाण देस विमनजी विगतो*, परम गुर परसिया पार पछै ॥ ७ ॥-प्रति स० ४८ से।

* प्रति सख्या २०१ से। प्रति सख्या ४८ म इस शब्द के स्थान पर "परगट" पाठ है जो "वयणसगाई" की दृष्टि से ठीक नही है।

(१) जाचक रो कहा जाच, जाच राजा जुगपती।
दो है रो कहा देत, आप नहीं होत निपत्ती।
सुरपत नरपत साह, राव राजा 'र भिखारी।
लख चौरासी जीव, एक दातार मुरारी।
जाच तो जाच जरणारजन, वेद पुराणा बांचिय।
कां ह्या जाच किरतार न, जाचक रो कहा जांचिये ? ॥ १ ॥
(२) आमो काट अजाण, खेत बम्बूळ जमाये।
सोवन कुस घास, खेत कोद्र को बाये।
कूलो कर कपूर, किनक चरब्बी चढी।
बाळ चदण बावमो, माहि मूरख खळ रधी।
भरम र माहि भूल्यो फिरयो, नीच करम गत नाहियो।
राम रो नाम खोयो रतन, कोडी बदलै काहियो ॥ २ ॥

चार पद्यो के एक "हरजस' म कवि ने "सुन्य नगरी", उसके आनद और उस तक पहुचने के प्रयास का बडा सुदर वणन किया है। यह स्वानुभूति की अभिव्यक्ति है। कहना न होगा कि काल क्रम की दृष्टि से राजस्थानी गेय पद-परम्परा मे ऐसे पदो का अपना विशेष स्थान है। मीरा के हरजस आरम्भिक विश्णोई कविया के पद-साहित्य की भूमिका पर ही पनपे हैं, सीधे रूप से यही उसका प्रेरणा-स्रोत रहा है। हरजस यह है —

जहा अवर न पाव बास, सुन्य नगरी पावही ॥ १ ॥ टेक ॥
नगर नाव वेगमपुरा, कोउ वसै स वेगम होय।
जतन जतन करि पोहचियें, फिरि आवागु वण न होय ॥ २ ॥
जहा लोक लाज की गम नहीं, सकळ दीवाना देस।
जे उत पहुचे चालि क, फेरि दोहडि न काछै वेस ॥ ३ ॥
जाति वरण जाह कुल नहीं, ऊच नीच न कहाय।
सुरति निरति दोऊ धरे, तो उस मारगि जाय ॥ ४ ॥
सकळ कुटब एकतर भया, पद पद समाने प्राण।
ग्यान ध्यान पाछ रह्यो, तित काहा गळ तान ॥ ५ ॥

का होजी की भाषा अत्यत सरस, मुहावरदार और सहज ग्राह्य है। जाम्भाणी चारण सिद्ध कवियों म इनका महत्त्वपूर्ण स्थान है और राजस्थानी भक्त कविया की परम्परा मे एक प्रमुख कवि के रूप म इनका समादर है। यद्यपि इनकी रचनाएँ कम ही प्राप्त हैं, तथापि उनसे परवर्ती राजस्थानी काव्य-धारा को सम्यक्रूपेण समझने का आधार मिलता है।

१५ आसनोजी (आसानन्द) (विक्रम सवत १५०० १६००)

ये महलाणा (भोमिया, जोधपुर) गाव के सोढा जाति के भाट थे। अवस्था में ये

जाम्भोजी से बड़े और उनकी महिमा से प्रभावित होकर उनके शिष्य बने थे। जाम्भोजी ने इनको गायन-वादन का काम सौंपा था किन्तु बाद में इनके वंशज विश्नोई समाज की वंशावली लिखने का काम करने लगे और जो अब तक करते आ रहे हैं। महलाणा इसी कारण, विश्नोई भाटों का मूल गांव है। कहा जाता है कि जाम्भोळाव– निर्माण के पश्चात् किसी समय जाम्भोजी अपनी भ्रमण-यात्रा में एक बार इनकी प्रार्थना पर महलाणा के पास ठहरे थे। उस समय ये काफी वृद्ध थे और स्थायी रूप से वहीं रहने लगे थे। जाम्भोजी के बैकुण्ठवास के पश्चात् भी ये कई वर्ष और जीवित रहे। इस कारण इनका समय उपर्युक्त अनुमित है। सुप्रसिद्ध कवि और गायक आलमजी भी इसी कुल में हुए थे (द्रष्टव्य आलमजी)। इससे भी जाम्भोजी के काल सम्बन्धी उपर्युक्त कथा की अप्रत्यक्ष रूप से पुष्टि होती है। "२४ की जूर" में 'आसन भाट" का नाम १९ वां है।

हस्तलिखित प्रतियों[1] में "हरजस" के अन्तर्गत "मल्हार राग" में गेय रचना १० दोहों का एक "झूमखो" मिला है जिसमें यह टेक लगती है –

मेरा लाल न अ सो हरजी रो झूमखो पांचू परमळ भारी ।
ए पांचू नै वस कर, साह पतिवरता नारी ॥१॥टेक॥

–प्रति सख्या ४८ से।

प्रसिद्ध है कि मोती चमार वाली घटना (द्रष्टव्य जाम्भोजी का जीवन-वृत्त) के पश्चात सम्भराथळ पर भावाभिभूत होकर कवि ने यह 'झूमखो' गाया था। इसमें घट में की जाने वाली योग साधना, उसकी प्रक्रिया रीति और चरम प्राप्तव्य "मधुर अमी रस" पान का अत्यन्त सारगर्भित, संक्षिप्त और सुन्दर वर्णन किया है। एक छन्द (सख्या ८) मे स्पष्ट होता है कि कवि अपने "अणभै (अनुभव) का बखान कर रहा है। ध्यातव्य है कि उसने एक ही स्थान में बसनेवाले पति पत्नी के प्रतिदिन होने वाले झगड़े का बड़ा सांकेतिक और साशय वर्णन किया है। ये शरीर में रहने वाले मन और आत्मा के प्रतीक हैं। (छंद २, ३)। भाषा बोलचाल की मारवाडी है। राजस्थान में नाथ योगियों के प्रसार और सबदवाणी की पीठिका मे "झूमखो" की योगिक शब्दावली सरल और बहु प्रचलित ही कही जा सकती है। राजस्थानी-योग विषयक पदों में स्वानुभूति की सहज अभिव्यक्ति, प्रेषणीयता और और प्राचीनता की दृष्टि से इस रचना का वशिष्टय है। इस कारण, नीचे यह पूरा पद उद्धृत किया जाता है[2] –

इक गुणवती कामणी, निगणो मोरो नाह ।
एकणि वास वसतडां, अब क्यों मेल्ह्यो जाय ॥ २ ॥
घण पुरांणी पीव नुवों, निति उठि झगडो होय ।
घण पिछाण पीव न, आवागुवण न होय ॥ ३ ॥

१–प्रति सख्या-४८ (ग) (५), २०१ २२७ (घ)।

२–प्रति सख्या ४८ तथा २०१ म इसके पाठ म अन्तर और छन्द–व्यतिक्रम भी ह। प्रति सख्या २२७ का पाठ प्रति सख्या २०१ के पाठ से मिलता ह। प्रति सख्या ४८ का पाठ अपेक्षाकृत आधुनिक और विकृत होने से यहा उदाहरण प्रति सख्या २०१ से ह।

पाळ पुराणी जळ नुवौं, हसा केळ कराय ।
बाळापण री प्रीतडो, चुण चुण हरि चुगाय ॥ ४ ॥
गिगन मडळ मा कोठडी, धुर दमामा घोर ।
मन मधकर सू मिल रह्यो, छेदया क म कठोर ॥ ५ ॥
बकनाळ नीझर झुर, अमर मर नहीं जीव ।
पलटि जोगणि जोगी हुव, सू न्य महारस पीव ॥ ६ ॥
गग जमना सुरसती, त्रवणी तटि असनान ।
चद सूरिज अभ अ तर, अठसठि तीरथ थान ॥ ७ ॥
कणि औ झू बखो गावियो, किण अह किया बखाण ।
जा घटि अ णभ उपजै, जाका अह इहनाण ॥ ८ ॥
अ घ उरध बसेर हो, भु वर गुफा एक ठाव ।
पाच पचीसू बसि कर, सभू जाको नाव ॥ ९ ॥
अगम निगम जहां गम नहीं वरन विवरजत दीठ ।
आसानद ऐसी कहै, पीयो अमी रस मीठ ॥ १० ॥

१६ कवि - अज्ञात (विक्रम १६ वीं शताब्दी) "जम्मे" की साखी[1]

१७ पक्तियो की प्रस्तुत साखी अज्ञात हजूरी कवि द्वारा रचित ह । "जम्मे" मे गाई जाने वाली सब प्रथम साखी होने से इसका विशेष महत्त्व ह । साखी से प्रतीत होता ह कि इसकी रचना जाम्भोजी की विद्यमानता म, पथ चलाने के बाद हुई ह । इससे यह भी पता लगता ह कि जम्मे म जाम्भोजी शका– समाधान और ज्ञानोपदेश किया करते थे । इसमे *तीन बातो का उल्लेख ह – (क) जम्मे म ग्रान की आवश्यकता और लाभ,* (ख) जाम्भोजी के यहा आने का कारण तथा (ग) उनकी महत्ता और काय । उदाहरणस्वरूप ये पक्तियाँ देखी जा सकती हैं –

साधे मोमणे कियो छ अळोच, जमू रचावियो ॥ १ ॥
इह नु मळ पुजलो करोड, गुर फुरमावियो ॥ २ ॥
दिल का दुसमण पालि, तो बुझि जमल आवियो ॥ ३ ॥
अबक बारि गुर झामेसर देव, कलि मा आवियो ॥ ८ ॥
समरथळि लियो मेल्हांण तखत रचाइयो ॥ ११ ॥
गुर म्हारो बैठो खेवट ताणि, अनू नुवाइयो ॥ १२ ॥
गुर म्हार कथियो केवळ ग्यांन, उतिम पथ चलायो ॥१५॥
पहराजा सू कौल, वाचा पाळण आइयो ॥ १६ ॥
जे ध्यायो झांमेसर देव, तां फळ पाइयो ॥ १७ ॥

–प्रति सख्या २०१ से ।

१–प्रति सख्या ७६ (ढ), ९४, १४२, १४३, १५२, १६१, २०१ ।

१७ कवि - अज्ञात (विक्रम १६ वीं शताब्दी)

साखी —थोथलो थोन दिलां मां ध्याइय, हृदय गुरां सारीखा । गुर आइयो[1] ॥

१० पंक्तियों की यह साखी "करणा की" साखियों में अंतर्गत है। इसमें गुरु की सीख मानने, "जमले" में सत्संग, मृत्यु भली-बुरी करनी, मुक्ति का उपाय और 'गुरु वाट' पर चलने का उल्लेख है। उदाहरणार्थ ये पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं —

राजिये राज तज्यो जीव काज, गुर सिख मांगी भीखा ॥ २ ॥
चद छिप्प नित होय अंधियारो, गुर विण एह परीखा ॥ ३ ॥
हासिल जमा मुवां जीव जांण, जवि गुर मांग लेखा ई जाय का ॥ ७ ॥
सतगुर सांई सभ बुधि सांई, पाप धरम का लेखा ॥ ८ ॥
गुर फुरमाई टळ न भाई, गुर सबदां की मेखा ॥ ९ ॥
गुरवट छूटो करण पहेल, रहै न एका रेखा ॥ १० ॥

साखी की अंतिम दो पंक्तियों में सबदवाणी की पंक्तियों (१०१ २ ८२, ५, २८ ३३) का प्रभाव दिखाई देता है।

१८ कवि - अज्ञात (विक्रम १६ वीं शताब्दी)

साखी — दिल मां दायम वीदो साधो मोमिणो, परदसी ससारो, गुर कायमां ।
—(प्रति ६८, २०१)।

"करणा की" साखियों के अंतर्गत राग सुहव' में गेय यह १० पंक्तियों की साखी है, जिसमें संसार की नश्वरता और मृत्यु की अनिवार्यता बताते हुए सुकृत और विष्णु-जप का उल्लेख किया गया है। थोड़े से घरेलू शब्दों में, संक्षेप में रचयिता ने जीव की वास्तविक स्थिति बताते हुए मोक्ष पाने का उपाय बताया है। कवि ने कतिपय पंक्तियों में सबदवाणी (८४ १४, ५७ ३, ११६ २, ७२ २५, २४ ५, ६६ ३४) की पंक्तियों का भी अपने ढंग से प्रयोग किया है। उदाहरणस्वरूप ये पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं —

सुकरत सुरग्य सुहेला हृदय, मन मां वेलि विचारि ॥ ३ ॥
गरथ विहूणों जिसो चौपारी, किया विहूणों हारी ॥ ४ ॥
सबळ विहूणों कोस न चालिय घर है भुय जळ पारी ॥ ५ ॥
दिन दिन आव घट सौणि मनवा, ज्यों छकयौ विधि सारी ॥ ६ ॥
विसन जपता पाप न रहिस्य पहि उतरिबा पारी ॥ ९ ॥
मुरां सू मेळो कांह दीसावरि, गोठी मिलौ दीदारी ॥ १० ॥
—प्रति संख्या २०१ से ।

१-प्रति संख्या ६८ (ख) (६) १५२, २०१ । उदाहरण अंतिम प्रति से है ।

१६. कवि - अज्ञात (विक्रम १६ वीं शताब्दी)

साखी —रे मन मीठा लोभ पइठा, लिखू स दिलसा काची[1]।

समस्त उपलब्ध प्रतियो मे "साखी छन्दा की" के अन्तर्गत, यह प्रथम साखी है जिसमे ४ छन्द हैं।

इसम सासारिक विषयो मे भटकते हुए मन को वस म करके भगवदोमुख करने, शुभ-कर्मों की ओर लगाने तथा सत्काय करने का उल्लेख है। कवि का विश्वास है कि फल प्राप्ति क्रिया के अनुसार होती है अन्त मे "सत" ही अच्छा साथी होगा, कूड-कपट तो भारी पडेगे। जिसका मन खोटा है, टोटा उसी को है, अत मन को "सूधो" ही चलना चाहिए। उदाहरणाथ साखी के अन्तिम दो छन्द द्रष्टव्य हैं —

रे मन भूठा करि पाच अपूठा, ज्यों चालू ज्यों चाली।
मन हठ माण मेर जे छाडो, कूड कपट सोह पाली।
पालो प्रीति पुवण घण सचौ, नर निरहारी दीठो।
हीर पखो काय हुजति साझो, मन झगडालू मूठो॥ ३॥
सत करि बदा परहरि पर नद्या, पावे जमलो कोज।
दसवद देव तणो काय रालो, द्ररग लेखो लीज।
जह मन्य खोटा तह मन्य तोटा, न करि पराई नद्या।[1]
हिरद जो हरख्यो हरि जप, तो सत सोझै बदा॥ ४॥

उल्लेखनीय है कि मन को लक्ष्य कर साखी-रचना की परम्परा सम्प्रदाय म इसी साखी से आरम्भ होती है।

२० कवि - अज्ञात (विक्रम १६ वीं शताब्दी)

साखी —मेरो अ खिया फरुक जो काग करुक आगणे[2] ॥ १ ॥

यह १५ पक्तियो की "करुणा की" साखी है। इसम किसी हरि-भक्त स्त्री के घर मे धम निष्ठ साधुओ के आने का वर्णन है।

साखी लोकगीतो की शली म रचित है जिसम तत्कालीन लोक-प्रचलित विश्वास मान्यताओ तथा प्रिय अतिथि के खान-पान और आराम की लोक-प्रसिद्ध वस्तुओ का बडा सुन्दर वर्णन किया गया है। समस्त साखियो मे यही एक साखी है, जिसमे मध्य-युगीन राजस्थानी जन-जीवन की सुख-सुविधाओ से सम्बन्धित लोक मान्य आदश वस्तुओ का उल्लेख मिलता है, जो किसी सीमा तक आज भी प्रचलित है। आत्मपरक कथन

१-प्रति सख्या-६८ (त)(६)' ७६ (ड), ६४ १४१, १४२, १५२, १९१, २०१, २१३। उदाहरण—प्रति सख्या २०१ से।
२-प्रति सख्या ७६ (ड), ९४, १४१, १४२, १५२, १६१, २०१, २१५, २६३।

होने से इसका प्रभाव अच्छा बहुत पड़ता है। इससे घरेलू वातावरण का प्रेम भरा मनोहारी दृश्य सामने आता है। तत्कालीन समाज में अतिथि-सत्कार और आत्मोत्थान के प्रति अनुराग भावना भी द्रष्टव्य है। उदाहरण के लिए ये पंक्तियाँ दर्शी जा सकता हैं —

पाडोसणि बूझ जो, पांहैणड़ा कोई आयसो ॥ २ ॥
घोड़ यलां खुर बाज जो, यळू क बाज घूघरू ॥ ३ ॥
साध मोमिण आए जो, धन्य विहाड़ो धन्य घड़ी ॥ ४ ॥
कोरा घरू बहोड़ जो जळ मगाऊ गग को ॥ ९ ॥
झोनव का चावळ जो, दाळि हरी हरी मूंग की ॥ १० ॥
गावो घिरत मगाऊ जी, वही मगाऊ भैस्य को ॥ ११ ॥
कासमीरी थाळी जो, लोटो मगाऊ मुहम को ॥ १२ ॥
साध मोमिण जोमै जो, अचळ झोळो वीसणो ॥ १३ ॥
पाडोसणि बूझ जी, पाहैणड़ा के स्याइया ॥ १४ ॥
म्हांने सुरग वताय जो रतन कया हीरे जड़ी ॥ १५ ॥-प्रति सख्या २०१ से।

२१ कवि - अज्ञात (विक्रम १६ वीं शताब्दी)

साखी —उत्तर दिसा दोय मोमिण आया, घर पुछाव रूड साध को-(प्रति सख्या २०१)।

साखी "करणी की" के अन्तर्गत यह २५ पंक्तियों की साखी है। इसमें लोकगीतात्मक संवाद-शैली में एक वहू की धर्म-भक्ति तथा उसके माध्यम से अपनी-अपनी करनी के फल भुगतने का अत्यन्त रोचक दृष्टान्त प्रस्तुत किया गया है।

वहू का पड़ोसिन से साधुओं के आकर ठहरने की बात न कहने का अनुरोध तथा माँ की आज्ञा पर पुत्र का वहू को निष्कासित करना तत्कालीन घरेलू वातावरण और स्त्रियों की सामाजिक स्थिति को स्पष्ट करता है। साथ ही स्त्रियों का विशेषत बहुओं का, ससुराल में "धर्म -विशेष का पालन और अतिथि गुरु-भाइयों के आदर-सत्कार करने सम्बन्धी कठिनाइयाँ और ऐसा करने पर उसके भीषण परिणाम का अत्यन्त यथार्थ वर्णन कवि ने किया है। घर से वहू को निकालने का कारण चारित्रिक सन्देह प्रतीत होता है जो मध्य-युग में किसी भी स्त्री के लिए अध्यात्म-पथ में बाधक रहा है। अन्त में धर्मपालन के स्वर्ग-मोक्ष प्राप्ति का उल्लेख करके कवि ने यह भी स्पष्ट करना चाहा है कि धन धर्म पालन करने से ही ठहरता है।

'धर्म -पालन के हेतु हसते-हसते मृत्यु को अंगीकार करने के अनेक उदाहरण विष्णोई सम्प्रदाय में मिलते हैं, जिनका विभिन्न कवियों ने सोल्लास वर्णन किया है। प्रकारान्तर से यह साखी इसी परम्परा की प्रथम साखी है। रचना के उदाहरण स्वरूप ये पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं —

पूछत पूछत साधु जण आया, हित करि मिलो आमणी ॥ ३ ॥
घर साह जिणि भोजन दीन्हो, उतिम ओढणि विछावणा ॥ ४ ॥
पाडोसिण पूछ कुण ज आयाजी, किणि नाते कुण पाहणा ॥ ५ ॥
आमणी कहै म्हारे गुर को नातो जो, साधु इ आया म्हार पाहणा ॥ ६ ॥
काही रुल्या घर को माल गुमाव, सवनि पडेसो सासू आविया ॥ ७ ॥
लेर नै पाडोसणि सीस री है चूदडी, म्हारो तो छेदो बहनड तो रह ॥ ८ ॥
थारी तो चूदडी थेई ज ओढो जी, म्हारी तो अलवी बहनड न रह ॥ ९ ॥
काळा बळदा वेटा वहलि जुपाडो जी, घर ता निकाळो बहू आमणी ॥ १५ ॥
आवेलो वेटो तिसायो हुवो जी, सूका सर पाणी छल्या ॥ १८ ॥
नीवेलो बेटो भूखो हुवो जी, खोखा लिरि झोळी पडया ॥ १९ ॥
मोहर रुपइया कोयला हुवा जी, रिध्य सिध्य लेगी बहू आमणी ॥ २० ॥
धोळां बळदा वहलि जुपाडो जो, पाछी आणो घरि आमणी ॥ २१ ॥
धरती माता वेहर ज दीन्ह जो, धरा समाई 'सती आमणी ॥ २२ ।
जसो कुमाव तसो फळ पाव, कुमाई लह्या स्य आपो आपणी ॥ २५ ॥

२२. कवि - अज्ञात (विक्रम १६वीं शताब्दी)

साखी —सतगुर आयो मोमिणो महरि करि, सुर नर वीनऊ साच[1]।

"राग आसावरी" मे गेय "छदा की' साखिया के अन्तगत यह ४ छदो की साखी । इसम जाम्भोजी की महिमा, सुकृत और मोक्ष-प्राप्ति हेतु भावभरी चेतावनी दी गई । सम्प्रदाय की मूल विचारधारा को सुरक्षित रखने म ऐसी साखियो का बहुत बडा हाथ । उदाहरण के लिए एक छद द्रष्टव्य है —

अवसर जाहै न चेतियो, वळे न लाभ वेर ।
कूड जीवण के कारण, मन्य न कीज मेर ।
म करि मेरा नाहि तेरा, कळपि भार न लीजियै ।
छोड मन मुखि हुय गुरमुखि, जो गुर कह्यो स कीजिय ।
कांम क्रोध क्लोभ परहरि ध्याय मन सूधो करे ।
जुगि चोथ विसन परगट, चेति जीव इण औसरे ॥ ३ ॥—प्रति सख्या २०१ से ।

२३ कवि - अज्ञात (विक्रम १६ वीं शताब्दी)

साखी —स्नरण तारण स्नभराय आवियो, तेतीसां प्रतपाळ[2] ।

साखी ' छन्दा की" के अन्तगत राग आसावरी" मे गेय यह ५ छदो की साखी है, जिसमें

१-प्रति सख्या ७६ (ढ), ९४, १४१, १४२ १५२ १६१, २०१ २१५, २६३ ।
२-प्रति सख्या-७६ (ढ), ९४ १४२ १५२ १६१, २०१, २१५ २६३ ।

दो प्रकार के गाए हैं - जाम्भोजी और उनकी महिमा गान कर के प्रकार और उसकी सत्य-शाश्वतता का। जाम्भाणी साहित्य में यद्यपि इस प्रकार के गीत का अधिक वर्णन किया गया है किन्तु प्राचीनता की दृष्टि से इन गानों का विशेष महत्व है। उदाहरण स्वरूप एक छन्द दिया जा सकता है -

> फिरो दुहाई राम विसन की, गुण मंडक आर सीत।
> खीण म खीण गढ़ मां कटकिया, तम बसा लोको मखीन।
> तम रण कीवे मखीन सोवो, सोहड़ सावन है नका।
> भया खीन भड़हड़ा परमत, कोठि आग दहि पड़ा।
> प्रथम आगळि रोस उपनो, साम्य गुरता विसन की।
> छोडि पुरख नुक्सा पर्छम, फिरो दुहाई राम विसन की ॥ २ ॥-प्रति सं० २०१।

२४ कवि - अज्ञात (विक्रम १६ वीं शताब्दी)

साखी —मैं गुर पेरया री मेरी माय, सोई सतगुर प्रभु वण को राव री[1]।

राग आसावरी में गेय साखी छन्दों का यह अज्ञात पद ४ छन्दों की साखी है जिसमें जाम्भोजी की महिमा गान है। इसमें कवि आत्म-साक्ष्य और स्वानुभूति के आधार पर पूर्ण विश्वास के साथ अपनी बात कहता है। वह यह सूचना भी देता है कि लोग जाम्भोजी की निंदा भी करते थे - केई केई नींद करै मेरी माय वद दुती गुर साधु पायो' (छं० ३)। अन्यत्र हुजूरी कवियों की रचनाओं में जाम्भोजी के सम्बन्ध में ऐसा कथन नहीं मिलता। एक छंद यह है -

> ओह विणजारो री मेरी माय विणज करण आयो ससार री।
> ओहडि सराफोडो री मेरी माय, परिखि लहो चुणि मोती री।
> लियो मोती विसन जोती, साच पांणी लावई।
> ग्यानि बालर ध्यांन काया, सकळ सार लेवई।
> कळिकाळे वेद अथरवण, सहज पथ चलावियो।
> समरायळि जोति जागी, जुग विणजण आवियो ॥ २ ॥ –प्रति स० २०१।

२५ कवि अज्ञात (विक्रम १६ वीं शताब्दी)

साखी —कळयुग देवजी को चिरत बखाणि, पनरा सै र तिरांणवै[2]।

यह राग "मारू" में गेय, ४ छन्दों की "छदा की" साखी है। इसमें जाम्भोजी के निधन-काल और स्थान, उनके प्रमुख कार्य, प्रभाव, पथ-प्रवतन, उसकी महत्

१-प्रति सख्या-१५२, २०१, २१५, २६३।
२-प्रति सख्या—१५२, २०१, २१५, २६३।

और विशेषता का वर्णन करता हुआ कवि उनकी कृपाकांक्षा तथा उनके निधन से आतुर हो धय के लिए शक्ति मांगता है। उसको उनका बहुत भरोसा है और यही उसको सांत्वना का कारण है। इसको "मरसिया" साखी कह सकते हैं क्योंकि इसमें मरसिये के सभी गुण विद्यमान हैं (द्रष्टव्य-अन्तिम अध्याय में मरसिये की विशेषताएँ)। अज्ञात कवि-रचित साखियों में यही एक मात्र मरसिया साखी है। राजस्थानी मरसिया काव्य-परम्परा में इसका महत्त्वपूर्ण स्थान होना चाहिए। इससे दो विशेष बातों का पता चलता है –

१-कि जाम्भोजी का वकुण्ठवास संवत १५९३ की मार्गशीर्ष बदि नवमी को समरायळ पर हुआ था। (सम्प्रदाय में वकुण्ठवास-स्थान लालासर माना जाता है)।

२-कि जाम्भोजी के समय में चार प्रमुख "धर्म" प्रचलित थे-इसलाम, ब्राह्मण, नाथ और जैन। एक छन्द यह है –

प्रभ न टाळो म्हारा सांम्य, हमै'र उमाहो तेर दीदार को।
भाइडा सीधा एकणि धार, करि उमाहो जमलै पार को।
करि उमाहो पारि पुहता, गया दुख घणेरहो।
जोग जुगति 'र कौळ पूरो, ओ भरोसो तेरहो।
सत दे करतार दिल मां, कोडि बार मिलाइयो।
चिळत पाखो क्यों सहारू, सांम्य प्रभ न टाळियो ॥ ४ ॥–प्रति सं० २०१।

२६ कवि - अज्ञात (विक्रम १६ वीं शताब्दी)

साखी —आवरि आवरि लेखो मोमिणो मागिय, घरि घरि फिर नकीबा[1]।

राग "गवडी" में गेय यह ४ छन्दों की "छदा की" साखी है जिसमें जाम्भोजी को दुस्तर संसार-सागर से पार उतारने वाले खिवया बताते हुए उनकी महिमा और सुकृत द्वारा आवागमन से मुक्ति पाने का उल्लेख किया गया है। इसकी एक विशेषता है—कलियुग में मुक्ति पाने वाले बारह कोटि जीवों के लिए वकुण्ठ में "चौबारो" पर अप्सराओं के राह देखने का प्रसंग (छंद ३)। यह प्रधानतः राजस्थानी वीररसात्मक काव्यों की रूढि है जो अध्यात्म-क्षेत्र में इस रूप में विष्णोई कवियों ने अपनाई है। इस दृष्टि से यह अपने ढंग की पहली साखी कही जा सकती है। एक छन्द द्रष्टव्य है –

चडि नै चौबारै लाडली क्यों खडी, पहरि पटबर झुना।
सायी म्हारा आंवण कहि गया, कदि मिलस्य बाग विछुना।
याग विछुनां मिल्य क्यों करि, कोडि बारै जोडणी।
कळिकाळि कमळ किरिया, मोह माया तोडणी।
एक मनि देव करू सेवा, अतोपात सहारियै।
वकुंठ साहा मनि उमाहा, लाडी चढि खडी चौबारियै ॥ ३ ॥

1-प्रति संख्या-१४१, २०१, २६३। उदाहरण प्रति संख्या २०१ से।

३५ कवि - अज्ञात (विक्रम १६ वीं शताब्दी) छप्पय ।

किसी अज्ञात कवि कृत जम्भ महिमा सम्बन्धी तीन कवित्त प्राप्त हुए हैं जो पाद टिप्पणी में उद्धृत किए गए हैं[1]। उदोजी नण रचित आरती गान की भांति ही हवन के पश्चात् इनके द्वारा जाम्भोजी का ध्यान स्मरण करना एक आवश्यक नियम है। इ इनकी महत्ता स्वयं सिद्ध है। ये हुजूरी कवि की रचना बताए जाते हैं। इनसे जाम्भोजी व सम्प्रदाय सम्बन्धी संक्षेप में उल्लेखनीय जानकारी मिलती है। रचयिता की भक्ति भाव तो सर्वत्र व्याप्त है ही।

३६ कोल्हजी चारण (विक्रम १६ वीं शताब्दी)

कोल्हजी और उनके कवित्तों की जानकारी का एकमात्र स्रोत साहबरामजी जम्भसार (प्रति संख्या १९३) है। इसके १४ वें प्रकरण में "कोल चारण री कथा" अन्तर्गत "जाम्भोळाव" पर जाम्भोजी की स्तुति–रूप कहे गए इनके और अल्लूजी के कवित्त भी उद्धृत किये गए हैं (पत्र ५०–५३ पर)। इनमें ६ में कोल्हजी की छाप है किन्तु अल्लूजी के हैं[2] और अन्यत्र उनके नाम से ही मिलते हैं[3]। "वयणसगाई"–नियम

१–जंभ गुरु जगदीश ईस नारायण स्वामी।
निरपेक्ष निरल्प सकल घट अन्तरजामी।
पट पूठ नह ताहि, सकल कू सनमुख दरस।
पाप ताप तन जर जाहि पद पंकज परस।
अख अडोळ अनादि अज अवगत अलख अभेव।
स्वसरूपी आप है जंभ गुरु जग देव ॥ १ ॥
जंभ गुरु जग देव भेव कोई विरळा पाव।
रहै सरण जो जीव बहुर भव जळ नही आव।
विष्णु रूप अवतार परगट पोहमी में आए।
सतजुग विछरे जीव उनकू आन मिलाए।
विष्णु धर्म परगट कियौ आन धर्म विटप विहंडन।
समरथळ परगट सही जोत रूप जग मंडन ॥ २ ॥
स्व गुरु पहरी आप जीव हित हृद विचारयौ।
रहत पचीकृत देह परगट वपु पोहमी धारयौ।
जीव अधम बहु कुटल अन्च सत मार(ग) आन।
विष्णु धर्म द्रिढ कियौ विष्णु कू सबही मान।
प्रहलाद वचन सत करन कू पोहमी आप पधारिया।
जंभ गुरु जगदीश है जीव अधम बहु तारिया ॥ ३ ॥—प्रति संख्या २७३ में
२–(क) गोप नार चित हरण, प्रेम लच्छण समपण। (१३८)।
(ख) अघ चारि ऊपिज, निगम साखी अघ नास। (१४०)।
(ग) कहां मको कहां सेस, सूर मिसियर कहा सकर। (१४७)।
३–प्रति संख्या २०१ में, छन्द संख्या क्रमश ५, ७, ६।

ध्यान में रखते हुए इनमें से एक और कवित्त भी अल्लूजी का होना चाहिए[1]। इस प्रकार, निम्नलिखित दो कवित्त ही कोल्हजी के बचते हैं। जब तक अन्यथा प्रमाण न मिले, साहबरामजी के साक्ष्य पर इनको कोल्हजी की रचना मानना समीचीन है—

१-तु मे सुरा सुख दियण, तु मे असुरां सघारण।
तु मे जगतपति जगदीस, तु मे सिघ साध सुधारण।
तु मे जग जीवा जीव, तु मे केवळ अरु धर्मों।
तु मे त्रिगुणपति आप तु मे तत अत्र जार्मों।
सकळ सिरजत साइया, करतार आप आया कळे।
वीनति कोल वळ वळ विष्ण, सारगधर सभरायळे ॥ १३७ ॥

२-रजपूता नू विडद, राव कहा महाराजा।
महाराजा नू विडद, पातस्या कहा सवाजा।
पातसाह नू विडद, खुदाय दूसरो जु होई।
खुदाय सिर साराह, खुदाय सिरज्या सह कोई।
खुदाय खालक अलाह अलेख, नारायण मींड बीजो नहीं।
वीनती कोल वळ वळ विष्ण, ताहरा विडद ओप तहीं ॥१४५॥

इनका विषय और भाषा-शैली वही है जो अल्लूजी के कवित्तों की है। इनसे इनका जाम्भोजी का शिष्य और हरिभक्त होना स्पष्ट है। सम्प्रदाय में परम्परा से भी यही बात प्रसिद्ध है। साहबरामजी के अनुसार ये अल्लूजी के कुल के (अर्थात् कविया शाखा के) फलोदी के निवासी थे। सिर और आँखों में पीडा से अत्यन्त दुखी होकर इन्होंने अनेक उपाय किये जो व्यर्थ रहे। अन्त में अन्धे हो गए। अल्लूजी के कहने पर उनके साथ ये जाम्भोजी की शरण में जाम्भोळाव पर आए। उनकी आज्ञा से इन्होंने सरोवर में स्नान किया जिससे नेत्रों में ज्योति आगई। तब दोनों ने जाम्भोजी की स्तुति की। श्रीरामदासजी ने भी लिखा है कि जाम्भोजी महाराज की कृपा से अल्लूजी की भांति कान्हा, तेजा और कोल्ह चारण की मनोभावनाएँ भी पूर्ण हुई थीं[2]।

अन्यत्र हरिभक्त चारणों में तो इनकी गिनती होती रही किन्तु जाम्भोजी के शिष्य वाली बात भुला दी गई। नाभादास[3] और राघोदास[4] ने १४ चारण भक्तों में इनका

१-उदियागर उगियो इदु राका अविरचा।
रग कुरग विरहणी, पाव बाधी अरचा।
कोल सेम भूतेम, व ण सुर वचन चवीज।
विद्यावत गुणवत कह्यो तुम तुम्हा कहीज।
निवाह करत ज नारियण, असरण सरण विडद सू।
कीत कर जोड्या ओचर सहस कला गुर जभ सू ॥१३२॥

२-श्री १०८ श्री जाम्भोजी महाराज का जीवन चरित्र, महात्मा सुरजनदासजी रचित, पृष्ठ ३२-३३।

३-भक्तमाल पृष्ठ ८०१, रूपकला, नवल किशोर प्रेस लखनऊ, सन १९३७, तृतीय संस्करण।

४-भक्तमाल, पृष्ठ २०८, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, सन् १९६५।

नामोल्लेख किया है। इनकी भक्तमालों के टीकाकारों ने तो एक कदम और आगे बढ़कर चोहजी को मल्लूजी का बड़ा भाई बताया है, पर यह सगत नहीं है (द्रष्टव्य मल्लूजी कविया)। इससे साहबरामजी के कथन की पुष्टि का सकेत अवश्य मिलता है कि ये कविया शाखा के थे।

सोलहवी शताब्दी के चार प्रमुख जाम्भाणी सिद्ध चारण कवियो म ये एक हैं, किन्तु उल्लिखित कवित्तो के अतिरिक्त इनके और छन्द प्राप्त नहीं हैं। खोज करने पर और भी रचनाएँ मिलने की सम्भावना है।

३७ ऊदोजी नैण (अनुमानत विक्रम सवत १५०५–१५९३/९४)

ये गोठ–मागलोद के नण और हुजूरी विष्णोई सिद्ध कवि थे। सम्प्रदाय म आने से पूर्व ये यहा के दधिमति माता के मन्दिर के भोपे थे। इनके सम्प्रदाय-प्रविष्ट की कहानी बड़ी रोचक है। एक बार सिवहारा से सेठ बुलचन्द वहा के अन्य यात्रियो के साथ सम्भरायळ पर जाम्भोजी के दर्शनार्थ आ रहे थे। मार्ग म उनका पडाव गोठ के निकट देवी-मदिर के पास पडा। ऊदोजी ने देवी के "जातरी" समझकर उनका खूब आदर-सत्कार किया, बहुत देर तक देवी की आरती-पूजा की और उसका महिमा-गान किया किंतु किसी भी यात्री ने इस ओर रुचि नही दिखाई। तब इन्होने आश्चर्यित हो उनसे देवी के प्रति श्रद्धा–भक्ति न दिखाने का कारण और उनके गन्तव्य-स्थान के विषय मे पूछा। उन्होंने इनको सविस्तर जाम्भोजी और उनकी विचारधारा से अवगत कराया, और कहा कि हम तो मोक्ष-प्राप्ति के मार्ग-दर्शन हेतु जाम्भोजी के पास जा रहे हैं। तुम्हारी देवी मोक्ष–लाभ नही करवा सकती, सासारिक कष्टों का निवारण या वैभव, सम्पदा भले ही प्रदान कर दे। साहबरामजी के अनुसार (प्रति सख्या १९३, जम्भसार, प्रकरण ७) ऊदोजी ने इस बात की पुष्टि देवी-पूजा करके की। सबद वाणी के 'प्रसग' के अनुसार स्वय देवी ने ऊदोजी के "घट" मे आकर उन विष्णोइयो से कहा कि स्वर्ग देना मेरे वस की बात नही है (द्रष्टव्य-जाम्भोजी का जीवन-वृत्त)। ऊदोजी के लिए यह बात सर्वथा नवीन थी। रात्रि भर यात्रियो ने साखियाँ गाईं जिनको उन्होंने सुना। इससे उनके मनोभावो म परिवर्तन होने लगा। प्रातःकाल ये भी जाम्भोजी के दर्शन और मुक्तिज्ञान-श्रवणार्थ उनके साथ चल पडे। वहा जाम्भोजी के सम्मुख ये हाथ जोड़कर दूर खडे हो गए, बोले कुछ नही। तब जाम्भोजी ने कहा–तुमने माता के तो बहुत गीत गाए हैं, कुछ पिता भी के सुनाओ[1]। इन्होंने अपनी अज्ञता और विवशता प्रकट की तो जाम्भोजी ने "विष्णु विष्णू तू भणि रे प्राणी जो मन मान रे भाई" (सबद सख्या–९९) सबद कहा और इनको आशीर्वाद दिया। इससे इनको ज्ञानानुभव हुआ और जाम्भोजी के गुणगान

१–निकट आयो ठाढो भयो, कहे जम कछु गाय।
माता का तो मैं कहू पिताहि क हू सुनाय॥
ऊदो कुछ जानें नहा भयो जोग उपहास।
मुख पर परसे हाथ प्रभु, मनमव भई हुलास॥ प्रति सख्या १९३, जम्भसार, प्रकरण-७।

स्वरूप एक साखी कही[1] तथा सम्प्रदाय मे दीक्षित हो गए[2] । यह घटना सवत १५४५–५० के आसपास की है (देखें-कुलचन्दराय अग्रवाल, कवि सख्या ४१) । प्रसिद्ध है कि इस समय इनकी आयु ४०/४२ साल की थी । इस प्रकार इनका जन्म सवत १५०५ के आसपास ठहरता है । सुरजनजी[3] और केसोजी[4] के कथनो से भी प्रकारान्तर से उपयुक्त विवरण की पुष्टि होती है ।

ऊदोजी उत्कृष्ट कवि, अनुभवज्ञानी सिद्ध, और सम्प्रदाय के मान्य आचार्य थे । "३५ पुरुष" मे इनका नाम २८ वा है । "हिंडोळणो" और "भक्तमाल" मे इनका नामोल्लेख है । सम्प्रदाय मे इनका महत्त्व इसके अतिरिक्त दो और कारणो से भी है । वे हैं-(१) २९-धर्मनियमो सम्बन्धी कवित्तो तथा (२) आरतिया का निर्माण । हजूरी कवियो मे तेजोजी चारण और ऊदोजी नण, जाम्भाणी विचारधारा तथा विष्णोई सम्प्रदाय के प्रमुख एव प्रामाणिक वक्ता और व्याख्याता माने जाते थे । तेजोजी के देहान्त (विक्रत् सवत् १५७५) के पश्चात इस रूप मे सर्वाधिक मान्यता ऊदोजी की ही रही । भ्रमण-काल में ये प्राय जाम्भोजी के साथ ही रहते थे । लगभग सवत १५८४–८५ मे जाम्भोजी ने विष्णोई सम्प्रदाय के लिए सामान्य रूप से सर्वमान्य और सबके पालनार्थ धर्मनियमो की व्यवस्था और उनके सहितावद्ध करने का विचार किया । इस हेतु ऊदोजी ने पाच कवित्तो मे अनेक धर्म–नियमो का उल्लेख किया । इनमे उन्होंने जन साधारण के लिए जाम्भोजी द्वारा प्रतिपादित प्रमुख मान्य नियमो को अपने ढग से समाविष्ट करने का प्रयास किया था । अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होने से ये कवित्त नीचे दिए जाते हैं* —

प्रथम प्रभाते उठ[5] जळ छाण 'र लीजै ।
सजम सुच सिनान,[6] सुध हुय नाव जपीज ।

१-इसका प्रथम छन्द यह है —
श्री गुर आयो झाभराज देव, निज हक साच पिछाणियो ।
जा साधा न दिवली पार, मुखि बोल्या इमरत वाणियो ।
इमरत वाणी गुरमुख्यी बोल, सुरग सुध लीलापती ।
देवा को गुर विसन झाभो, जनिया गुर पूरो जती ।
पार गिराए दिव वासो, जै हक साच पिछाणियो ।
मान्यप रूपी विसन आयौ, मुखि बोल्या इमरत वाणियो ॥ १ ॥-प्रति सख्या २०१ से ।
२-क-स्वामी ब्रह्मानन्दजी श्री जम्भदेव चरित्र भानु, पृष्ठ ६१–६६ ।
ख-जम्भेश्वर कर धी तेहि दएऊ । नण जात विस्नोई भएऊ ॥
-प्रति सख्या १९३, जम्भसार प्रकरण-७ ।
३-कुल्चन्द दीन जागत काया, उतरे गग गुर भेंट आया ।
तठइरे गोग साप्यात नाए, नग सह उजळा ऊद नाए ॥ १५१ ॥-कथा परसिध ।
४-ऊन्हो भगत कियो अपरपर, जो जपनो महमाई ॥ ४ ॥-साखी, प्रति सख्या २०१ ।
* द्रष्टव्य-प्रति सख्या १५९ २३०, २८२ तथा ३१० । इनमे प्रति सख्या २३० मे ५, १५९ २८२ मे पहले ३ तथा ३१० मे अन्तिम २ कवित्त मिलते हैं । आगे प्रतियों की सख्या सहित इनके रूपान्तर और पाठान्तर दिए जा रहे हैं ।
५-२८२ म— उठ' के पश्चात 'ज' अतिरिक्त ।
६-२३०—'ध्यान' ।

होम करै पह सवेर, दुबध[1] राख दूर, गमाय ।
करै रसोई हाथ और को घणो न खिवाय[2] ।
अमल तमाखू भांग, मद मांस न टार[3] लगा ।
विस्न भगत[4] ज्यो करै, एह धरम विस्नोइयां[5] तणां ॥ १ ॥
तिरिया रतवती[6] छोत, घणो नहीं[7] लगाय ।
बाहर रहै दिन पांच, सनम हुय भिगर[8] आय ।
बाळ जाम एक मास,[9] सूवो 'र सूतक टळ[10] ।
होम जाप कळस पाळ, गळू[11] वे विस्नोई[12] कर[13] ।
सूतक[14] पातक मोह टळ, ओर[15] आचार बोह घणा ।
विस्न भगत ज्यो करै, एह[16] धरम विस्नोइयां तणा ॥ २ ॥[17]
कर दया प्रतिपाळ[18] गनका रतन रखाय[19] ।
बकरा पाळ बाट कर,[20] तणी नहीं गणाय ।
जीव मारतो देख जाय कर[21] आण छिराय ।
आण लोप जे मार है अपणो[22] सीस दिराय[23] ।

१–१५९—'दुवद', २३०—'दुयपा ।
२–२३०—'लाव' ।
३–२३०—'त्याग' ।
४–१५६, २८२—'भक्त' ।
५–१५६— विसनोइयां' ।
६–१५६—'रतवती', २३०—'रितुवती' ।
७–२३०—'सुनाय' ।
८–२३०—'मावे' ।
९–२३०—पक्ष दोय ।
१०–२,०—'टरहै' ।
११–२३०—'पाहळ' ।
१२–१५६—विसनोई ।
१३–२३०—'कर है' ।
१४–२३०—'सूतक पातक' के स्थान पर—'सूवो सूतक' ।
१५–१५६,२३०—ओर ।
१६–२३०—यह ।
१७–२३०—मे यह तीसरा छन्द है ।
१८–२३०—प्रतपाळ ।
१९–२३०—रहावे ।
२०–२८२—मे त्रुटित, २३०—मे इसके पश्चात—'सु' अतिरिक्त ।
२१–२३०–कर ।
२२–१५९—आपणा ।
२३–२३०—मे इस पूरी पंक्ति के स्थान पर—'अपणो ज्यू लो बसाय ज्यू ही त्यू जीव छुड़ावे' ।

आप मरता मरण न वेह, हर हेतारत[1] खडं सही ।
एह धरम विष्णोइयां[2] तणा, विष्ण भगत उधो कही ॥ ३ ॥[3]
जीव अनत जळ मांय[4], पार गिणती नहीं पावै ।
अणछांणो जळ पियो, पाप पोट सिर आवै ।
काठं पट[5] सू छांण, जळ पीवण कू लीज ।
जीवाणी जळ मांय, जांण जुगत सू कीज ।
दया धरम को मूळ[6] है, उधव दया जु पाळिय ।
सत सबद सतगुर कयो, हसा टळ ज्यूं टाळियै ॥ ४ ॥[7]
करणं रसोई काज, देख कर ईंधण लीजै ।
कीडी मकोडी जीव, झाड जुगत सूं दीजै ।
होय रसोई त्यार विष्ण[8] क भोग लगाव ।
बाटे हरि कं हेत, पीछै आप हो पावै ।
दया सहत[9] भगती करै, साच सतगर यू कही ।
उधव वै जन ऊपर, भवसागर भरमै[10] नहीं ॥ ५ ॥[11]

प्रसिद्ध है कि इस पर जाम्भोजी ने केवल २९ धमनियम बता कर ऊदोजी को अत्यन्त सक्षेप म उनका नामोल्लेख मात्र करने का आदेश दिया । उपयु क्त पांच कवित्तों को इस रूप मे स्वीकार न करने के कई कारण थे –

(१) इनम नियमों को निश्चित सख्या का उल्लेख नही था ।

(२) जाम्भोजी के आदेश–निर्देश का कही भी नामोल्लेख न होने से इनमे वरिणत नियमो की सवमान्यता के विषय म सन्देह की गु जाइश थी ।

(३) जिम ढग से ये प्रतिपादित किए गए थे, उनम आगे चल कर घटवढ भी सम्भव थी ।

(४) सामान्य विष्णोई जन के लिए इनको याद रखन का सुभीता कम ही था, आदि ।

फलस्वरूप ऊदोजी ने जाम्भोजी द्वारा निर्देशित नियमो को उनकी निश्चित सख्या २९ और तदहेतु जाम्भोजी के आदेश का उल्लेख करते हुए पुन दो 'ड्योढे'[12] छप्पयो मे

१–१५६—हेयारत, २३०—हितारथ ।
२–१५६—विसनोईयां ।
३–२३०—मे यह दूसरा छन्द है ।
४–३१०—माहै ।
५–३१०—कपड ।
६–३१० मे—'ळ' त्रुटित ।
७–२३०—मे इसकी अन्तिम दो पक्तियाँ, पाँचवें छन्द की अन्तिम पक्तियाँ हैं ।
८–३१०—विसन ।
९–३१०—सेहेत ।
१०–३१०— को भय' ।
११–२३० मे इसकी अन्तिम दो पक्तियाँ, चौथे छन्द की अन्तिम पक्तियाँ हैं ।
१२–ऐसे छप्पयों के उल्लेख भिन्न नामों से किंचित् लक्षण परिवर्तन के साथ छन्द शास्त्रीय ग्रन्थों में मिलते हैं । द्रष्टव्य–

(शेषांश आगे देखें)

(२) एक पद्य "कलश की" साखी में जाम्भोजी की महिमा-गायन के पश्चात् कवि द्वारा कहा गया है —

सतगुर मिले देवळ मिले, घोव काठ पखाणी ॥ ९ ॥
तीरथि न्हावण तिह सनाण, जोय जोर नीर पिवाणी ॥ १० ॥
गुरगाहुर की सार न जाणी, भूला मुवे दवाणी ॥ ११ ॥–प्रति संख्या २०१ से।

तुलना के लिये "छप्पयों" का १४ वां छन्द देखा जा सकता है, जिसमें को? कवि में इसी भाव की पुनरावृत्ति हुई है —

जे पाहण थे देव तो तिस परवत जाय पोजो।
बूडै माया जाळ भ्रम कांय भूला लोरो।
पोखो काठ पखाणि हराणि पटिया बजायो।
सूके उपरि पाती धरो, हद्यो कांय लोडि गुमायो।
कसरि थदग घोरतां, सीवां वहता हाथि।
पाहण पाहण रळि गया माया जम के हाथि ॥–प्रति संख्या २०१ से।

(३) अब यमनियमों सम्बन्धी पांच कवित्तों को लें।

(क) चौथे के "दया धरम को मूळ है" की पुनरावृत्ति ५६ 'छप्पया" में से तीन में हुई है (संख्या २३, २५ तथा ५०) जिनमें दो की सम्बन्धित पंक्तियाँ ये हैं —

१–दया धरम को मूळ, धरम जे पाप ही किये।
हिरद को सुध होव, और को बुरो न चिंदो ॥ २३ ॥–प्रति संख्या ४६ से

२–असनेही बंध न गिणि ,न गिणि नारि गुण हीणी।
न गिणि विपर विणि वेद, न गिणि कायरि घरि धीणि।
न गिणी दया विणि धरम, न गिणि इंद विणि वाजा।
न गिणि तुरी विणि तेज, न गिणि मंत्री विणि राजा ॥ २५ ॥
–प्रति २०१ से।

(ख) इन पाँचों के प्रथम तीन में "विष्ण भगत ऊदो कहै' का भोग लगता है "छप्पयों' के ११ छंदों में भी है (संख्या १, ४, ४, २६, २७, ३१, ३५, ३६, ५४ और ५६), जिसके उदाहरण स्वरूप केवल एक–चौथा छंद पर्याप्त है —

विसन सु तूठो पार, विसन वकुण्ठ वसाव ॥
विसन को जपतां नाव, निगुण नर हासो आव।
रहस्या जागर जांहि, जित को भूत खिलाव।
रहसि विणास जीव, लोभ करि हत्या कमाव।
दुयह अनेक अनेक दान, गळ काट सुकरत गुंव।
विसन भगत ऊदो कहै, अनत जूणि भूला भुंव ॥ ४ ॥–प्रति संख्या २०१ से।

इसकी ' रहस्या जागर जाहि" की पुनरावत्ति ऊपर उद्धृत प्रथम साखी की

पक्ति म भी है। इनम वर्णित कतिपय धमनियमा की पुनरावृत्ति कवि ने "भ्रम चितावणी" मे, युवावस्थावर्णन प्रसग मे भी की है[१]।

(ग) इन पांच कवित्ता की पक्तियो की पुनरावत्ति भी दो "ड्योढे" छप्पयो मे हुई है। इनमे से प्रथम कवित्त की "कर रसोई हाय और को पलो न छिबावै" तथा "अमल तमाखू भाग मद" पक्तिया इसी रूप म दूसरे "ड्योढे" छप्पय मे देखी जा सकती हैं।

(घ) अत मे, दो 'ड्योढे" छप्पयो के परस्पर मिलान करन पर भी यही बात पाई जाती है। प्रथम छद की "वास वकु ठा पावो" अर्द्धाली दूसरे छप्पय म भी है, इसके पाठातर म भी वही भाव है। "वास वैकु ठा" का उल्लेख परिशिष्ट मे उद्ध त आरती मे भी है।

इस प्रकार, सम्प्रदाय मे 'परम्परागत मायता और प्रसिद्धि के अतिरिक्त, ऊदोजी की रचनाओ के अत साक्ष्य से भी यह निर्विवाद रूप से सिद्ध होता है कि धम-नियमा सम्बधी सातो छद इही की रचना है।

इस अत साक्ष्य और तम्वाकू सम्बधी इतनी चर्चा करने का उद्देश्य, अधुना प्रचलित दो 'डयोढे' छप्पयो और उनमें सहितावद्ध २९ धमनियमों की प्रामाणिकता को सिद्ध करने के लिए ही की गई है।

साहबरामजी ने लिखा है कि चित्तौड की झाली राणी ने सम्भराथळ से जाम्भोळाव जोत हुए बीच मे खीदासर मे ऊदोजी के दशन किए थे —

सतन से अज्ञा लई, झाली कियो पयाण।

झींझाळ की सायरी, डेरा कीहा आण।

तहा ते चल खींदासर आयेऊ। ऊदोजी के दशन भयऊ।—जम्भसार, प्रकरण १७वा।

इसके निष्कष स्वरूप इतना ही कहा जा सकता है कि कवि की बहुत प्रतिष्ठा और व्यापक मायता थी। सम्प्रदाय म आने से पूव ये गहस्थ थे। वतमान मे तिलवासणा, नणास और केलणसर इनके वशजो के स्थान हैं। ऊदोजी का स्वर्गवास सवत १५९३–९४ मे आसोजाई गाव म हुआ था[२]। प्रसिद्ध है कि जब राव जतसीजी सवत १५९६–९७ मे मुकाम-

१–कुळ को धम सब छाड्यो माया मद म वाह्यो।
चद्यू रिद की फूगी क, दिल की दया सब ऊठी क॥ ३०॥
काट वनी वहु फिरतो, हम्या जीव की करतो।
तमाकू भाग वहु पीव, कुमली कुमल सू जीव॥ ३१॥
अमपळ मुप सू भाप, वर हरि सत सू राप।
निंदा साध की ठान, हरि को भेप नही मान॥ ३२॥
पाणी छाण नही पीव, अन तो स्वान ज्यू जीव।
हरि क हत न कर है ओदर पसू ज्यू भर है॥ ३३॥
दिल मैं साम सेती दूज निस दिन रह्यो आन ही पूज।
गुर को वचन नहा मान, फिर फिर करम छान॥ ३४॥—प्रति सख्या २३९ से।

२–ऊदो आसोजाई रहेऊ। तीन हजार पडे सग गएऊ॥—प्रति सख्या–१९३, जम्भसार, २२ वा प्रकरण, पत्र–१४ वा।

मन्दिर पर गये थे (द्रष्टव्य-कवि संख्या ५१), तब वे समसामयिक नहीं थे। यह उनके आयु की ऊपरी सीमा है। इन्होंने एक छन्द में दोनों भाटीयों के प्रथम युद्ध में इब्राहिम लोदी की तथा दूसरे में नारनौल के युद्ध में बीकानेर के राव लूणकरण, उनके कुंवर प्रतापसी, और मन्त्री ममनन्द[2] की मृत्यु का उल्लेख किया है। दोनों घटनाएँ संवत् १५८३ की हैं[3]। अपने राग "रामगिरी" में ऐसे एक साखी में "कमो बाहलग" के स्वर्गवास का उल्लेख है[4]। ये सांगलोत थे और ऊदोजी की भांति पहले मूर्ति-पूजक थे, परन्तु जाम्भोजी से साक्षात्कार कर सम्प्रदाय में दीक्षित हो गए थे। अलोजी का नाम "रूर" के २४ कवियों में ८वां है। सुरजनजी ने जाम्भोजी के साथ 'जमात' में इनका प्रेमपूर्वक हरि गान करने का उल्लेख किया है[5]। अन्यत्र भी इनकी स्तुति करते हुए सुरजनजी ने इन्हें "मोम दिल" अर्थात् कोमल हृदय वाला बताया है —"कोरति असो मोम दिल काह का सुरिजन उपदेश कयो(-गीत)। इन्होंने जाम्भोजी के वैकुंठवास के बाद संवत् १५९३ में स्वेच्छा से शरीर-त्याग किया था। परमानन्दजी बणियाल ने 'निकल कियो कान्हो री जिगति' पोथी संख्या पर इसका नामोल्लेख किया है। इस प्रकार संवत् १५९३ तक इनका जीवित रहना सिद्ध है। इसी साल या इसके एक साल पश्चात् संवत् १५९३-९४ में इन्होंने स्वर्गलाभ किया होगा। कहा जाता है कि मृत्यु से कुछ पूर्व "कमो को" एक साखी में उन्होंने अपने भावोद्गार प्रकट किए थे[6]। साखी का मर्मभेदी वर्ण्य-विषय इस बात की साक्षी भी देता है।

१–तबू लाल सरायचा लेला बचण थोडि।
एक पळक मां दे गयो, तिहु सिर बारे जोडि।
जे भुगत्या गढ पडिगनां, ते चाल्या मुह मोडि।
भागो ब्राहम पातिसाह, सगते लागी पोडि।
अलप जिणांय सो जए, न धाजो ग्रौरा कही।
जाह के दळ बळ एतळा उदा, ब्राहम सोध्यो ही लाधो नहीं ॥ १ ॥–प्रति २०१ से।

२–कितरा सू मिंदर माळिया, सुष वासए सेभ पिल्गा।
कितरा गीवर गू जता, साहए तुरी तुरगा।
कितरा सू चावर चोरासिया, दळ बळ व दीवांणां।
कितरा सू मु हतो न मसी, जित घुरतां व नीसाणां।
अतरा मूवा नारनौळ जग साभलियो चावो।
कितरा सू कवर प्रतापसी, लू एकरण कित रावो ? ॥ १५ ॥–प्रति २०१ से।

३–क–मजूमदार, रायचौधरी और दत्त एन एडवान्स्ड हिस्ट्री आफ इंडिया, पृष्ठ ४२७।
ख–दयालदास की ख्यात, भाग २, पृष्ठ ३६, बीकानेर, संवत् २००५।

४–पायळ पहर के सुचियारा, दोजकि ज पापी हतियारा।
पायल सोहै अलोजी के पाए, ज्यों ठमकतो सुरग सिधाए ॥ २ ॥ ६२ ॥–प्रति २०१।

५–अरज करि निकट रिणधीर आव, गाढ करि अली हरि अद गाव।
आप गुर साट जमाति आग, जोति भंति लिय सबद जाग ॥ १३७ ॥–यथा परसिध।

६–हमै परदेसिया हो जी ओ देसडो बीडाणो ॥ १ ॥
साथी म्हारा चालिया, हम रह्यो पछताणो ॥ २ ॥
कह का मात पित कहरा र भाइया, कह का पप परवारा ॥ ३ ॥
कह की मडप मडिया, कह का घर बारा ॥ ४ ॥ (शेषांश आगे देखें)

रचनाएँ —ऊदोजी की निम्नलिखित रचनाएँ उपलब्ध हैं —

(१) साखी, सख्या–१५ । (२) हरजस, आरती (८+४)–१२ ।

(३) फुटकर कवित्त (छप्पय)–६५ । (४) ग्रभ चितावणी, छद सख्या–१४२ ।

आगे इनका परिचय दिया जा रहा है ।

(१) साखी —साखियां निम्नलिखित है ।

१–जमल जुळि क जाइय, जे दिळ जमलो होय[1] ।–पक्ति २६, कणा की, राग सुहब ।

२–गुर क कथनि जुल्या मेरा बाबा जाहू का हरिया भाग[2] ।
–४ छद, छदा की, राग धनासी ।

३–गुर पूरो दातार म्हे छा थारा मगता[3] ।–५ छद, छदा की, राग धनासी ।

४–मैं तू म्हारा साम्य स पीहर सोवरियो[4] ।–४ छद, छदा की, राग धनासी ।

५–ओ गुर आयो आभराज देव निज हक साच पिछाणियो[5] ।
–५ छद, छदा की, राग धनासी ।

६–वाज वाज रे मदळिया सरळ साद न सामीजी रो सबद सुहावणों[6] ।
–४ छद, छदा की, राग धनासी ।

७–काया तो मोमिणों रतन सरीखी, पहरलो मोमिण कोई[7] ।
–५ छद, छदा की, राग धनासी ।

माया जग की मोहणी, भूला जद ससारा ॥ ५ ॥
माई की मडप मडिया, अलप तणा घर वारा ॥ ६ ॥
म्हेतो छाडि र चालिस्या, अई देह घर वारा ॥ ७ ॥
म्हेतो वौहडि न आविस्या, इह पोट समारा ॥ ८ ॥
जग मा मदफळी घणी, न जपं करतारा ॥ ६ ॥
अ ति कालि पछतावित्य, करता गरब गिवारा ॥ १० ॥
आग आग जीवडा, पाछ जमदारा ॥ ११ ॥
आग तिलकणी पडिया, साई का पथ करारा ॥ १२ ॥
माई लेपो मागिसी, जीवडो डराणो ॥ १३ ॥
ल्पो दीणों सोहरो जे क्यो करण कुमाणो ॥ १४ ॥
आपे काजी होयसी, आपे मुलाणो ॥ १५ ॥
आपे आपे वाचिसी कतेव कुराणो ।
आडो भु य जळ मारिया, करे पार को पयाणों ॥ १७ ॥
तेतीमा सू मेळिय, चूक आवाजाणों ॥ १८ ॥
ऊदो बोल बीनती, नफर भामाणों ॥ १९ ॥–प्रति सख्या २०१ से ।

[2]–प्रति सख्या ७६, ६४, १४२, १४३, १५२, १६१, २०१ ।

[3]–प्रति सख्या ६८, ७६ ९४, १४१, १४२, १४३, १५२, १६१, २०१, २१५, २३२ ।

[4]–प्रति सख्या ६८, १४३, १५२, २०१, २१५ ।

[5]–प्रति सख्या ६८, ७६, ६३, ६४, १४१, १४२, १४३, १५२, १६१, २०१, २१५ ।

[6]–प्रति सख्या ६८, ७६, ६३, ९४, १४१, १४२, १४३, १५२, १९१, २०१, २१५ ।

[7]–प्रति सख्या ६८, ७६, ६४, १४१, १४२, १४३, १५२, १६१, २०१, २१३, २१५ ।

[8]–प्रति सख्या ६८, ७६, ९३, ९४, १४१, १४२, १५२, २०१, २१५, ३२१ ।

८-विनि जागो विनि जागो ओ गुर प्रगट आयो[१] । -कवित्त १७, सगा भी ।
९-हम परदेसिया हो जो, ओ देसड़ो पोहणो[२] । -कवित्त १९, सगा भी ।
१०-आज विचारे जो भाई मोमिणो, हम घरि पोरण आए[३] ।-कवित्त १०, सगा भी ।
११-एक मिलती थोव मिलो बो रगोज[४] ।-कवित्त २६ सगा भी ।
१२-अहरण धाज ह्योड धातो, पांणी सू तालिक राता सिर धड[५] ।

-कवित्त १६, सगा भी ।

१३-जागो रे मोमिणों न सुयो नींद न करो विचार[६] । ९ छन्द, राग रामगिरी ।
१४-पाथळ घड़ि दे सुघड सुतारा, भांजण घड़ण सु धारण हारा[७] ।

-६ छन्द, राग रामगिरी ।

१५-नारायण नांम अनत अनत अवतार ज्यू धाइद[८] ।-४ छन्द, छन्द भी ।

साखियों में हरि और जम्भ-महिमा, तैंतीस कोटि जीवों के उद्धार-सम्बन्धी शास्त्र दायित्व मान्यता आत्म-नियन्त्रण, धनावली संसार की नश्वरता, जीव-हिंसा की असारता, विष्णु नाम जप, आदि-आदि विषयों का अनेक प्रकार से भाव-भरा वर्णन मिलता है।

(१)-हरजस —

१-"सोहळो"-साहिब सिरजणहार जिण उपाई मेदु णी[९] ।-१२ छन्द, राग सभावची ।
२-"कूकडो"-बोलि विसनजी रा जितवा बोलियो भलो सुरबांणि । बोलत रो सबद सुहावणो । चांचडली केसरि रो रग, चांदणि थारो गात धवाळियो[१०] ।

-७ छन्द, राग रामगिरी ।

३-"जखडो"-सुख को दाता सांम्य कांय विसारिय ।
तरी भगति विनां भगवत जळम ज हारिय[११] ।

-१० छन्द, कुडलिया, राग गवडी ।

४-गिरधर गाइय जी पाइय सुरां सगति पार[१२] । ६ छन्द, राग गवडी ।
५-रे मन जगत सुपनो जाण[१३] । -१२ छन्द, राग केदारो ।

१-प्रति सख्या ६८, ७६, ९३, ९४, १४१, १४२ १५२ २०१, २१५, ३२१ ।
२-प्रति सख्या ६८, १५२, २०१, २६३ ।
३-प्रति सख्या १५२, २०१ ।
४-प्रति सख्या ७६ ९४, १४२ १९१, २०१, २६३ ।
५-प्रति सख्या १४१, २०१, २६३ ।
६-प्रति सख्या २ मे इसको हरजस बताया गया है, ९४, १४१, १४२, १९१, २०१, २६३।
७-प्रति सख्या २०१ और २६३ ।
८-प्रति सख्या १९१ फोलियो ४६ ।
९-प्रति सख्या ४८ २०१, २२७ ।
१०-प्रति सख्या ४८ (राग रामकली), २०१, २२७ ।
११-प्रति सख्या २०१ के आदि म, छन्द-१, ९ तथा १० लिपि अस्पष्ट होने से अपाठ्य और किंचित त्रुटित हैं ।
१२-प्रति सख्या ४८, २२७ ।
१३-प्रति सख्या ४८, २२७ ।

६–घर आवोजी मिठ बोला प्यारी तमारी वातिया[1] । –५ पक्तियाँ, राग काफी ।
७–घर आवो जी सजन सांवरा मन लागो जोर सुहांवणा[2] । –६ पक्तियाँ, राग काफी ।
८–'घूमर -सतगुर दरसण म्हे जारयां[3] ।

हरजसा म विविध प्रकार से चेतावनी और स्वानुभूति की अभिव्यक्ति करते हुए हरि प्रेम और मिलनोत्कंठा, ससार की असारता, सुकृत, कल्कि-अवतार आदि का हृदयग्राही वर्णन किया गया है।

(२) आरती[4] —

१–आरती कीज गुर जभ जती की, भगत उधारण प्राणपति की।
२–आरती कीज गुर जभ तुम्हारी, चरण सरण मुहि राख मुरारी।
३–आरती कीज श्री जभगुर देवा, पार न पाव गुर अगम अभेवा।
४–आरती कीज श्री महाविष्णु देवा, सुरनर मुनिजन कर सब सेवा।

इनम श्रद्धा-भक्ति पूर्वक जाम्भोजी की स्तुति की गई है। आरतियो म सर्वाधिक प्रसिद्धि इनकी ही है।

(३) फुटकर कवित्त[5] (–छप्पय), सख्या–६५ तथा २ दोहे।

कवित्तो म कवि ने अनेक भाव व्यक्त किये हैं। ये सक्षेप म निम्नलिखित विषयो पर हैं –

(क) विष्णु विष्णु–जप, विष्णु ही सर्वोत्तम शक्ति है। अन्त म वही काम आयगा, उसका जप मुक्ति का कारण है। जप ही सत्य है। स्वय कवि की गवाही है कि जप से सासारिक वैभव और मोक्ष की प्राप्ति[6] होती है। अत जो जप नही करते व अनन्त इतर योनियो म भटकते रहते[7] और मनुष्य योनि मे भी भारी दुख पाते हैं[8] । एक लघु कथा

१–प्रति सख्या १९६, पत्र–११ ।
२–वही ।
३–प्रति सख्या १५८, २७४ ।
४–प्रति सख्या ६७, १०६, १६५ १६७ १८८, १८९, २२८, २५२, ३६९ ।
५–प्रति सख्या १४, ४६ ६६(ठ) २०१ (फोलियो १२६–१३४, १८०, ५४१–४३ और ५५२), २१२, २३०, २३६, ३११ ।
६–म्हे जप ता इधक सतोष, दुरति दाळद दुष नास ।
मन चित दृढ थीर, कु वळ ज्यौं हियो विगस ।
अनत वधाई हाय जाणी चौक चान्णि पूरौ ।
हिरद नाच पात मरस मनि सदा सधीरो ।
कहु कच । पार पदम जै दत्त लाभ किमत पयो कायौं करू ।
जप ता इधक सतोष जदि हू नाव विसन को औचरू ॥ ३ ॥–प्रति सख्या २०१ से ।
७–विसन अजप्या जोय, भील नीचा ग्रह जाया ।
विसन अजप्या जोय, सुणहा सूकर होय आया ।
विसन अजप्या जोय, ढीग कउवा अरु सोहा ।
विसन अजप्या जोय रीण चकवा विछोहा ।
साप परन्द अड काटिया, जोय परताप पापा तणो ।
नहा विसन न दोस रे जीव, भोगविसी कियौ आपणौ ॥ ५ ॥–प्रति सख्या २०१ से ।
८–एक नित ही फिर मज्र, पेट दूभर करि छल । (शेषांश आगे देखें)

के द्वारा भी कवि ने हरि-भक्ति और जन-महिमा का दृष्टान्त दिया है। किसी गांव के हरिभक्त सेठ (सकरपाण) और सेठानी के धनमाली का प्रसंग ही यहीं कहा। जंगल में चोरों ने उनको लूटने की सोची। एक तो रास्ते में स्त्री के रूप में करों में पट्टियाँ बाँध कर लेट गया, दूसरे ने सेठ से 'महारथ' से दुःखी उस स्त्री को चार कोस तक गाड़ी में चढ़ा लेने की प्रार्थना की। सेठ ने उनसे जानकारी न होने और सहायता के ढंग में मालूम करने के कारण इन्कार कर दिया। उन्होंने रघुनाथ की सौगंध खाकर सेठ का कुछ भी बिगाड़ न होने का विश्वास दिलाया। सेठ के न मानने[1] पर सेठानी ने दया कर उसको गाड़ी में बैठा लिया। स्त्री बने चोर ने मौका देख कर सेठ को मार डाला और रजाई में लपेट कर नीचे गिरा दिया। सेठानी ने आर्त्तभाव से भगवान से प्रार्थना की। प्रभु ने चक्र-सुदर्शन से चोरों का संहार करके सेठ को पुनर्जीवित किया। 'हरजी' इस प्रकार भक्तों के 'हजूर' रहते हैं[2]।

(ख) जाम्भोजी — जाम्भोजी, उनके प्रमुख कार्यों और महिमा का बड़ा भक्तिभावपूर्ण वर्णन कवि ने किया है, वे प्रत्यक्ष 'देव हैं विष्णु हैं'[3]।

मुहधो होय जथान, उठि जीवारी चल्ल।
टावर विळगाव आंगळी, कोस दोय कर पयाणों।
सुहधो सुणिय अरज न, जीण दिस कर मुहांणों।
वाकी कदे न भाज भूप, ते पड काठी वच महरि।
जाणीज चोर विसन का ऊरा, न जथ्यो उगत पहरि ॥ ३० ॥—प्रति संख्या २०१ से।

१—आपा दीठा नही ओळपा, काय जाणा छो कोई।
ठग सा दीसो ठीक, गळ गातगे सजोई।
था म्हा बीच रघुनाथ, बुरा जे कर्छा थान।
म्हार सीस वहिजो समसेर, प्रमेसर अरठ हुवो म्हान।
निज साध कहै मानू नही कथन कहो सोह कूडा।
कासुण हुवो था भेप धारि कियो, अग्यानी जीव अकूडा ॥ १० ॥
—वही, फोलियो ५४१-४३।

२—जै जै श्री रघुनाथ राजि विना कुण राख।
अवगति नाथ अनाथ साह साहणो भाय।
मनसा वाचा क्रम, जै तिहुवा सचि होई।
हरजी सदा हजूरी दूरि मत जाणो कोई।
राह गरू की मानते, विसन सगाई वाम।
रापण हारा राजि छो अवगति ऊधारास ॥ १४ ॥—वही, फोलियो—५४१-४३।

३—(क) जिसो भभ समारि, इसो कुण सुगण गुणवतो।
मेघा दधा अहेडिया, हुवो साहिब सू परचो।
अग्यानी ग्यानी किया ग्यान कथि दियो गिवारा।
नवणि की सार न जाणता सहजि मिलियो सुचियारां।
मूला भूना पूजता हणता जीव अजाणि।
सेवा आया साम्य की उदा, पाणी पीव छाणि ॥ ३८ ॥ प्रति संख्या २०१ से।
(ख) कदि जाट जीकारयो, सुच सिनान सुभाख्या।
कहर करोध कुवाणि, वरजि करणि तीन्यो राख्या।
विसन भगत कुण किया, जीव दया किणि पाळी।
अन्त जुगा की वात किणि कळि जुग्य सिंभाळी। (शेषांश आगे देखें)

(ग) सासारिक नश्वरता और असारता इस प्रसग मे कवि ने ऐतिहासिक, अर्द्ध-ऐतिहासिक[1] और पौराणिक[2] सभी व्यक्तियो के उदाहरण दिये हैं।

(घ) करणीय अकरणीय कृत्य ऐसे अनेक प्रमुख कृत्यो का वर्णन कवि ने किया है जिनमे जप के अतिरिक्त जीवन मुक्ति प्राप्त करने,[3] पत्थर पूजा[4] और काम-वासना त्यागने आदि के चित्ताकर्षक उल्लेख किए हैं।

(ङ) नीति-कथन ये प्रधानत दो प्रकार के हैं - एक वे जिनमे शुद्ध नीति कथन है। इनमे "रग" और "विरग[5] ", गुण अवगुण, मेल मिलाप किससे और किससे नही,

छह दरसण जिह न नून, ग्यान पडग जोगेसुरो।
पुन सत सील सतोष, जती भ्रम परतकि पुरो ॥ ४० ॥-प्रति सख्या २०१।

१ गया चौबीस बादेसाहु, और केता भुवाळू।
विक्रमाजीत अर भोजराज, गयो सो मुज बलाळू।
सातिल सूजा बीका गया, पान गया पीरोजू।
लू एकरण सा होय गया, ताह का माघ न पोजू।
मडळीक अर चक्रवत, किता हुवा धरती धणी।
गोपीचन्द अर भरथरी उदा गुर भेंटयो लाधी घणी ॥ ११ ॥-प्रति सख्या २०१।

२-गयो सो रावण राव लक गढ राज करतो।
गयो तिमर गढि पातिसाह कुत पाग बळिवतो।
किता गया भोपित नर चक्कव बपाणीं।
गुर पिडत कितना गया, देवता अत न जाणीं।
गुर बिण भेटया अप पीणा, महि मडळ को कोय कित।
पीण पळ ससार सोह नारायण नाव निहचळ नित ॥ १२ ॥-प्रति सख्या २०१।

३-जीवत हूवा पाक गुर वचने जरणा जरी।
अमर हुवा ससार मा उदा गोपीचन्द अर भरथरी ॥ १० ॥-प्रति सख्या २०१।

४-मेर प्रवत कुबळास सूर कान्हिप अजोवा।
पाहण ता मिसट घात हेम तावा अर लोहा।
पाहण ता गढ कोट मडप मडी छाजा।
पाहण ता घर देहरा, थभ पोळि दरवाजा।
पाहण ता कूवा वावडी चाठि चौसिला घडोई।
धरटी तोळा तुळि चढ पाहण देव न होई ॥ १३ ॥-प्रति सख्या २०१।

५-(क) रग राच पर कोल रग सुरग पवाळ।
रग राच राजिद तासदे पाट अमाळ।
रग तो गोई गोठिया ईठ सीठ मिताई।
रग ते वधू प्रीति रग ता सीण सगाई।
रग रूडो ससार मा रग मन रळि आवणो।
विसन भगत उदो कहै साई को नाद सुणावणो ॥ ३२ ॥

(ख) अग हुए भोपाळ ढसनी गढ कोट उजाड।
अग हव वर नारि, सूर वीरा पनि पाड।
अग हुवे राज्यद्र, राज ले वधव मार।
अग गोई गोठिया, दाव दोम मैं मार।
अग न कीज भाइयो अग को को छीत।
विसन भगत उदो कहै जाणता अग न कीज ॥ ३३ ॥-प्रति सख्या २०१।

उज्ज्वल[1] यथा, गरा-गोरा आदि-आदि पर लिखे गये कवित्त प्रमुख हैं, जिनमें प्राय दो विपरीत, गुण, धर्म आदि को लिया गया है। दूसरे वे जिनमें नीति वचन के साथ-साथ विष्णु जप[2] या जम्भ महिमा[3] का उल्लेख है।

(४) ग्रन्थ चितावणी (-प्रति संख्या २३९)।

यह १४२ "चौपई"- दोहों की वर्णन प्रधान रचना है। इसमें जीव के गर्भवास दुख से लेकर विभिन्न अवस्थाओं में मनुष्य के कृत्य, मृत्योपरान्त कर्म फल भोग और चौरासी लाख योनियों में भटकने का वर्णन करते हुए इससे छुटकारा पाने की समभरी चेतावनी दी गई है। इसमें निम्नलिखित वर्णन हैं -

(क) गर्भ-दुख, (ख) बाल-जीवन, (ग) तरुण और युवावस्था, (घ) वृद्धावस्था और मृत्यु, (ङ) धर्मराज के सम्मुख किए गए कर्मों का लेखा और फलभोग, (च) चौरासी लाख योनियों में आवागमन और (छ) इस दुख से मुक्ति-हेतु सुकृत उल्लेख। वर्णन दो प्रकार के हैं- अवस्था विशेष[4] के और योनि विशेष के। सभी वर्णन अत्यन्त प्रभावशाली और

१-अरिक सूर उजळो पहम उजळो दावानळ।
रण चद उजळो सा पुरिसा खाग भुजावळ।
जळ कवळ उजळो सील उजळ नर काया।
कथन साच उजळो सव उजळ श्री राया।
हरि रग रूप राता रहै पत्रवट पेत'उजगळो।
जोगी जुगति त्रभुवण सहट उघौ इणि परि उजळो ॥ ३ ॥ -प्रति २०१, फो० १८०।

२-भूपा भोजन सार, सोहड ज्यौं सापुरिसाई।
धोरी कध सार महलि ज्यौं जीभ मिठाई।
तुरिया तेज ज सार पुरुष बोल परवाण।
कायथ लेख सार विपर ज्यौं वेद पुराण।
पहमी पाणी सार अ न घन जिह निपज धरणि।
ऊ नाव विसन को सार उदा हळति पळति जीवण मरणि ॥२४॥ -प्रति २०१।

३-ते वाभण चडाळ सरव गुर साम्य न भन।
मावस गहण अकारटा लोभ करि हत्या समेट।
त वाणिया चडाळ भणति को भेद न जाण्यौ।
त थोरी परवीत जाह अवतार पिछाण्यौ।
आयौ आप इकायती, परदि लेसी पोटा दरा।
मेधा दधा अहेडिया उदा गरवा तण लाधो गरा ॥३७॥ -प्रति २०१।

४-मन मे रीस वहु आव, कर कर क्रोध दुख पाव।
मूज घू धळो नना, वहरो हो गयो काना ॥५३॥
कहै कछु और की और, निस दिन जीभ नही मोर।
लुकटी हाथ म लेर, पगला ठाय नी ठहर ॥५४॥
डेहली पहाड सी लाग चाल्यौ जाय नही आग।
माची पौळ म घाती, जक नाहि दिन राती ॥५५॥
पामी चल अरु पुळक, दम चढ जाय जव हळक।
मुख सू थूकतो रहै, नणा नाक जळ वह ॥५६॥
विगाडो ठोड जव मिष्टी, अज हू मर नही दुष्टी।
टूको स्वान ज्यू देव, दुख सुख पवर नही लेव ॥५७॥ (शेषाग आगे देखें

हृन्यग्राही हैं तथा थोडे से चुने हुए लोक प्रचलित शब्दो मे चित्रित किए गए हैं। रचना के मूल म पर दुख कातरता और उसके निवारण की महती कामना है। सवत्र कवि की निश्छलता और सहज भावानुभूति के दर्शन होने हैं। इसमे मानव जीवन और जीवात्मा की लौकिक और पारलौकिक समस्त आवागमन-प्रक्रिया का समग्रता में वर्णन किया है। इसी के द्वारा वह मानव को उसके चरम प्राप्तव्य मुक्ति की ओर इ गित और प्रेरित करता है। ये वर्णन इतने प्राणवान और यथाथ हैं कि सम्बन्धित विषय का सजीव चित्र सम्मुख खडा कर देते हैं। उदाहरण के लिए पशु-योनि[1] और बाल जीवन[2] के चित्रण देखे जा सकते हैं। इनके

पडियो थाळ नित झप, गाळी देत नहो सब।
परबस दुष बहु पाव, नेडी कोय नही आव ॥५८॥

१-उदाहरणाथ पशु-योनि के ये वर्णन —
घोडा कर निघन घर आया, दाणे घास कदे नही धाया ॥११२॥
भूप मर झुरक अरु भाप, सुकरत बिना घास नही नाप ॥
ऊठ भया बहु बोज उठाया, परदेसा कू लाद पठाया ॥११३॥
चादा पडै कीडा बोह पाव, कउवा टाच ज्यू दुष पाव ॥
हरि सिवरया बिन एह गति भाई, परबस पड्यौ सदा दुष पाई ॥११४॥
ओडा के घर पोहण हूवा, बोज ढोय चादी पड मूवा।
दे काना मे बार निकार, भूप मर चारो नही डार ॥११५॥
भजन बिना लादियो होई, ताकी सार न बूझ कोई।
बल किया जद आप बधाई, घाणी जोत अर दिया चलाई ॥११६॥
फेरा फिर बहोत दुष पाव, सूझे त्रिन भटभेटा आव।
फर ढाचियो बल जु कीयो, जोयो हल बहुत दुष दीयो ॥११७॥
एक दिन वाक एक दिन वाक, लालच लगे दया नही ताक।
विणजार की गूण उठाव, बोज मरे वहता दुष पाव ॥११८॥

२-लिया जनम नर ससार, लागी जगत की बयार।
जै नर किया हरि सू कोल, भूलो अभ का सब बाल ॥११॥
लागी मोह म्गया चाव, माता पिता के उछाव।
वाज थाळ वरगु ढोल, सहिया रही मगळ बोल ॥१२॥
भूआ भतीजे प आय, ठोपी भ्गलियो पराय।
भाई भावजा के कोड, दीनी तील तिहाणी तोड ॥१३॥
व ह रमान है वीर, हूवो पीर अवचळ सीर।
कठी कडोळा कराय काना मुरकिया पराय ॥१४॥
कडिया कदोर बिच लाल, छेन माल्या की बाळ।
घडिया कर सीप चाल माता लहै अ गळी भाल ॥१५॥
ठमक घर अ ग न पाव, माता पिता क उर चाव।
मा कू देप सामो जोय, रुपो वदन करक रोय ॥१६॥
माता लहै उर सू लाय, धाव पीर जो मन भाय।
बाळो पालण हीड क, पोन ढोलिय पीढ क ॥१७॥
कबहू गोद म पेल क, माता हाथ म भेल क।
रोव हस कर हैं चन, बोल तोतळा सा बन ॥१८॥
पेल आगण मैं धाय धार झमक ठमक पाय।
चिटियो हाथ मे लीयो, पल साथिया मिलियो ॥१९॥

बीच में यत्रतत्र कवि अत्यन्त संक्षेप में चेतावनी भी देता चलता है। कुल मिलाकर ये पाठक को झकझोर कर उसको आत्मचिंतन करने को बाध्य कर देते हैं। भाषा बोलचाल की और प्रवाहमयी है। एक वर्णन के अन्त और दूसरे के आरम्भ के बीच में कवि ने दोनों में एकसूत्रता रखने और कड़ी जोड़ने के लिए दोहों का प्रयोग किया है,[1] अन्यथा वर्णन तो सब "चौपइयों" में ही हैं, जिनको दो स्थलों पर "छन्द" की संज्ञा भी दी गई है।

। भाव-व्यंजना ऊदोजी के काव्य का प्रवाह तीन रूपों में दिखाई देता है यद्यपि मूल में उनकी समस्त काव्य-साधना एक संश्लिष्ट चेतना का परिणाम ही है —

(१) जाम्भाणी रूप, (२) आत्मनिवेदन परक रूप तथा (३) मुक्ति हेतु प्रयास और चेतावनी। नीचे संक्षेप में इन पर विचार किया जाता है -

१-जाम्भाणी रूप नारायण के अनन्त नाम और अवतार हैं। लोक लज्जा त्याग कर दृढ़ विश्वास, निष्ठा और प्रेम से उसका नाम स्मरण करना चाहिए। 'अलख, अजोनी, स्वयम्भू नारायण' ने अनेक अवतार रूपों में बहुविध अनेक कार्य पूरे किए हैं, किन्तु प्रत्येक अवतार "अंसकला" का ही था, अनन्त कला युक्त पूर्णब्रह्म तो जाम्भोजी के रूप में ही अब आए हैं। अन्य अवतारों और जाम्भोजी में यही अन्तर है। उनके आने का कारण है प्रह्लाद से वचनबद्ध होना। कवि की यह मान्यता साम्प्रदायिक विचारधारा के अनुरूप है[2]।

इसके परिणाम स्वरूप ऊदोजी ने एक तो बहुत से स्थलों पर जाम्भोजी के कार्य, महिमा, गुण आदि का सोल्लास, भक्ति भाव पूर्ण वर्णन किया और दूसरे उनके द्वारा कथित उपदेश और प्रवर्तित सम्प्रदाय के प्रति अनन्य निष्ठा और प्रेम का परिचय दिया। फलतः "जाम्भाणी दीन" और "नफर भांभाणो" उसे प्रिय है। अतः जो इस "पंथ" में ठगाई

१-उदाहरणार्थ वृद्धावस्था और मृत्यु-समय के बीच के ये दोहे -
आंण घेर्‌यो जम जीव कूं, कूण छुडावण हार।
आग करर जम ले चल्या, दे गुरजां की मार ॥६३॥
उपव औसर बीचगो, चेत्यो नहीं गवार।
सुकृत कियो न हरि भज्यो, गयो जमारो हार ॥६४॥
२-नारायण नाम अनंत, अनंत अवतार ज्यूं धाइय।
कीरत अपरपार, प्रेम प्रीत सूं गाइये।
प्रेम प्रीत सूं गाइय, न राख उर परतीत।
लोक लाज सब परहरो, छाड कुल की रीत।
तन मन जोड प्रीत कीजै, सिवरियो भगवंत।
महमा श्री महाराज की नारायण नाम अनंत ॥ अनंत अवतार ॥१॥
आन कला सूं आय धूरग ब्रह्म पधारिया।
पग कला अवतार कोइ विध कारज सारिया।
कोइ विध कारज सारिया, न नमो निज आचार।
रघु जम ण भाखिया प्रह्लाद वाचा सार।
कहै ऊदो गुणों गायो जस ज हरि का जाप।
... अनंत कला सूं आप ॥पूरण०॥४॥ – ग्रंथ १९१, फोलियो ६।

करता है, वह कवि को अच्छा नहीं लगता[1]। २९ धम नियमा सबधी कवित्त और आरतियो का निमाए इस दिशा म उसकी महान् देन ह। बहुत ही सन्ताप के साथ कवि का कथन ह कि व लोग सचमुच अभागे हैं जो पूरए ब्रह्म जाम्भोजी जैसे प्रत्यक्ष देव को नहीं पहचानते, जानत या मानते और पत्थर के देव की पूजा करते हैं। यदि जीव उद्धार के लिए जाम्भोजी नहीं आते, और "पथ" नहो चलाते, तो पृथ्वी पाप से डूब जाती[2]। जाम्भोजी म अगाध आस्था के कारए कवि के कथन वडे सबल और प्रभावशाली हैं।

२-नारी रूप मे आत्मानुभूति और निवेदन इस रूप मे कवि ने जो मार्मिक भावानुभूति एव उद्गार प्रकट किए हैं, वे परम्परा, साहित्य और भाषा, सभी दृष्टियों से महत्वपूर्ण हैं। कवि ने नारी रूप म परमतत्त्व से मिलनोत्कठा, मिलन और मिलनोपरान्त भावदशाओ के मनोरम चित्र उपस्थित किए हैं। इनमे उत्तरोत्तर एक क्रमविकास भी मिलता ह। आरम्भ में जीवात्मा वहन के रूप मे अपने "पीहर"- स्वग का माग पूछती ह। उसको बताया गया कि सुकृत और जाम्भोजी की कृपा से वहा पहु चा जा सकता ह[3]। अध्यात्म-साधना के पथ म वह अत्यन्त दीन होकर एक साखी मे अपने दाता, पिता–जाम्भोजी से मुक्ति की

१–कूड कपट जीव न भारी हूवलो, पथ मा करो ठगाई।
करो ठगाई पिंड काच, साच सिदक नजो वहो।
हीय भीतरि घडो घाटी, काय बाहरि धोव हो?
कपट करि करि पीड पोपो, अ ति धरती मा रहै।
दुप दुक्रत जीव सहिसी, सीप दिया सतगुर कहै॥२॥
सतगुर सिवरो मोमिणो इक मनि ध्यावो, दीन कथो भाभाणो।
गुर के वचो नु वि पु वि चालो, साच सही कर जाणो।
साच सही करि जाणि रे जीव, मयो छाडि ढुभातिया।
सुरा सेती मिल्या नाही, पथ माहि भरातिया।
लवधि मेल्हो माघ पोजो, जाणि जे जीवत मरो।
कहै ऊदो पारि पहु चो, सेवा सतगुर की करो॥५॥२४॥ –प्रति २०१।

२–जै नर हतता जीव, जीव पणि हत नाही।
जै नर कथता कूड, कूड पणि कथ नाही।
जे हू ता जगि जाचघ, ते हुवा गुर ग्यानी।
जे हू ता सदा असोच, हुवा सुचील सिनानी।
नाच थका उतिम किया, ग्यान पडग नावी अती।
उतिम पथ चलावियो ऊन्ता, अथी पातिगा डूबती॥३६॥ –प्रति २०१।

३–वीर वटाऊ भाइया, म्हान पीहर पथ वताय॥१४॥
डावो डाडो परहरो, जीवणो सुरगापुरि जाय॥१६॥
आग मु य जळ लांघणो, किस विधि उतरा पारि॥१८॥
वरि सुक्रत की नावडी, जिस चडि उतरो पारि॥२०॥
पार गिराए झभराय वस, सुरगा पुर सुहावणो॥२२॥
जा वस तेतीसू कोडि छन्या कचौळा अमी का॥ २४॥
व गुर परसादि पीवाहि, हीडोळे वणि वसि क॥ २६॥
सहजे सन्ज हिंडाय, उदो बोले बीनती आवा गवणि चुकाय॥ २६॥-प्रति :

कामना करता है[1] । वह नहीं चाहता कि कलियुग में वह ठगा जाय[2] । विरहिनी के रूप में अध्यात्म प्रेम में रंगा हुआ कवि अपने "मिठ बोले" प्रियतम से मिलन की प्रबल कामना और उसके सदा सान्निध्य के निहोरे करता है[3] । वह अपने "धणी"- "सजन सांवरे" के लिए, उसकी इच्छानुसार सब कुछ करने को तयार है[4] । विरहिनी की, सतगुरु दर्शन की यह उत्कट लालसा, उनसे मिलन की ऐसी आतुरता उनकी पूर्व-प्रीति के परिणाम-स्वरूप है, यह बात उसने पहचान ली है । इसीलिये तो वह हरि में ही समा कर रहना चाहता है[5] । इस साधना की अंतिम परिणति होती है- प्रियमिलन में, तत्व प्राप्ति में । इस अनुभव का उल्लेख करते हुए, बहन के रूप में कवि अपने अन्य गुरु भाइयों को तत्व की बात बताता है । वह है- देखो और दिखाओ । ऐसा करने में तनिक भी ढील या उधार मत करो । रात

१-म्हार तोह बिणि अवर न कोय तू र दियाव तू दिव ।
कुटब पिता परवार हळति पळति सांमी सरणि रयह ।
सरणि सामी सिसट करता सहल दुतर तारिय ।
विषम भुय जळ भु वण चवदा, मुकति पेत उतारिय ।
आस गरीबा करो पूरी, मांग मत घातो पता ।
भण ऊदो सरणि थारी, तू म्हार दाता तू पिता ॥ ४ ॥ २१ ॥-प्रति २०१ ।
२-रहे सील सतोष धरे निज ध्यान निरमळ ।
पच पुल्ता पाले, ग्रहे सुग्रहे चित चचळ ।
अभेनामी ओळगे सीवरि निज नाव विसन ।
अ मरापुरी अ बरा, पहरिस्या काया रतन ।
समळे हस उजळ सुवस, जळ मोताहळ चुगिय ।
कळि जुग जग ज ण ठगीय ऊधोदास न ठगिय ॥ ४ ॥-प्रति २०१ ।
३-राग काफी ॥ घर आवोजी मिठ बोला, प्यारी तमारी वातिया ॥ टेक ॥
कागद लाऊ कलम बणाऊ, लिपू ज प्रेम की पातिया ॥ १ ॥
हस हस बोलो अ तर पोलो मेटो जी मन की घातियां ॥ २ ॥
अ क भर भेंटो अ तर मेटो, सीतळ करो मेरी छातिया ॥ ३ ॥
पाव पलोटू पपा जी ढोळू, टहळ करू दिन रातिया ॥ ४ ॥
कहै ऊधवदासा एही नित आसा, सदा रहो सग साथिया ॥ ५ ॥। प्रति-१९६ से ।
४-राग काफी ॥-घर आवो जी सजन सावरा मन लागो जोर सुहावणा ॥ टेक ॥
आरती उतारू तन मन वारू, मोतीडा थाळ वधावणा ॥ १ ॥
वगड वहारू मिंदर सुधारू, चदण चौक पुरावणा ॥ २ ॥
करू रसोई मना भाव सोई, रचि रुचि जोर जिमावणा ॥ ३ ॥
फून मगाऊ सेज वणाऊ सुप पोढो जी मन के भावणा ॥ ४ ॥
तुम घणी हमारो हाक मत मारो, मन सू टहळ भुलावणा ॥ ५ ॥
ऊधवदास क रहो प्रभु पास, नित नवला पावणा ॥ ६ ॥-प्रति १९६ ।
५-घूमर ॥-सतगुर दरसण म्हे जास्या ।
निज पूरब प्रीत पिछांणी ए माय, सतगुर दरसण म्हे जास्यां ॥ टेक ॥
तन मन फूली सुधि बुधि भूली, चरणा मे लपटाणी ए माय ॥ १ ॥
कथा अमगा नित नव अगा चरचा रचि उपजाणी ए माय ॥ २ ॥
हरि गुण गुणस्या हरि मा भणिस्या, सु णि सु णि इ म्रत बांणी ए माय ॥ ३ ॥
हरि रग राचो प्रेम सू नाचो, रोम रोम विगसाणी ए माय ॥ ४ ॥
ऊधोदासा प्रेम प्रकासा, हरि मैं सुरत समाणी ए माय ॥ ५ ॥-प्रति १५८ ।

के सपने की भाँति ससार नश्वर और सारहीन ह । सवस्व देने से ही तत्व-प्राप्ति होनी है, लेने से नहा[1] । यही नहीं, कवि की प्रत्यक्ष विष्णु- जाम्भोजी से यह प्रार्थना है कि जो नर मुक्ति मागे, उसे वे मुक्ति अवश्य दें[2], तथा पात्र के अनुसार "पूजती मजूरी" द[3] । इस रुप में अपने समस्त अनुभवो को कवि "राग रामगिरी" में गेय एक साखी में व्यक्त करता ह । इसमें उमडते हुए अनेकश भावों को वाणीबद्ध करने का प्रयास ह, जिसमें चेतावनी का स्वर भी मुखर ह[4] । इस सदभ म कवि का कथन ह कि आवागमन से छुटकारा हृदय में

१-आज पियारे जी भाइ मोमिणो हम घरि वीरण आए ॥ १ ॥
हम उ न मेळो करि गुर कायमा, जाणो अठसठि तीरथ न्हाए ॥ २ ॥
जो पु न अठमठ जी भाई तीरथो, गुर सुभीयागत म्हारो ॥ ३ ॥
देह न्यावो जी भाई मोमिणो, देत न करो उधारो ॥ ४ ॥
ज्सा सुपना जी भाई रण का असा यो ससारो ॥ ५ ॥
काय भाई मोमिणो ओ धन सचो, सचि सचि छनो वुपारो ॥ ६ ॥
ओ धन पाकि जी भाई होयसी, पाली रह्या वुपारो ॥ ७ ॥-प्रति २०१ ।

२-मुकति मन मडियो, मुक्ति गनि पु ह्च हसा ।
मुक्ति जपीजे जाप, मुक्ति नमळ मिल मो वसा ।
मुक्ताहळ जे चवै, ता नरा मुक्ति ही दीज ।
अलख जोति भेंटिय, गोठि सुगर मिधा कीज ।
आरति मुक्ति जोगी जुगति, अमर देव ओळखियो ।
वगग निलक सनमुखि विसन, रतना रुप परखियो ॥ ११ ॥-प्रति २०१ ।

३-ताह का धय नसीव, नाय विसन क रीधा ।
निया महारम तत, कवळ छा जाह का सीधा ।
ग्यान ध्यान नाद वद, भग की वाचा पूरी ।
घो अमरापुरी वाम द्यो पूजनी मजूरी ।
साभळियो नरो अ सो गुर, को और साभळियो काने ?
आवागु वण चुकाय क, रतन कया द्यो दाने ॥ ४१ ॥-प्रति २०१ ।

४-जागो रे मोमिणो न सुओ, नींद न करो पियार ।
जसा सुपना रण का, अ सा यो ससार ॥ १ ॥
क हा सुभागे आवो पियो, पाळिक क दरवारि ।
पाघ पट ली आर सोवनी क हीडेला सुचियार ॥ २ ॥
एकण्य डाळ हू चडी दूजे मोमिण वीर ।
जेणि तो डाळ हू चडी, जेणि घणेरी भीड ॥ ३ ॥
हाथ को मु न्डो धोरि पडयो, कानकी नवरग वीड ।
काज पराया मीवला, जा दुख जा पीड ॥ ४ ॥
एणि तो डाड जुग गयो, राजा रक फकीर ।
अ ह जुगि अपणों को नही, सग्य न चल सरीर ॥ ५ ॥
जा उपज्या सो विणसणो की रणी जाणो तोरि ।
एक सुखासणि चडये चल्या एक वध्या जाहि जजीरि ॥ ६ ॥
दुलभ देसे गरजियो, वूठो घट घट माहि ।
बाहरि छा मे उवरया भीगा मिदर माहि ॥ ७ ॥
छानि पुराणी छज नवीं, पिरा पिरी पड मजीठ ।
साधो इण परि चेतियो, जाय वाजियो मसीति ॥ ८ ॥ (शेषाश आगे देखें)

प्रेमा भक्ति उत्पन्न होने के फलस्वरूप कर्म बन्धन कटने पर भी मिल सकता है[1]। इन सबका प्रभाव अत्यन्त गहरा और शोधक है।

३–मुक्ति-हेतु प्रयास और चेतावनी कवि की समस्त रचनाओं में चेतावनी का स्वर बड़ा मुखर है। उसका प्रभाव शिव है, सत्य के धरातल पर वह आधारित है और पाठक को लुभानेवाला है। यह चेतावनी तीन प्रकार से दी गई मिलती है —

(क) पौराणिक ढंग से, जैसे "ग्रंथ चितावणी" में।

(ख) संसार, मानव जीवन और नाते-रिश्तों की नश्वरता, असारता और व्यर्थता बताते हुए स्वर्ग-सुख वर्णन के द्वारा। संसार की चकाचौंध से व्यक्ति को विरक्त करने के लिए यह आवश्यक है कि उसका ध्यान वैसी ही किसी अन्य वस्तु की ओर मोड़ा या केन्द्रित किया जाय। स्वर्ग-सुख वर्णन का हेतु यही है जो कई प्रकार से किया गया है[2]। साथ ही कई रचनाओं में मानव के प्राप्तव्य-पथ को सुकर बनाने के लिए बीचबीच में करणीय-अकरणीय कार्यों का उल्लेख भी किया गया मिलता है। "जखड़ी" इस कोटि की श्रेष्ठ रचनाओं में से है[3]।

(ग) मानव-जीवन की दुर्लभता, उत्कृष्टता को ध्वनित करते हुए कवि ने जागरण

नाव दिरीया देवजी, जा थ उतरी पारि।
ऊदो बोल वीनती, आवागवणि निवारि ॥ ९ ॥–प्रति २०१ से।

१–ज्यूं ज्यूं उपज प्रेमा भक्ति, काटे कर्म होय जब मुक्ति।
हरि चरणा नित नहचळ होई आवागवण न आव कोई ॥ १३५ ॥–ग्रंथ चितावणी।

२–गुर क कथनि जुळया मेरा बावा जाह का हरिया भाग।
गढ वकुंठे अलपलडी, चढि जीवली माय।
सदरग कामण माथ जीव, कदि साथ मोमिण आविस्य।
नूर सतगुर आस पुरवै रतन काया पायस्य।
आरतो ले मुथ आसू रग वाज दो दही।
अनत वधावा हुव जा न्नि, मगळ गाव मोलि सही ॥ १ ॥
अलपलडी अरन्नासि कर मेरा बावा, हम पीव सू कदि मेळा।
थारी तिहु जुगि इक्वीस कोडि पहु ती हीड सहज हीडोळा।
सहज हीडोळ तेरा साम हीन दुप दालिन ना तहा।
जुग चौथ विसन मिलियौ इक्वीस कोडि र बारहा।
वकुंठ वेडो विसन ढोयौ सचियार साल्हिया लेविसी।
पारगिरांय पुहचाय भाभराय साम निहचळ देविसी ॥ २ ॥–साखी, प्रति २०१।

३–कुकरम कूड कलोभ ममता मारिय।
हरि सू हेत लगाय जळम सुधारिय।
जळम सुधारो जम वहै लारो, छाडो मवळ विकारा।
ओ समार चिहर की वाजी, देयो मोचि विचारा।
वात बीज न बीज्यो विरपा, पछ कर पछतावौ।
जीव सुवारथ हुव स की कुकरम मन वमावो ॥ २ ॥
जुगति मुगति दातार साई एक है।
मोह वसने दातार देवा लेत है।
लेवा माग्या जदि कारण लाधा, सगी चटपटी मन मा।

की भरवी गाई है। "कूकडो" इस विषय की अत्यन्त प्रसिद्ध रचना है। मुर्गे की बाग प्रभात होने की सूचना देती हुई सोते हुए मनुष्य को जगने की प्रेरणा देती है। यह "कूकडो" भी, मनुष्य को इस ससार म जागने की चेतावनी देता है। प्रभात होते ही अभिमन्यु का युद्ध मे जाना निश्चित है, वह केवल रात्रि भर ही घर म रह सकता है, सुभद्रा के मना करने पर भी "कूकडा" अपन कर्त्तव्य का पालन करता है। ऊनोजी भी इसके द्वारा यही कर रहे है[1] ।

काव्य का लक्ष्य ऊदोजी के काव्य का लक्ष्य मानव का सर्वांगीण विकास और उसका चरम प्राप्तव्य मुक्ति है। "अ्रभ चितावणी" के अनेकश वर्णन इस हेतु साधन और प्रयास हैं। इसम तथा साखियो मे[2] आए ऐसे वर्णनों की ओर वरबस ही पाठक का ध्यान आकृष्ट होता है, क्योंकि इनम व्यावहारिकता के गुण और सच्चाई है एव वे अपने सहज रूप में अभिव्यक्त किए गए हैं। प्रत्येक वर्णन चलचित्र की भांति समस्त दृश्य उपस्थित कर देता है। इनके मूल म कवि की सूक्ष्म लोक-निरीक्षण-दृष्टि, आत्मचेतना और परदुखकातरता- है। भाषा पर तो ऊनोजी का विलक्षण अधिकार है। इनमे तत्कालीन समाज की अत्यन्त

माता पिता भाई सुत बधु, कोइय न साथी सगा।
जम का दूत दसू दिस दीस, दुष पाव जीव अपारा।
सतगुर सीप यादि जदि आई जुगति मुगति दातारा ॥ ५ ॥
दपि विराणा द्रव मन न चलाइय।
जो हरि कर स होय, कहा पछताइय।
कहा पछताव न्यिो सो पाव ओछो इधको न होई।
राजा राणा रका सुरताणा, अब करो मत कोई।
जीव न्यिो सो रिजक हू दीयो, पूरण अभिणासी पेपी।
मेरी मेरी कहैं सब कोई, द्रव विराणा देपी ॥ ७ ॥
सोचि विचारि कछू नही तेरो विसन विसन जपि प्यारा।
ऊधोन्नास आस सतगुर की, नर नायक अवतारा ॥ १० ॥

१-पोह विगमी पगडो हुवो कूकड दीन्ही बाग।
उठ वदा कर वदगी, वयों साहिब पास्यो माग ॥ २ ॥

२-नाके सास लिवो मुपि बोलो, श्रवणे साभळो ज्यों सुरति पड ॥ २ ॥
नग चलण रतनागरि दीहा, कवण स दाता देव वड ॥ ३ ॥
विसन विसन तू तो भणि रे जीवडा, अज करि आयो जीवडा जळमि म्हड ॥ ४ ॥
ले जपमाळी हरि को जाप न कीयो, जपता री थारी मुरिय जीभ अड ॥ ५ ॥
गाडरियो हुवलो जीवडा चाँमरीयलो, झाटकणा की तेरे झूड पड ॥ ६ ॥
घोडा क घरि पोहणियो हुवलो, ल ले बोरी वडा पाळि चड ॥ ७ ॥
करहलियो हुवलो जीवडा फिरलो वतारे, भार उठाव लडं छड ॥ ८ ॥
दमा रे मणा की तेरे गूणि पडली, ऊपरि ओठी कूटि चड ॥ ९ ॥
कावळियो हुवला जीवडा गिगनि भुवलो, करगि चूर तेरी चाच पड ॥१०॥
सुवरियो रे हुवलो जीवडा सहरि फिरलो, ठरडक्य ठरडक्य नास कर ॥ ११ ॥
गुवरियो हुवलो फिरलो गळियान आज वटाऊ झविकि लड ॥ १२ ॥
पापा कै पसाए जीवडा, दोर जलो, उत कणि अफरी मार पड ॥ १३ ॥
जब लग जीवडा सुकरत न कीयो, ज्यों तू नाही जूप्य पड ॥ १४ ॥
ऊनोजी भण जपो निज नांमो, देव नही कोई झम घड ॥ १५ ॥
-साखी सख्या १२, प्रति २०१ से।

देयाप, मनोरम और ओजस्व भावों से व्याप्त होते हैं। कवि की रचनाओं के आधार पर इस की तत्कालीन के महत्त्वपूर्ण समाज का भी चित्रण किया जा सकता है। सामाजिक दृष्टि से कवि की यह बड़ी देन है। प्रकारान्तर से इनकी प्रत्येक कवि के सवैया गीतियों[1] और जाम्भोजा के कार्यों [2] में भी सुन्दर भाव-चित्र के साथ-साथ सुनियोजित और सुन्दर ढंग से दिखाई देती है। इनका भाव आत्मा की कविता का विषय रहा है। इन्होंने भी अवतार रूपों को नमस्कार करना नहीं भूले हैं। कवि इन अवतार के साथ ही व कलियुग का अन्त देखना चाहते हैं। "जीवनी[3] में वे इसी गुण वर्णन करते हुए भावोन्मादक

१–एक जाय निरे ठग चार ठग हुई सगत ठगाई।
ठगि भौर पंहि जाहि जित चाले सबी ठगाई।
सिमो म दही पैरि तिपावे मोरि हूली गवाई।
बांधी कर्म न भावे भूप, दाव की थोर सुफळाई।
यार्ते मायो न थके पाप जाय पै भाँजै पः।
जांगीजै चोर विधन का (उगा) ठगि चालि गड़गी घई ॥ २६ ॥–प्रति २०१।
२–भीयर छोड्यो पाल, मूढ छोड्यो वावरिये।
पांणी पीव छांणि जुलम करता मूढ दुरिये।
करद बगाई हड मुदा प्र मयार हाट सीयो।
चोमरा पतरी वांगियां प्रबळ बगसू ताह कीयो।
कुपह छाडि कुकरम तज्या, सुपह जांणि भावी भली।
ते चाल्यो उतिम पथ, जयो जयो भांभा जती ॥ ४२ ॥–प्रति २०१।
३–साहिब सिरजण हार जीला उपाई मेदु नी।
दय भायो इन्य ससारि, भाग परापति पाइयो ॥ १ ॥
देव तेरी वाटड्यिां वळि जांव, जांह म्हारो गांई सतगुर भावियो।
पगि पगि घर तबोळ, वाटड़ियां म्हार गुर क पूल विछावियं ॥ २ ॥
दव हट्टी जी रोपी गढ मुक्ताफ्ण निली म्हार गुर को वसणो।
तारांयण जी गळ फुलमाळ, चांद सूरिज म्हार गुर क सेहरे ॥ ३ ॥
गुर नर कोटि ततीस, इ द ब्र भा सवर सही।
जात अरजन भीव, पांचू वीर व्यावता ॥ ४ ॥
दुळ दुळ भवकि पलाण, पटग तिपारो साहिमी।
वसधा विसन विवाह काळग मारि रचावियो ॥ ५ ॥
दमव निकळ नरेस, वसधा कंवारा परणिय।
परण्यो निकलक पात कर सवीरी आरती ॥ ६ ॥
कल्यजुग पलटि करतार, म्हार साईं राजा सतजुग थरपियो।
मिल्या कोटि तेतीस पार गिराय वधावणा ॥ ७ ॥
पुन्ता पार गिराय, वस्य विवाणे साहिल्या ॥
पूगी मोमिणा री आस, सतगुर काज सवारिया ॥ ८ ॥
अपछर सभी सिणगार, उछाह करि साम्ही आवही ॥
सव उण्यहारा एक बोया वचन पिछांणियै ॥ ९ ॥
धन्य तिथ धन्य ओही वार, धन्य मुहुरति धन्य घडी ॥
हुई पधारि पधारि, आँगण्य आपो आपर ॥ १० ॥
नूरे मिळिया नूर निसवासरि जित क नहीं।
पीणा अ मी कचोळ सहज हिंडोल हीडणो ॥ ११ ॥
कन्त दरसण देव, मन्यसा सू कारज सर ॥ १२ ॥–प्रति २०१, फो २३–२६।

ऐसा विश्वास प्रकट करते हैं।

महत्व और मूल्यांकन विक्रम १६ वी शताब्दी के राजस्थानी साहित्य मे ऊदोजी का विशिष्ट और गौरवपूर्ण स्थान है। साहित्यिक और सामाजिक दृष्टि से इनकी रचनाएँ अत्यन्त मूल्यवान हैं। इनकी देन कई क्षेत्रों मे है —

(क) काव्य-रूप-परम्परा मे इसम कवित्त (छप्पय), गेय-पद और दोहे-चौपई परक रचनाएँ मुख्य हैं।

(ख) लोक-रजन, मनोवृत्ति-परिष्कार इनके 'ककडो', "जखडी', "घूमर" "सोट्लो', हरजस, साखी, आरती आदि स पता चलता है कि ऐसी अनेक लघु कृतियाँ गेय-गीतो के रूप मे लोक-प्रसिद्ध थी। कवि ने इनके द्वारा जन-मनरजन के साथ-साथ अव्यक्त रूप से लोकमनोवृत्ति-परिष्कार का महान् काय भी किया। ये सभी रचनाएँ विभिन्न राग-रागिनियो मे गेय हैं।

(ग) भावधारा इनके काव्य म तीन प्रमुख धाराएँ प्रवाहित हैं, यह लिख आए हैं। इनम से अन्तिम दो-नारी रूप म स्वानुभूति और आत्मनिवेदन तथा चेतावनी परक रचनाएँ, राजस्थानी साहित्य की एतद्-विषयक काव्य-परम्परा की महत्त्वपूर्ण कडियाँ हैं। अनेक परवर्ती राजस्थानी कवियो की रचनाओ म इन दोनो के पृथक-पृथक अथवा समन्वयात्मक और सम्मिलित रूप देखे जा सकते हैं। मीराँ के पदों मे समन्वयात्मक रूप अधिक मुखर है। विष्णोई साहित्य म ऊदोजी की ऐसी रचनाएँ अप्रतिम हैं। इस दृष्टि से केवल आलमजी ही एक सीमा तक इनके साथ तुलनीय हो सकते हैं।

(घ) अनुभूति, प्रेरकतत्त्व अध्यात्म का क्षेत्र साधना का माग है। ऊदोजी की कृतियों मे इस साधना और प्राप्त सिद्धि की किंचित् झलक दिखाई देती है। नारी-रूप मे कथित रचनाओ मे, परम तत्त्व और आराध्य अनुभूति, ध्यान, खोज, उससे साक्षात्कार, मिलन और मिलनानुभव के भावपूर्ण सकेत और उद्गार प्रकट किये गये मिलते हैं। सर्वत्र आराध्य के प्रति उनकी अटल आस्था, दृढता और सहजोल्लास का परिचय मिलता है। उनके आराध्य सतगुरु जाम्भोजी हैं, जो विष्णु हैं और जिनम विष्णुत्व की पूर्ण प्रतिष्ठा है[1]। इस माग में प्रेमाभक्ति उनका सम्बल है। प्रेम चित्रावणी के अतिरिक्त अन्यत्र भी उन्होंने इसका उल्लेख किया है[2]। यह भक्ति गुरु-कृपा से सुलभ है, इसके लिए हरि-सेवा, गुरु-वदगी

१-नमो नमो गुर जभ नमो गुर ज्ञान दिवाकर।
नमो गुरू उपदेस नमो गुरदेव विद्याधर।
नमो नमो सिध साध, नमो रिष राज मुनिवर।
नमो नमो पित माता, नमो सव देव पुरदर।
पाच तत ब्रह्ममडळ नमो नमो सव आतमा।
कर जोड ऊधव कहै नमो विष्णु प्रमातमा ॥ १ ॥

२-नमो इष्ट निज देव नमो सब सिष्ट गुसाई।
नमो सकल आधार नमो सबही घट साई।
नमो नगुण गुण रहत नमो नकार निरजन।
नमो सुगन साकार नमो सतन मन रजन।

(शेषांश आगे देखें)

और सतसगति करनी चाहिए[1]। भाव अर्थात् प्रेम रखना चाहिए क्योंकि बिना भाव के भक्ति नहीं होती[2]। सतगुरु से ऐसा प्रेम पूर्वजन्म की प्रीति के कारण ही है। लोकलज्जा इस पथ की सबसे बडी बाधा है जिसकी परवाह न करने का उल्लेख कवि ने कई बार किया है। इन दोनों के बीज सबदवाणी में मिलते हैं (सबद ८१, ११६)। वस्तुत ऊदोजी की चेतना, चिंताधारा, साधना, विश्वास और मान्यताओं के मूल में जाम्भोजी के एतद्विषयक विचार हैं जिनको आत्मानुभव और सस्कारों में निमज्जित और तदाकार, कर अपने ढग से कवि ने पुष्ट वाणी दी है। ऊदोजी के काव्य में उपलब्ध पुनर्जन्म, कर्म-सिद्धात, सतसगति सद्गुरु, स्वर्ग-नरक, चौरासी लाख योनियाँ, हवन-यज्ञ, पूजा, दान, अवतार आदि-आदि से सम्बन्धित विचार वही हैं जो सबदवाणी में पाये जाते हैं। यह स्वाभाविक ही था। इस पहलू के अतिरिक्त शेष सब अभिव्यक्ति उनके अपने अनुभव और सस्कारों के आधार पर है।

प्रसगवश, यह कह देना आवश्यक प्रतीत होता है कि मीरों के प्रामाणिक माने जाने वाले पदों में भी भक्ति और साधना-पद्धति, पूर्व जन्म की प्रीति और लोक-लज्जा सबधी उल्लेखों के अलावा ये सब बातें भी इसी रूप में मिलती हैं। इस दृष्टि से ऊदोजी की रचनाएं मीराँ-काव्य की पृष्ठभूमि प्रदान करती हैं। इस सदर्भ में आलमजी की रचनाओं को भी ध्यान में रखना चाहिए। ऊदोजी के साथ उनका कृतित्व भी मीराँ-काव्य का प्रेरणा-स्रोत रहा है। भावानुभूति, अभिव्यक्ति, विषय, साधना विचार, भाषा-शैली की दृष्टि से हजूरी *विष्णोई कवियों, विशेषत ऊदोजी और आलमजी की सम्मिलित रचनाओं में समष्टि रूप से* वे सभी तत्त्व वर्तमान और मुखर हैं, जो मीराँ के पदों में पाए जाते हैं। इस प्रकार प्रेरणा प्रभाव, विषय और अभिव्यक्ति की दृष्टि से मीराँ के मानस और कृतित्व का निर्माण जाम्भाणी विचारधारा और मुख्यत इन दोनों सिद्ध कवियों की रचनाओं के धरातल पर हुआ लगता है। इस बात को अनेक प्रकार से पुष्ट किया जा सकता है। मीरा को सम्यक् रूपेण समझने के लिए अध्येताओं को इस पहलू से भी विचार करना चाहिए।

पूरण ब्रह्म अकाम हर सकल कामना देत है।
नमो नमो कहै ऊधवौ प्रेम भक्ति तुम्हें-हेत है।

१-हर कृपा सू मनष तन, गुर कृपा सू भक्ति।
उधव हरि कू सिंवरलो, बोहोड न असी जुगति ॥ १४१ ॥
हर सेवा गुर वदगी कर सतन सू भाव।
ऊधव बोहर न पायबो असो उतम दाव ॥ १४२ ॥-अथ चितावणी, प्रति २३६।

२-पुत्र बिना नही बस नही तया बिन गेह।
नीत बिना नही राज प्राण बिना नही देह।
धीरज बिना नही ध्यान भाव बिन भगति न होय।
गुर बिना नही ग्यान जोग बिन जुगति न कोय।
सतोष बिना कहू सुष नहा कोट उपाय कर देखो किना।
विष्णु भक्त ऊधो कहै मुक्ति नही हरि नाम बिना ॥ २१ ॥-प्रति २३० से।

३८ अल्लूजी कविया (विक्रम सवत् १५२०-१६२०)

अल्लूजी कविया शाखा के चारण कवि थे। इस शाखा का मूल स्थान विराही (जोधपुर) माना जाता है। यहा से अल्लूजी के पूर्व-पुरुष सिणला नामक ग्राम मे आ बसे थ। यही[1] श्री हेमराजजी के घर सवत् १५२०-मे अल्लूजी का जन्म हुआ। अन्यत्र इनका जन्म लगभग सवत् १५६०[2] तथा १६२०[3] माना गया है, जिसके सम्बन्ध में आगे विचार किया गया है। अपने पिता के ये इकलौते पुत्र थे। आमेर-नरेश कछवाहा पृथ्वीराजजी के पुत्र रूपसिहजी ने इनको कुचामन के पास जसराणा गाव प्रदान किया था[4]। एक किवदती के अनुसार, जसराणा का नाम पहले महेसलाणा था जो ५२,००० रुपया का पट्टा था, तथा जो गौड राजा सहसमल ने इनको प्रदान किया था। किन्तु बांकीदास का मत ही अधिक मान्य प्रतीत होता है। जसराणा म ही अल्लूजी ने सवत १६२० म जीवित समाधि ली थी। यहा इनका समाधि-मन्दिर बना हुआ है और इस जगह "अल्लूजी बापजी' की 'ओयण' (ओरण=उपारण्य) छोडी हुई है। इस गाव मे विशेषकर तथा कवियो के अन्य गावों म भी परम्परा से प्रचलित मत के अनुसार, समाधि के समय इनकी आयु १०० साल की थी और दिन सोमवार था। इस मृत्यु-सवत की पुष्टि कवि द्वारा राव मालदेव के देहान्त पर कहे गए मरसियो से भी होती है। अल्लूजी के वशज अल्लुदासोत कविया कहलाते हैं और इनमे ये 'अल्लूजी बापजी' के नाम से प्रसिद्ध हैं। यह इस बात को सिद्ध करता है कि कवि का नाम 'अल्लूनाथ' न होकर अल्लूदास या अल्लूजी ही था। रामदास कृत भक्तमाल मे भी 'अल्हदास' नाम लिखा है। इनके दो पुत्र-नरूजी और किसनाजी तथा एक पुत्री हुई। पुत्री का विवाह हरमाडा के गाडण सुरताणजी से हुआ था। नरूजी की एक शाखा के वशज सेवापुरा (जयपुर) म हैं। यह गाव सवत १८२१ मे सागरजी कविया को जयपुर के महाराना सवाई माधोसिहजी न प्रदान किया था[5]। इस शाखा का वश-वृक्ष प्राप्त है।[6]

१-राजस्थान के हिन्दी साहित्यकार, पृष्ठ ४३१, हिन्दी परिषद्, जयपुर, सन १९४४।
२-"परम्परा', भाग १२ पृष्ठ ५५ सन १९६१ जोधपुर।
३-डा० मोतीलाल मनारिया राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृष्ठ १६०, सवत २००८।
४-बांकीदास री ख्यात, पृष्ठ १८२ सन १९५६, राज० पु० म०, जोधपुर।
५-हिंगलाजदान कृत "महाई महिमा, भूमिका, पृष्ठ १, सवत १९९८।
६-यह इस प्रकार है —

हेमराज
↓
अल्लूजी (सवत् १५२०-१६२०)
↓
नरूजी | किसनोजी
↓
पतोजी → महेन्दास → गोरखदास → गोरधनदास → नारायणदास → सागरजी → भक्तरामजी → रामदानजी → नाहरजी → रामप्रतापजी* (शेषांश आगे देखें)

चारणों में १४-१५ परम ख्याति वाले हरि-भक्त कवि हुए हैं। इनमें अलूजी का नाम अत्यन्त श्रद्धा और गौरव से लिया जाता है। ज्ञात और अज्ञात अनेक कवियों के कथन इस बात के प्रमाण हैं[1]।

लेखक को अलूजी पर लिखा गया ४ दोहलों का एक गीत[2] प्राप्त हुआ है जिसमें

---

*रामप्रतापजी
↓
- हिंगळाजदानजी
  ↓
  बलदेवदानजी,
  कल्याणदानजी,
  सांवळदानजी (वर्तमान)।
- मुरारीदानजी
  ↓
  जोगीदानजी (वर्तमान)
  पाबूदानजी आदि।

१-(१) ईसा, अलू करमाणद, माण्ड, सूरदास पुनि सता।
माडण, जीवा, केसव माधव, नरहरदास अनता।
—परसराम चारण कृत भगतमाला, "डिंगर वंशोत्पत्ति", भूमिका, पृष्ठ ३ में उद्धृत ना० प्र० स०, काशी, संवत् १६८५।

(२) बारहट ईसरदास जिणि हरिरस हरि गुण गायो।
बारहट नरहरदास जिणि औतार चिरत बणायो।
बारहट तेजसी जाणि कही कथा कवि बाणी।
बारहट अलू जाणि लियो जिणि विष्णु पिछाणी।
बारहट तो बारै कहै, सेत न सूद पारिका।
म न चाव ऊकड कहै, लक्षण सेई गवारि का॥ —अज्ञात कृत, प्रति सं० ३८६।

(३) चौमुख चौरा चड जगत ईस्वर गुण जाने।
करमानद अरु कोल्ह, अल्ह अक्षर परवान।
—नाभाजी कृत भक्तमाल, पृष्ठ ८०१, रूपकला, लखनऊ, सन १६३७

(४) करमानद अरु अलू चोरा चड ईस्वर केसो।
दूदा जीवद नरो नराण माडण केसो।
—राघोदास कृत भक्त नामावली दादूद्वारा, जयपुर, की हस्त० प्रति से।

(५) अल्हेदास अगम की आसा, भक्ति पदी म कीया वासा।
—श्री रामदासजी महाराज की वाणी, –'भक्तमाल', पृष्ठ १६६, खेडापा, संवत् २०१८।

(६) इसी प्रकार मेवाड के आसिया चारण बखतराम, दासिया तथा बीकानेर के कवि राजा भरवदान ने प्रसगवशात् अल्लूजी का उल्लेख किया है।

२-धूना सिधराज नमो चित धारण, सार पिछाण तज्यो ससार।
जागराज च्यारों जुग जोव अलू कियो गोरख अवतार॥ १॥
भजन प्रताप मेट भव बधण, अमर हुवो नव नाथा ऐम।
गोरख भरथ जळधर गोपी, तारण तरण हेम– सुत नेम॥ २॥
परचा पार किमो कवि पावै, जीवन मुकुति हुवा जगजीत।
सुरति हेक साहिब सू साधी और सब सू रह्या अतीत॥ ३॥
कर मेल माथे करणाकर सामिल लै लीधा सामाज।
राग जिमा आया ज्यो सरण, कचन जिसा किया कविराज॥ ४॥
—श्री जोगीदानजी कविया, सेवापुरा, के सग्रह से।

कवि की कुछ लोक-प्रसिद्ध विशेषताओं का वर्णन किया गया है। इससे पता चलता है कि वे परमयोगी, केवल हरि और हरिनाम-प्रेमी, अलौकिक-शक्ति-सम्पन्न साधु पुरुष, रांगे जस लागों को कंचन के समान करने वाले और गोरख के दूसरे अवतार थे।

किंवदंतियां अब तक अल्लूजी का नाथ-प्रभावा तगत योग-साधन और हरि-भक्ति पथ ग्रहण करना मानती आई हैं। इनके आरम्भिक गुरु के विषय में मतभेद है। बलख-बुखारा के सुलतान, जो बाद में राजस्थान में 'हाडीभडंग' नाम से प्रसिद्ध हुए, इनके गुरु बताए जाते रहे हैं। इसके प्रमाण में एक नीसाणी सुल्तानी बलख बुखारेदा का हवाला भी दिया जाता है। यह बात गलत है, क्योंकि हाडीभडंग इनसे काफी पूर्व हो चुके थे। फिर यह नीसाणी नानिग (द्रष्टव्य-कवि संख्या ५९) की रचना है, इनकी नहीं। हाडीभडंग की प्रसिद्धि के कारण ही कवि ने उस पर गीत लिखा है, इससे दोनों का समकालीन होना प्रमाणित नहीं होता।

इस सम्बन्ध में प्राप्त नवीन सामग्री के आधार पर निम्नलिखित बातें कही जा सकती हैं —

१-कि अल्लूजी का आरम्भिक जीवन नाथ पंथी साधुओं की सत्संगति में बीता तथा उनकी साधना में किसी नाथ जोगी का हाथ रहा था,

२-कि उन्होंने लगभग ४० वर्ष की आयु में अपना आध्यात्मिक गुरु जाम्भोजी को बनाया था,

३-कि वे विष्णोई सम्प्रदाय में दीक्षित हुए और आजीवन उसी में रहे।

प्रथम बात तो सर्वमान्य है किन्तु शेष दोनों के लिए प्रमाणों की आवश्यकता है। पहले अन्त साक्ष्य रूप अल्लूजी के कुछ कवित्त द्रष्टव्य हैं —

१- वद जोग वराग खोज दीठा नर निगम।
सन्यासी दरवेस सेख सोफी नर जंगम ।
विया वियापी मोहि आज आसा घरि आयो।
पांणीं अन अहार पेटि सुख परचो पायो ।
पाचवों वेद साभळि सबद, च्यारि वेद हूं ता चलू ।
केवळी अभ सावळ कवळ, आज माच पायो अलू[1] ॥

२- जिण वासिग नाथियो, जिण कंसासुर मारे।
जिण गोवळ राखियो, अमड[1] आगळी उधारे।
पूतना प्रहारि, लीया थण खीर उपाडे ।
जिणि कागासर छेदियो, चदगिरि नावें चाडे ।
एतळा प्रवाडा पूरिया, अवर प्रवाडा प्रभ सहे।
अवतार देय अभ तणो अलू, कन्ह तणो अवतार कहे[2] ॥

१-प्रति संख्या १६३ (जम्भसार, १४ वां प्रकरण), २०१, २७२, २९५।
२-प्रति संख्या ८९, १६३ (जम्भसार, १४ वां प्रकरण), २०१-फोलियो ५५२। पहली प्रति से उद्धृत, किन्तु इसमें प्रथम पंक्ति, त्रुटित होने से वह १६३ वीं प्रति से ली गई है।

३- तु ही साम समीर पर अवर अग परियो।
तरे भाम मतरास सुर परतार उपरियो।
करिमत अपरीम पर भगनां पर पाडै।
संसागर संसार बेर न बडा बारै।
गुर परमोपन तारण मनां, बरण गुरा अवरण बन।
उधारियो मनू भाजो तरण अे औ देव सामेतक ॥-प्रति सख्या ८० से।

४- कहां मडो कहां तेल गुर निनिहर कहां तकर।
एक रोम मतारो बने बरमह गोरंति।
चरण पाग तिन बोग, भांति अवधूत सिलोकर।
गुन बक गू सुर्गति, गरा कारन सिरंबर।
पचास कोग सायर बबड़, गरणि बर रतन्न परगि।
एक अगल बर अनू, थी वारह तो पाए तरणि ॥ ९ ॥-प्रति सख्या २०१ से।

५- मैग जगागुर मारियो, मघ घोवर समहर मघ।
गुर हिरणागुन हिरणाल अनंत गत उपम मये।
ए्यो बलि मिल तगे गुन ताहंत भाभेरा।
करि रावण निरपत, सर भभीखन देवा।
एतड़ा प्रवाड़ा तोरा अथ, काम भगतां कारण।
बोलतो बड बड विष्ण, त्रिभंग बाहरो तारण ॥ १३४ ॥

६- जिम राग्गति तिम रहनि, जहां मेलगो तहां जायगी।
जिम ओलति तिम चहिति, जिम पोखगि तिम पायति।
च्यारि कूण दहदस पांच जण कर मेलो।
अबनासी तो दिसा, तूझ सारो ही बेलो।
वायस हूस उर वाणी वस, सक्र निनिहर भुयरि धरि।
थो थाप आप मांग अ, परम हस जभेस हरि ॥ १३३ ॥

७- बालम जवा ताहरो अपर कुण पताम ज पार।
प्रांण मां प्रांण पवा कर, गमो पोल प्रतिपार।
तू ही दाता तू ही देव, तू ही आतता अधार।
तू ही जोईयों तू ही जीव, तू ही मार तू ही तार।
त्रिगुण पच तत अनादि सहित कीया मनसा धारि करि।
भाग भलो अल्हू भण, सतगुर प्रगट मिल्यिो सभरि।

(छन्द क्रमसख्या ५, ६, ७ प्रति सख्या १९३, जम्भसार, प्रकरण १४ से उद्धत हैं)।

इनमे प्रथम कवित्त से पता चलता है कि अल्हूजी पेट-रोग के कारण अनेक प्रकार के व्यक्तियो के पास गये। अन्त मे सब ओर से निराश होकर, व्याधि-मुक्ति की आशा

लेकर जाम्भोजी के पास आये। उनके द्वारा दिए हुए पानी और अन्न का आहार करने से उनके पेट म शाति हुई, उन्होने पाचवे वेद रूप "सबद" का श्रवण किया और सच्चा विश्वास पाया। एक अन्य कवित्त मे भी इस पाचवें ज्ञान, 'केवळ ग्यान' का उल्लेख है[1]। दूसरे मे जाम्भोजी को कृष्ण का अवतार बताया है। तीसरे मे कवि जाम्भोजी को सब शक्तिमान भगवान मानते हुए, शरणागत के रूप म स्वय को उबारने की प्रार्थना करता है। चौथे और पाँचवें म भी इसी प्रकार उनको भगवान मानते हुए, सम्प्रदाय की एक सुप्रसिद्ध मान्यता–जाम्भोजी के बारह कोटि जीवो के उद्धारार्थ आने का उल्लेख किया है। शेष दो कवित्तो म "परम हस जभेस हरि" (६), 'सतगुर" के साक्षात प्रकट होकर सभराथळ पर मिलने का वर्णन है (७)। वसे सब कवित्तो म भगवान के रूप म जाम्भोजी का महिमा-गान तो है ही।

बहि साक्ष्य से भी पूर्व कथन की पुष्टि होती है —

१–सम्प्रदाय मे " २४ की लूर" प्रसिद्ध है जिसमे तीन विष्णोई चारण कवियो मे लूजी का नाम १६ वा है (१५ वा तेजोजी और १७ वा कान्होजी चारण का है, द्रष्टव्य ष्णोई सम्प्रदाय नामक अध्याय)।

२–सुप्रसिद्ध कवि सुरजनजी ने "कथा परसिध" मे अल्लूजी का जाम्भोजी की शरण आना लिखा है —

साभळी साखि भाखे सवायो। अलू भलां नाय री भेंट आयो।
उतरहू जात भती अमांह। मारवी ता दस वाट मांही॥ ११७॥

३–अनात कवि कृत "जाम्भोजी र भक्ता री भक्तमाळ", मे अन्य विष्णोई भक्तो के ाथ इनका नाम भी वर्णित है (छन्द १६ मे) (द्रष्टव्य–परिशिष्ट मे "भक्तमाल")।

४–हीरानन्द के 'हिंडोलणो' मे अन्य विष्णोई जनों के साथ अल्लूजी का नामोल्लेख (द्रष्टव्य–परिशिष्ट मे 'हिंडोलणो')।

५–हरिनन्द नामक विष्णोई कवि ने "सोरठि" राग मे गेय अपने एक 'हरजस' मे जाम्भोजी का विरुद गाते हुए अन्य भक्ता के साथ इनका वर्णन भी किया है—

पात सुपात भया नर केता, अलू तेजा कवि कान्हा।
हरिनद और न जांचू, सभ गरू मन मानां॥ ७॥

६–साहबरामजी ने जम्भसार (प्रति सख्या १९३, प्रकरण १४ वां) मे अल्लूजी का सविस्तर उल्लेख किया है। उनके अनुसार, रावल जैतसीजी के समय जैसलमेर मे अल्लूजी

१–मति गिनान सु मति मति, कु मति नही आव काई।
सुरति गिनान सुरति होय, परखि जा घटि उपजाई।
अवध्य गिनानी सो होय, आरबळ दीय सु गाई।
मन पर जोजवी गिनान, जोजन लग दीय बताई।
केवळ ग्यान सारा सिर, सब जीण जाण सकळ।
पाचवों ग्यान ज उपज, सकळा सीरि सोई सकळ॥ —प्रति सख्या २०१ से।

रहते थे। अचानक रोग से दुखी होकर वे अनेक स्थानों पर अनेक प्रकार के लोगों के पास इलाज के लिए गए थे, किन्तु कोई लाभ नहीं हुआ। घूमते घूमते अन्त में काशी। केवल वे [illegible] होगए। और उनको [illegible] कर जाम्भोजी के पास [illegible]। [illegible] जाम्भोजी के चरणों में गिरकर उन्होंने रोग मुक्ति की प्रार्थना की। जाम्भोजी ने [illegible] जाम्भोजी ने [illegible] किया और उनका [illegible] समाप्त कर दिया। इससे उनको [illegible] दूर हो गई और वे उनकी स्तुति करने लगे। स्तुति स्वरूप उन्होंने दोहे और कवित्त कहे जिनमें ऊपर उद्धृत पद्य [illegible] है। [illegible] है कि इस कवित्त में [illegible] के कथन का समर्थन है।

७–८ स्वामी ब्रह्मानन्दजी[1] और स्वामी श्रीरामानन्दजी[2] भी इस बात की पुष्टि करते हैं। सम्प्रदाय में दीर्घकाल से यही परम्परागत मान्यता रही है। साहबरामजी ने कोल्हजी और काल्होजी के प्रसंग में भी अल्लूजी का उल्लेख किया है। कोल्हजी [illegible] पर अल्लूजी के कहने से, उनके साथ जाम्भोळाव में गहरी [illegible] थे[3]। पुत्र-विहीन काल्होजी ने अल्लूजी के कहने से पानी पिया था। वे जाम्भोळाव का जल पिलाया और सन्तान युक्त हुए थे[4]।

इस सम्बन्ध में महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि अल्लूजी जाम्भोळाव पर जाम्भोजी से कब मिले। जाम्भोजी के जीवन-वृत्त से तो ऐसा कोई निश्चित संकेत प्राप्त नहीं होता जिससे अनुमान किया जा सकता है। जाम्भोळाव की खुदाई संवत् १५४५ में आरम्भ की गई थी और संवत् १५४८ की चैत्र की अमावस्या को पूर्ण हुई, क्योंकि प्रसिद्ध है कि जाम्भोळाव का मेला वील्होजी ने इसके निर्माण के एक सौ साल बाद संवत् १६४८ में सर्वप्रथम प्रारम्भ किया था। वील्होजी की एक साखी में इसका उल्लेख है[5]।

स्वामी ब्रह्मानन्दजी ने एक स्थल पर इसका निर्माण संवत् १५४५ के भादवा पूरणमासी[6] और दूसरे पर संवत् १५४७ में होना[7] बताया है।

स्पष्ट है कि संवत् १५४८ के पश्चात् ही किसी समय अल्लूजी जाम्भोजी से जाम्भोळाव पर मिले थे। जाम्भोजी के सम्बन्ध में यहाँ पर कवि द्वारा कहे गए कवित्तों में उनकी कवित्व शक्ति, भाषा-सौन्दर्य, स्वानुभूति की गहराई और व्यावहारिक ज्ञान की प्रौढ़ता का पता चलता है। दूसरे यह, कि इससे पूर्व वे अनेक स्थानों पर अनेक प्रकार के व्यक्तियों के प

१–श्री जम्भदेव चरित्र भानु, पृष्ठ १२४–२५ तथा विश्नोई धर्म विवेक, पृष्ठ २७–२८।
२–श्री १०८ श्री जाम्भोजी महाराज का जीवन चरित्र, गुरजनजी कृत, पृष्ठ २९–३३।
३–प्रति संख्या १६३, "जम्भसार", प्रकरण १४ वां, पत्र ४९–५०।
४–वही, प्रकरण १४ वां, पत्र ५४–५५।
५–पहळ मेळ की माह हुई, सौळासै अठताळ।
तेरा धरमी धरम कर, सौरथ कल्यो उजाळ ॥ –प्रति २०१, साखी १०४।
६–श्री जम्भदेव चरित्रभानु, पृष्ठ ११५।
७–अखिल भारतवर्षीय विश्नोई महासभा, तृतीय अधिवेशन, कानपुर, –सभापति पद से दिया गया भाषण, पृष्ठ २७।

रोग-निवारणाय जा चुके थे। इस समय तक यदि उनकी आयु लगभग ४० वर्ष की और संवत १५६० के आस-पास उनका जाम्भोजी से मिलना मानें (जो जाम्भोजी और जाम्भोळाव की बढ़ती हुई प्रसिद्धि को देखते हुए उचित है) तो उनका जन्म संवत १५२० निश्चित होता है। इसका समर्थन सौ वर्ष की आयु में जीवित समाधि लेने वाली बहु-प्रचलित किंवदंती से भी होता है, क्योंकि समाधि-समय संवत् १६२० एक प्रकार से निश्चित हो है। उपर्युक्त कथन के आधार पर अल्लूजी का जन्म संवत् १५६० अथवा १६२० मान्य नहीं हो सकता, जैसा कि अन्यत्र कहा गया है। संवत १५६० में तो वे सर्वप्रथम जाम्भोजी से जाम्भोळाव पर मिले थे और संवत् १६२० में उन्होंने समाधि ली थी।

नाभादास और राघोदास ने अल्लूजी और कोल्हजी को भाई-भाई नहीं बताया जबकि इनकी भक्तमालों के टीकाकारों-प्रियादासजी और चतरदासजी ने ऐसा कहा है। टीकाकारों का यह कथन सर्वथा गलत है। साहबरामजी ऐसा नहीं कहते और अल्लूजी के वंशजों में वे अपने पिता के एकमात्र पुत्र ही माने जाते हैं।

अन्य सिद्ध पुरुषों की भांति अल्लूजी के चमत्कार सम्बन्धी अनेक किंवदंतियाँ भी प्रचलित हैं। अज्ञात कवि रचित एक कवित्त में भी इनका संकेत मिलता है[1]। किंवदंतियों के निष्कर्ष स्वरूप अल्लूजी का प्रारम्भिक जीवन में नाथपंथी योगियों के साथ रहना निश्चित होता है। वे योगी से गृहस्थ बने तथा अपेक्षाकृत बड़ी आयु में उन्होंने विवाह किया। उनके कतिपय कवित्तों में भी नाथ-प्रभाव मुखर है।

इस प्रकार, अल्लूजी के जीवन और काव्य को दो रूपों में समझा जा सकता है— जाम्भोजी से मिलने से पहले-और उसके पश्चात। पहले में वे नाथ पंथ और उसमें स्वीकृत हठयोग-साधना से अधिक प्रभावित रहे और दूसरे में जाम्भोजी और उनके पाँचवें वेद रूप 'सबदों' से। विद्वानों में अभी तक उनका पहला रूप ही प्रसिद्ध रहा है, उनके नाम के आगे "नाथ" लगाना इसी का परिणाम है।

रचनाएँ —अल्लूजी के फुटकर कवित्त और गीत ही प्राप्त हुए हैं। परम्परा से ये कवित्तों के विशेष कवि माने जाते रहे हैं[2]। इनकी ख्याति का आधार कवित्त ही हैं। अद्यावधि इनके ८४ कवित्त और ३ गीत प्राप्त हुए हैं, जिनमें ३८ कवित्त तो विभिन्न हस्त-लिखित प्रतियों में मिले हैं[3], कुछ विभिन्न लोगों से सुनकर और जोगीदानजी के संग्रह से

१-द परचो सासळा, भिडण जीपण जस भाख्य।-
चहुआणा घर खोस, एक मकराणौं राख्य।
अवळो अन तिलोक, धरा जीवण अद धार।
नोपन व॰ नवाब, समर बाईस सधार।
आगियो पूत अहीर न साख चंद सूरज भर।
अ नाथ धरो मिर ऊपर कोड पिसन नासू कर।-श्री जोगीदानजी कविया से संग्रह से।
२-कवित्त अलू दूहै करमाणंद, पात ईसर विद्या चो पूर।
मेहो छंदे झूलण मालो, सूर पदे, गीत हरसूर॥
३-(क) प्रति संख्या ८९ १९३, २०१ २०३ (म) (४), २७१, २७२, २९५।
(ख) प्रति संख्या ६६ (४३) -अनूप संस्कृत लाईब्रेरी, बीकानेर।

एकत्र किए हैं, शेष प्रकाशित[1] रूप में उपलब्ध हैं। इसके अतिरिक्त साम्प्रदायिक मान्यता के अनुसार इन्होंने वील्होजी, सुरजनजी और केसोजी की भांति जाम्भोजी का ऐतिह्य भी लिखा था[2] जो दुर्भाग्य से अब प्राप्त नहीं है। यह भी प्रसिद्ध है कि अल्लूजी चारण और आलमजी ने "सबदवाणी" का 'बृहत् ग्रंथ" लिखकर तयार किया था, किन्तु उसे यवनों ने नष्ट कर दिया[3]। खोज करने पर सम्भवतः और रचनाएँ भी उपलब्ध हों। मोटे रूप से अल्लूजी की रचनाओं का विषयानुसार वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है —

कवित्त, गीत

(क) योग, शान्त रसात्मक, अध्यात्म		(ख) वीर रसात्मक	(ग) मरसिया
अष्टांग योग वर्णन। योग साधना का उल्लेख।	निर्गुण ब्रह्म-माहात्म्य। कृष्ण-माहात्म्य। राम-माहात्म्य जाम्भोजी-माहात्म्य भगवन्नाम-माहात्म्य भगवद्-स्तुति।	राव मालदेव पर हाडा सूरजमल पर (कवित्त, गीत)	राव मालदेव पर
योगी-स्तुति (कवित्त, गीत)			

योग सम्बन्धी अधिकांश कवित्तों में कवि ने घट के भीतर ही परमसत्ता को पहचानने पर जोर दिया है। हठयोग की साधना-परक बातों का वर्णन कर कवि ने इस ओर संकेत मात्र किए हैं —

कहाँ घट टामक कहा मांदळ बमकारो।
कहाँ नाद गडगडै कहा तंत्री झणकारो।
कहाँ ताळ कसाळ कहाँ झूसरो अंबर।
कहाँ गहर गभीर कहाँ भणकै मधुकर।
विण कंठ ग्रीव ठाढो वेयण विर्ण मूरति कासू जुवो।
अचमो एक दीठो अलू, हद माहे बेहद हुवो[4]॥

१–(क) डा० विपिनविहारी त्रिवेदी विचार और विवेचन, पृष्ठ १०१–१०८, लखनऊ, १९६४।
(ख) परम्परा भाग १२, सन १९६१, जोधपुर, में उद्धृत किन्तु इनका आधार नहीं बताया है।
२–(क) स्वामी ब्रह्मानंदजी श्री वील्होजी का जीवन-चरित्र, पृष्ठ १०।
(ख) श्रीरामदासजी श्री १०८ श्री जाम्भाजी महाराज का जीवन चरित्र, सुरजनजी कृत पृष्ठ ३६।
३–स्वामी ब्रह्मानन्दजी श्री जम्भदेव चरित्र भानु, पृष्ठ १८, पादटिप्पणी।
४–मुखश्रुति से। डा० त्रिवेदी कृत 'विचार और विवेचन' में भी प्रकाशित है।

कवि के एकाध कवित्त "उलटवासी' शैली पर रचित भी सुने जाते हैं किन्तु इनकी सख्या अधिक नहीं है। यह परम्परा उनको नाथ पथ से मिली प्रतीत है। एक कवित्त म व अपनी कथनी का अथ नव नाथो से ही पूछते हैं —

भवर भ्रम ऊजळो, हस मैं काळो दीठो।
पाणी मरै पियास पवन तप करै पयटठो ।
अन्न छुधा दूवळो, जड्ड है कप्पड कप्पै ।
तिरिया रोवत देख, थान दे बाळक थप्प ।
लूण अलूणो अत लुखो, सील तेज पावक सरस।
नव नाथ सिद्ध पूछ अलू, जोग स गार क वीर रस[1] ॥

कवि का हाडोभडग पर कहा गया निम्नलिखित गीत[2] तो बहुत ही प्रसिद्ध है। ध्यातव्य है कि गीत म उनकी प्रशसा के साथ योगसाधना परक सकेत भी अत्यत महत्त्वपूर्ण हैं —

अई सेर सुळतान लागां पलक उनमुनि, तोडता खलक सू मोह तागो।
छोडता बळख कर नेर पद्मम छूटी, जोग चकवै अलख हेत जागो ॥ १ ॥
त्रगुण अवलोकि गोरख कृपा हेक तन, जग पावक पवण मेघ झेल ।
मेर गिर चढ बाघ्यो बरत गगन मे, छूट सुमति लगन म हस खेल ॥ २ ॥
बीज गाव द्रव मेघ बादळ बिना, जड बिना तरवरा बसत जागी।
घातिया चोर बाकी जगड घाण मे, विहद निरवांण मे फतह वागी ॥ ३ ॥
तुळीज अधर फरकै धुजा अरस मे तुळीच दरस मे कळप ताई ।
वेद आगम निगम पवन वाचा परै, सूर साचा कर राज साई ॥ ४ ॥
ब्रह्म सुत च्यार अविकार कीन्हो बिजै, परमगति जिका सुकदेव पाई।
नमो हांडीभडग आतमां निवासो (थारो) सातवा सुन्नि मे पातस्याही ॥ ५ ॥

योग सम्बन्धी कवित्तो से उनका इस विषय मे अनुभव झलकता है। इस बात का पता चलता है कि वे पहुंचे हुए योगी भी थे।

अध्यात्म परक कवित्तो मे कवि ने विशेष रूप से दो प्रकार से हरि-महिमा का वर्णन किया है-एक तो राम, कृष्ण और जाम्भोजी की महिमा और उनके प्रमुख कार्यों का पृथक् पृथक वर्णन करके तथा दूसरे भगवान और उनके अनेक अवतार रूपो मे किए गए कार्यों का नामोल्लेख करके, जैसे पूर्व उद्धृत "जेण कसासुर मारियो" वाले कवित्त मे। जाम्भोजी से सम्बन्धित कवित्तों का उल्लेख कर आए हैं। राम और कृष्ण सम्बन्धी दो कवित द्रष्टव्य हैं[3]।

१-श्री जोगीदानजी कविया, सेवापुरा, के सग्रह से प्राप्त।
२-वही।
३-राम पुरा लक धडहडे, समन्द अघो भर पजर।
अनळ झाळ उछळे, घिसे धूवा औलागिर।
कूम करत करद, मये महामण मगळ। (शेषांश आगे देखें)

राम और कृष्ण-महिमा से सम्बंधित कवित्तों से यह न समझना चाहिए कि कवि सगुण ब्रह्म का उपासक है। उपासक तो वह निगु ण ब्रह्म का ही है। विष्णोई सम्प्रदाय में अवतार और अवतार-रूपों का गुणगान मान्य होते हुए भी, अन्तत निगु ण ब्रह्म की उपासना ही चरम ध्येय है। अल्लूजी के राम और कृष्ण सम्बन्धी कवित्तों मे इसी बात का निदर्शन मिलता है जिसका खुलासा उनके जाम्भोजी सम्बन्धी कवित्तों म मिल जाता है कहना न होगा कि सम्प्रदाय की इस मान्यता का प्रभाव राजस्थान के अनेक परवर्ती भक्त कवियो पर किसी न किसी रूप मे पडा।

निगुंण ब्रह्म की उपासना के हेतु अल्लूजी बाह्य-पूजा का त्याग कर केवल नाम-स्मरण करने को ही कहते हैं। उनके लिए राम, कृष्ण, नारायण सब "विसन" क-निगु ण ब्रह्म के ही नाम हैं। बाह्य पूजा किसकी और कसे की जाए, यह उनके लिए दुविधा की बात है। नीचे लिखे कवित्त म कवि ने इसका अत्यन्त तर्कसगत विचार किया है —

> पांणी पाक किम पुणां, मांहि मींडक मछ ब्याव।
> भोजन पाक किम पुणां, उडे माखो ओठाव।
> सुरभी गोबर पाक, करै ओसर चहु आरां।
> काया पाक किम कहां, भीत मळ भरी विकारां।
> ऊपज खप थण मैं अलू, थण परती यो ही विसन।
> अजोणी नाम तोन नमो, किसी भांति पूजां किसन?[1] ॥ २१ ॥

यह पूजा केवल नाम-स्मरण से ही सम्भव है। जत, सत, अष्टांग योग, प्रेम, भक्ति गुरु-ज्ञान सबका सार विष्णु-नाम स्मरण है। उद्धार इसी के जप से होगा। यही मुक्ति का माग है। जीभ के होते इसको छोडना नहीं चाहिए —

> अहो जत अहो सत, अहो सभ्यास वजाण।
> अहो अनळ असटग, जोग मारग औ जांणै।
> प्रेम भगति गुर ग्यांन, सार हरि नांव सभरै।
> कु जविहारी किसन, चरण वासे का चेतारे।

> हूण हाक हेकपण, उलट गढ कियो उदगळ।
> भोदरे मदोवरि तास भै, सपनतर भाया सहम।
> कोपिया राम रांमण सरिस दल सीस गमिस्य दहम ॥ —मुखश्रुति से,

> कृष्ण गोपनारि वित हरण, पम लछण समपण।
> कु जविहारी किसन, लाल वनावन रचण।
> गोवरधन उधरण, पींड पाळण निसतारण।
> जुरासिध सिसपाळ, मिडे भुय भार उतारण।
> जमलोक दरसण परहरण, भोव भांजण जामण मरण।
> योह मिन मलो इह निम अलू, सिवरि नाय असरणि सरणि ॥ —प्रति सख्या २०१

१-श्री जोगान्नजी कविया, सेवापुरा, के सग्रह से।

एम कर स वूतर तरै, एकोतरि कुळ उघरै ।
उरि कठ जीह हु ता अलू, विसन नांव जिन वीसरै[1] ॥ ३० ॥

कवि ने नारायण–नाम–स्मरण को जीवन की सहज और स्वाभाविक क्रिया बना ली है। नाम–स्मरण से उसको असीम आंतरिक आनंद की प्राप्ति होती है जसे सावन मे सघन बादलो के बरसने से मोरो और मेढको को। कवि इसे ही मुक्ति का साधन मानता है। स्पष्ट है कि ऐसी स्थिति वर्षों के अभ्यास से ही सम्भव है। एक कवित्त द्रष्टव्य है —

जिम मोरा ददरा, सघण घण पावस यूठो।
जळ ता मछ वीछोडि, वळे जळ माहि पयठो।
वहे अपूठी नाडि जाणे अमल आएडिया लघो।
मांड घेरत गळमेळ जाण्य खुधियारथ लघो।
आणद हुवौ घट मांहरै, जीव तणो पायो जतन।
नारीयण नांव मेल्हिस नही, रक हाथ चडियो रतन[2] ॥ ३१ ॥

नाम–जप के लिए जाति, अवस्था, बाह्य वेशभूषा और वर्ग–भेद व्यर्थ है, यह तो 'सूरधीर'' का ही काम है।[3] । भौतिक वस्तुएँ असार, अस्थायी और नाशवान हैं। उनसे कुछ समय के लिए शरीर की चमक–दमक भले ही हो जाय, किन्तु चित उज्ज्वल नहीं होता। यह तो नारायण नाम से ही होना है, अत श्वास की डोरी में नारायण–नाम का रत्न बांधकर शृंगार करना चाहिए —

पाट चीर पहरियै मास छठ मेल्हीज।
किसू कूड कथिय, लेइ घट नैडो कीजै।
जै सोवन पहरई, तोई नहै सरसौ आव।
जै चदण चरचियै, तो किसो पुन्य फळ पावै।
उजाळ चित ऊजळ कियो, सास पोई डोरी सघर।
नारियण नांम नीको रतन, कठ बांध सिणगार कर ॥–प्रति सख्या १९३ से।

उपयुक्त उद्धरणों से स्पष्ट है कि कवि हरि नाम–स्मरण को मुक्ति का सर्वश्रेष्ठ उपाय मानता है।

१–प्रति सख्या २०१ से।
२–प्रति सख्या १९३, २०१, २७२। उदाहरण दूसरी प्रति से।
३–कुण हीदू कुण तुरक, कुण काजी ब्रह्मचारी।
कुण मुला दरवेस, जती जोगी जटधारी।
कुण बाळक कुण ब्रघ, कुण राजा कुण परजा।
सूर धीर का काम और का नही अ नजा।
काय जटा तिलक छापा करो, कूडो कमडळ काठ को।
उण ग्रहे माच पाइय अलू, ओ जाप थी आठ को ॥—प्रति सख्या २०१ से।
अंतिम अर्द्धाली—'ओ आठ को' के स्थान पर 'ओ पसेरी आठ को' पाठ भी बताया जाता है।

अध्यात्म-परक कविता में शान्त-रसात्मक भावों की अभिव्यक्ति और भगवान की सर्व-शक्तिमत्ता का वर्णन होना स्वाभाविक है। इस सम्बन्ध में यह कवित्त, जो राजस्थान के लोक जीवन में बहुत प्रसिद्ध है, देखा जा सकता है —

जठ नदी जळ विमळ तठ थळ मेर उलट।
तिमर घोर अपार, जहां रवि किरण प्रगट।
राय करीज रंक, रंकां सिर छत्र धरीज।
अल्लू सास पे सार आस कीज सिवरीज।
चल लहै अघ पगां चलण, मोनी सिघायक वयण।
तो करतां कहा न होय नारायण पगज नयण[1]।

इन कवित्तो में कवि की भगवद्-निष्ठा,-प्रेम, हरिनाम-स्मरण में तल्लीनता और उल्लास की रिमझिम वर्षा सी होती दिखाई देती है, जिससे निसृत अध्यात्म-काव्य निर्झर स्वानुभूति और व्यवहार-ज्ञान के किनारों के बीच मथर गति से बहती, लोक-मानस की अध्यात्म-पिपासा को युग-युगों से शान्त करती आई है।

वीर-रसात्मक मरसिया —वीर रसात्मक ऐतिहासिक कविता चारणों की बपौती है। अत अल्लूजी के लिए ऐसी रचना करना स्वाभाविक ही था। बूंदी के हाडा राव सूरजमल और उनकी कटारी विषयक दो गीतों का प्रकाशन हो चुका है[2]। घटना के समसामयिक होने से इनका रचाकाल सवत् १५८८[3] या इसके थोडा सा बाद होना चाहिए।

जोधपुर के राव मालदेव और उनकी विभिन्न विजयों से सम्बन्धित कवि के २ कवित्त अनूप सस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर की हस्तलिखित प्रति सख्या ९६ में मिलते हैं। प्रथम कवित्त "ज उपर नव लाख सेन आयो गुड पखर" में रावजी द्वारा जोधपुर के किले को शेरशाह से पुन लेने का उल्लेख है। सवत् १६०२ में रावजी ने किला पुन प्राप्त किया था[4]। दूसरे में राव मालदेव को जसलमेर के भाटियों से बैर न करने को कहा गया है। उल्लेखनीय है कि सवत १५९३ में जसलमेर के रावल लूणकरण की बेटी उमादेवडी से राव मालदेव का विवाह हुआ था। सवत् १६०८ में जसलमेर में रावल लूणकरण का बड़ा रावल मालदेव राजा था। राव मालदेव ने उनसे युद्ध ठाना था[5]। कवि का कथन है कि रावजी को ऐसा नहीं करना चाहिए —

बिहु बांह आदमी केम समग्र सोर सह।
घडस प हाथ म घाल, रोस आंहिकार तज रह।

१-प्रति सख्या ८६, १६३, २०१, २७२, २९५।
२-"परम्परा", भाग-१२, जोधपुर।
३-ओझा उदयपुर राज्य का इतिहास, पृष्ठ ७०५।
४-ओझा जोधपुर राज्य का इतिहास पृष्ठ ३१०।
५-आसोपा मारवाड का मूल इतिहास, पृष्ठ १३७, १४१।

भरव झांप भरेव, भाज कांय घट ओ' भाविस।
पावक माहे पस, सहो भाटी सिलाविस।
बड पखं राव रावळ करो, तोड म जैसलमेर तू।
मम करिस म करे मम फर म कर, म कर वर रावळ माल तू ॥

दोनों कवित्तो का रचनाकाल क्रमश सवत १६०२ और १६०८ प्रतीत होता है।

अंतिम दो कवित्त रावजी की मृत्यु पर कहे गए मरसिए हैं। तीसरे मे रावजी के जीवन की प्रमुख घटनाओ, विजयो और कार्यों का उल्लेख करता हुआ, चौथे म उनकी विशेषताओ और उपलब्धियो का शोक भरा वर्णन करता है। रावजी की मृत्यु कार्तिक सुदि १२, सवत १६१९ को हुई थी,[1] अत इनका रचनाकाल भी यही होना चाहिए। इस प्रकार इस समय तक कवि का जीवित रहना सिद्ध है। इसके पश्चात ही किसी समय अनुमानत १६३० म कवि ने जीवित समाधि ली थी। दोनो कवित्त नीचे दिए जाते है —

जिण तुरकांणों जीप, ग्रहि नागौर बडो ग्रह।
नेत वहे जांगळू, सझे सोमा पली सह।
नारनौळ हसार, झेण) कीधा सरपंधर।
पर, दीली, डडोक्र राय साझ रिणयभर।
मेवाड़ धणी, उखडतौ धौंग स त्राण, खगधर।
रिणमल वर उग्राहतें हेड लीयो कुभेण हर ॥ ३ ॥
भगो तोय वाराह राह गिलियो तोय—दणीयर।
लोयणियो तोय सीहें जेगु मथियो तोय सायर।
अण हु ते बीक्रम, घणे बोटीयो बीकोदर।
खोडो तोय हणवत लियो दरसण तोय साकर।
मालदेव राव मांडोवरो, घणं झूझ कटके घणो।
पाखली राव पाडोसीयां, वह चीतो तोय बाहमणो ॥ ४ ॥

मल्लूजी की भाषा में कृत्रिमता का नाम भी नही है, वह तत्कालीन बोलचाल की भाषा है। उनके हृदयोद्गार अनायास ही घरेलू भाषा के माध्यम मे कवित्त रूप मे हो गए हैं। भाषा की सरलता तथा भावो की सच्चाई और सहज-प्रेषणीयता के ग वे जन-मानस मे इतने प्रसिद्ध हो सके हैं।

विष्णोई सम्प्रदाय के चार प्रमुख चारण कवियों म मल्लूजी की गिनती है। चारण कवियो म कालक्रम से तेजोजी और कान्होजी इनसे किंचित् पूर्व हुए हैं। राजस्थानी साहित्य म इनका विशिष्ट स्थान है। हिन्दी की "सत"- भक्ति- काव्य- परम्परा भी इनका समुचित मूल्याकन होना चाहिए।

---

[1] ओझा मारवाड का मूल इतिहास, पृष्ठ १३७ १४१।

३९ दीन महमद (लगभग विक्रम संवत १५२५-१६००)

इनके विषय में प्रामाणिक रूप से विशेष कुछ ज्ञात नहीं हो सका है। सुने-सुनाए आधार का सार यह है कि ये अजमेर के काजी थे और संवत् १५४८ के आसपास अजमेर के मल्लूखां वाली घटना (द्रष्टव्य-जाम्भोजी का जीवन-वृत्त) से प्रभावित होकर जाम्भोजी के शिष्य हो गए थे। इनको जाम्भोजी की ओर आकृष्ट करने में सुप्रसिद्ध विश्नोई कवि काजी समसदीन की भी प्रेरणा थी। ये पहुँचे हुए सिद्ध और रमते राम थे। अपनी रचनाओं में 'काजी महमद' की टेक भी लगाते थे। इनका समय उपयुक्त अनुमित है। हस्तलिखित प्रतियों में प्राप्त (प्रति संख्या २०१ तथा ४०६ में) इनके दो हरजस नीचे उद्धृत किए गए हैं[1]। इनमें सांसारिक माया-मोह, नश्वरता और तृष्णा की प्रबलता बताकर उससे बचने की भावभरी चेतावनी दी गई है।

इनके नाम से अध्यात्मपरक ये दो हरजस प्रकाशित भी किये गये हैं[2] किन्तु इनका आधार नहीं बताया गया है –

१-इण आंगणिये हे सखी हम खेलण आया।
केई खेल्या केई खेलसी केई खेल सिधाया॥ टेक॥ (४ छन्द)।

२-मनवा झूठो रे संसार, लोभी थारी नींदड़ली न परी निवार॥ (५ छन्द)।

इनमें दूसरे के प्रायः सभी छन्द किंचित् परिवर्तित रूप में अन्यत्र भी मिलते हैं[3] वहां इनका रचयिता अज्ञात है। अतः निश्चितरूपेण यह कह सकना कठिन है कि ये अप

१-(क) सुवटा रे मीनकी डर करणा, बाळक गिणे न बुढा तरणां॥ १॥ टेक॥
ऊंचा ऊंचा महल्य साळि रसोई, जहा सुवटा तेरा रहण न होई॥ २॥
सुवटो आय सुषम करि सोवै, या सुवटा कू मीनकी जोव॥ ३॥
या मीनकी कू असी छाज, छत्रपति कू मीनकी ले ले भाजै॥ ४॥
दीन महमद कहि समझाव, या मीनकी ता अलाह छुडाव॥ ५॥-प्रति २०१ से

(ख)-भूलो मन भवरा काई भवं, भव यू दिन सारी रात।
माया री लोभी पिराणियाँ, बाध्यो जमपुर जाय। टेक॥
किण रा छोरू किणरा वाछरू, किण रा माय र बाप॥
ओ जीव जायसी एकलो, साथे पुन 'र पाप॥ १॥
कुंभ काचो काया कारवी, जिण री करतो सार।
जतन करता जावमी, विणसत नाही वार॥ २॥
हस्ती गवर घूमते, लापो चडते लार।
गरब करता गोपै बसता, से जळ बळ होयगा छार॥ ३॥
आडा डूगर वन घणा, सवळो लीज्यो साथ।
थाग हाट न वाणियां, लेणो ईं र हाथ॥ ४॥
नन्दिया गरी वठण लाषणी, पथ पाडा री धार।
काजी महमद वीनव, हरि भजि उतरो पार॥ ५॥-प्रति संख्या ४०६ से।

२-श्री हरियश-मणि-मञ्जूषा, पृष्ठ १२२-१२३, हरजस-२५६, पृष्ठ २२६, हरजस-४५४ -साधु वद्य श्री रामनारायणजी (सिन्थल), बीकानेर संवत् २०१६।

३-राजस्थान रा दूहा, संपादक-श्री नरोत्तमदास स्वामी, पृष्ठ १९१-१९२, सन १९३५।

मूल रूप में सुरक्षित हैं या नहीं, कदाचित् नहीं ही हैं। लोक में अनेक स्थानों पर इनके नाम से अनेक हरजस सुनने को मिले हैं, किन्तु मौखिक परम्परा से प्राप्त होने से उनकी प्रामाणिकता के विषय में कुछ भी नहीं कहा जा सकता।

कवि लोकमानस को आत्मानुभूति से दीपित कर, हरजसों के रूप में लोकप्रचलित भाषा के माध्यम से प्रकाशित करता है। प्रतीकों का वह विशेष प्रेमी है। इनके हरजस इतने प्रसिद्ध और प्रचलित हुए कि अन्य विख्यात संतों ने भी अपने-अपने सकलन-ग्रन्थों में उनको सादर स्थान दिया[1]। इसी आधार पर इनकी और रचनाएँ मिलने की सम्भावना भी है।

४० रायचंद सुथार (लगभग विक्रम संवत १५२५-१६१०)

ये बीकानेर रियासत के, सम्भवतः उसके पूर्वोत्तर भाग के किसी स्थान के रहने वाले साधु थे। 'लूर' में पहला नाम इन्हीं का है, जिससे विदित होता है कि जाम्भोजी की महिमा से अभिभूत होकर ये सम्प्रदाय में दीक्षित हुए। इनकी एक साखी (संख्या-२) में जाम्भोजी के पश्चात हुई विश्णोई समाज की दशा का वर्णन है, जो वील्होजी के सम्प्रदाय में आने से पूर्व (संवत १६११) का होना चाहिए। इस आधार पर इनका जीवन काल उपयुक्त अनुमित है। 'हिंडोलणो' में इनका नामोल्लेख है। साहबरामजी ने इनकी 'कथा' किंचित् विस्तार से दी है (प्रति १६३, जम्भसार, प्रकरण २३, पत्र ४१-४२)। उनके अनुसार, ये एक बार सम्भरायळ पर गए। वहां जाम्भोजी के दर्शन करने से इनके सब संशय दूर हो गए। तब से ये जाम्भोजी के साथ ही रहने लगे और यत्र-तत्र उपदेश भी देने लगे। ये 'अणभै' साखियां कहने वाले भजनानंदी, मस्तमगी साधु हुए। फलौदी के हाकिम से जाम्भोळाव के लिए इन्होंने नगाड़ों की एक जोडी मांगी। हाकिम ने अपने 'मगज के कीडे' निकाल देने के लिए इनसे कहा। इन्होंने जम्भगुरु की भभूत उसके माथे पर लगाई, जिससे सब कीडे झड़ गए'। उसने तब मेले के समय प्रसन्नतापूर्वक जोडी वहां चढाई और 'सूत फिराया'। स्वयं जाम्भोजी इनकी महिमा बखान करते थे। इनका आना-जाना जाम्भाणी स्थानों में ही रहता था। धर्म-नियमों के ये कट्टर पालक थे और दीर्घायु होकर स्वर्गवासी हुए बताए जाते हैं। स्मरणीय है कि प्रकारान्तर से इस कथन की पुष्टि कवि की साखियों से भी होती है।

रचनाएँ —इनकी ये ६ साखियाँ मिलती हैं –

(१) कळिजुग तीरथ थापियो, भाग परापति पांवियो[2]। ४ छन्द, 'छदा की।

१–रज्जबजी की 'सर्वगी' में अनेक संत-सिद्धों की वाणियों के साथ इनकी वाणी भी संकलित की गई है। द्रष्टव्य–दादू महाविद्यालय, जयपुर की हस्तलिखित प्रतियाँ।

२–प्रति संख्या–६८ ७६, ९३, ९४, १४१ १४२, १४३, १५२, १९१, २०१, २१३, २१५ और ३२१।

(२) साम्य सिघारयो बिकृत कियो, पररात रि रितनिद[1] । ४ छन्द, 'रा । का'।
(३) मेर काम्य अवतार हुई, औतार लियो सतारो[2] । -८ पंक्तियाँ, 'रा ना का'।
(४) मेरा मन विणजारला विणजार मेहड़ा कोन जी[3] । -४ छन्द, 'रा । का'।
(५) कांय लागी तेरी मलोड़ो मत, कांय लागी आमण दू मनो[4] ? -४ छन्द, 'राग का'।
(६) गुर सांमेगर अवतार लियो, सभ परमा फेर निवासा ॥[5] -१८ पंक्तियाँ, 'राग की'।

पहली साखी में जाम्भोजी का माहात्म्य तथा तीसरी और छठी में अन्य प्रकार से जाम्भोजी का गुणगान वर्णित है। दूसरी में जम्भ-महिमा में आप उनके पश्चात् हुई बिश्नोई समाज की हीन दशा और उसके सुधार का 'जमात' से अनुरोध किया गया है। चौथी में सांसारिक असारता और मानव-जीवन की नश्वरता बताते हुए गुरु द्वारा पार उतारे जाने का वर्णन है। पाँचवीं में कृष्ण वियोग में व्याकुल गोपियों का विरह और मिलन सान्त्वना का उल्लेख किया गया है। प्रत्येक साखी का एक एक छन्द नीचे दिया जाता है[6]।

१-प्रति संख्या-६८ ७९ ९३, ९४, १४१, १४२, १५२, २०१, २१५।
२-प्रति संख्या-१५२, २०१, २१५, २६३।
३-प्रति संख्या-२०१।
४-प्रति संख्या-१४१, १५२, १५६, २०१, २१५, २६३।
५-प्रति संख्या-७९, ९४, १४१, १४२, १६१, २०१, २६३, ३३८।
६-प्रथम साखी-जिस मोम्य पडव जिगन रच्यो जी, जिग मोम्य सूत फिराइय।
जहां स देवजी नीरथ थप्यो, जीवड़ा काज जाइय।
जीव काजे काढि माटी, पाळे पर परवाहिय।
तेरा हुव मायागु वण व्यडति, सुरग मां सुप लाडिय।
कह रायचंद साति जांणी, उस तीरथ जाइय।
जिस मोम्य पडव जिगन रोप्यो, तांहां सूत फिराइय ॥ २ ॥
दूसरी साखी-तम चाल्या ससार मेल्हा, कांही काही हेल जाणिया।
छुनी गुर पीरी करग तज्या, मुण्यो कुभाण्या ठाणिया।
ठांणी कुभाण्या दुनी विलवी, पूळ सू सग जोडिया।
तमे कही छी वात छुनी, क्यों करि मिल्ं करोडिया।
वाद भर अहंकार बांधियो, नाही दीस साल्हा।
छिमां दया अर भगति छूटी, तमे चालि ससार मेल्हा ॥ ३ ॥
तीसरी साखी-समरथल्य जी समरथल्य गुडी ऊछळी, आयो बिसन मुरारो ॥ २ ॥
किरिया जी किरिया कहि पुरसाई, जिस थ लघिय पारो ॥ ३ ॥
पराई जी पराई नद्या न करो, जाणि लीज क्यों मारो ? ॥ ५ ॥
चहुं जुगा का चहुं जुगा का मोमिए कद मिल, मिल विसन क अवतारो ॥७॥
रायचद जी रायचद बोल बीनती, साधां पारि उतारो ॥ ८ ॥
चौथी साखी-ससार ला मेरा जीव, जे कुछि चाल्ं साथि वे।
ससार वळत झूपड़े, सोई चड कुछि हाथि वे।
सार चडे कुछि हाथि पिराणी, रहदा काम्य य आविसी।
गांठी गरथ न हाथि पजीहा, उर हाको न बुलायसी।
धरम नेम सत सज्मे, अतना आव अरथि वे।
कह रायचद ससार भला है, जे कुछि चल सथि वे ॥ ३ ॥

(शेषांश आगे देखें)

रूप की दृष्टि से चार साखियाँ 'छदा की' और दो 'कणा की' है। पहली और चौथी साखी के प्रत्येक छद मे कवि के नाम की टेक लगती है। जाम्भोळाव माहात्म्य सम्बन्धी प्रथम रचना इसी कवि की है (पहली साखी)। जाम्भाणी स्थान विशेष के वणन सम्बन्धी रचनाओ की परम्परा इसी कवि से चली, जिसमे आगे चल कर अनक समथ कवियो ने जाम्भोळाव, मुकाम, रामडावास आदि स्थानो पर सुन्दर रचनाएँ प्रस्तुत की। गोविन्दरामजी की 'जाम्भोळाव' वाली साखी तो इनकी साखी मे सीधे प्रभावित है।

प्रत्येक जाम्भाणी वस्तु पर कवि की गहरी आस्था और अनुराग है। उसके हृदय मे सम्प्रदाय की पतितावस्था देखकर भारी दु ख है और तद् उत्थान-हेतु वह सतत सचेष्ट और व्यग्र दिखाई पडता है। जाम्भोजी के पश्चात हुई विष्णोई सम्प्रदाय की पतनावस्था का परिचय देने वाला यही एकमात्र हुजूरी कवि है (साखी २)। वीरहोजी के सम्प्रदाय उन्नयन और पुनसगठन सम्बन्धी कार्यों की महत्ता इसी भूमिका पर सही तौर से आकी जा सकती है। इस कारण, साम्प्रदायिक इतिहास की एक कडी के रूप मे इनकी साखी का महत्त्व है।

साखियो की कतिपय पक्तियो पर सबदवाणी का प्रभाव लक्षित होता है। उदाहरणाथ ये पक्तिया देखी जा सकती हैं —

(क) तुठो भु यजळ पारि उतारे, जिण्य हरि सू चित लाविया। साखी-४।
    तुलनीय-सबदवाणी, ४६ ४।

(ख) उत सालि न तीण न बहण न भाई, नावा बाप न माई। साखी-६ ।
    तुलनीय-सबदवाणी क-३१ ६, १०, ख-६६ २५, ग-६५ ३३, ३४।

कवि की भाषा बोलचाल की मारवाडी है जिसमे किंचित् पजाबी प्रभाव भी दिखाई देता है। भाषा की यह प्रवत्ति बाद के केसोजी गोडण आदि अन्य राजस्थानी कवियो की रचनाओ म भी पाई जाती है। रायचन्दजी की सभी साखिया, विशेषत पहली, दूसरी, चौथी और छठी तो न केवल जाम्भाणी साहित्य मे ही, प्रत्युत राजस्थानी-काव्य-परम्परा-म भी अनेक दृष्टियो से महत्त्वपूण स्थान की अधिकारिणी हैं।

४१ कुलचन्दराय अग्रवाल (विक्रम सवत १५०५-१५९३)

सम्प्रदाय म ये सेठ कुनचन्द या कुलचदजी नाम से विख्यात हैं। ये सिवहारा (बिज-

---

पाचवी साखी-श्रीरग किमन वदेस, ताम कारणि सखी री दू मणी।
    दू मणी सखी किसन कारण, क्यों रहू अकेलिया ?
    निस दिव बीजळ गिणौं तारे वीर करत दुहेलिया।
    उधौ सदस कहो हरि सू, मोर वीणि सूनी वणी।
    विछडया सरीरग मिल्या नाही, तास कारणि दूमणि ॥ १ ॥

छठी साखी-जिण्य सपत पयाळ थभिया, थभिया धरण्य अकासा ॥ २ ॥
    च्यारि चक परमोधिया, उजळ सहर के वासा ॥ ३ ॥
    के भीना के कोरा रह्या, सभ पाणी की ओटा ॥ ४ ॥
    परा ले अरथि चडाइय, काम्य न आव षोटा ॥ ५ ॥
    से क्यो अरथि चडाइय, वै नफा न जाण तोटा ॥ ६ ॥

नौर) के रहने वाले सम्पन्न व्यापारी थे। प्रसिद्ध है कि ४० वर्ष की आयु होने पर भी जब इनके सन्तान नहीं हुई, तो किसी के कहने पर, नगीना से जाम्भोजी के दर्शनार्थ सम्भराथळ जाने वाली यात्रियों की जमात के साथ ये भी अपनी पत्नी रामप्यारी सहित चल दिये। वहां पाहळ लेकर विष्णोई हो गए। जाम्भोजी ने इनके दो पुत्र और दो पुत्रियां होने का वर तथा धर्म-नियमों पर दृढ रहने का आदेश दिया। कालान्तर में इनके क्रमशः शान्ति धनो, बिच्छू और इमरती-चार सन्तान हुई। इनकी पुत्री शान्ति सुप्रसिद्ध भक्त चेलोजी से ब्याही गई थी। सिवहारा से ये जाम्भोजी के दर्शनार्थ सम्भराथळ पर प्रायः आते रहते थे। जब दोनों पुत्र और पुत्री इमरती विवाह-योग्य हुए, तो कुलचन्दजी ने जाम्भोजी से इस अवसर पर अपने यहां आने का आग्रह किया। जाम्भोजी ने कहा कि चेलोजी को मेरा रूप समझो। विवाह के समय कुलचंदजी ने जानबूझ कर चेलोजी को अनेक भांति से अप मानित करके उनको परखा और जाम्भोजी के कथन की सच्चाई का अनुभव किया। सं १५९० में जाम्भोजी अपनी अन्तिम भ्रमण यात्रा में सिवहारा भी गये थे[1]। वहां कुलचं जी तथा अनेक विष्णोइयों ने उनका स्वागत किया। कुलचंदजी की अनेक शंकाओं समाधान भी जाम्भोजी ने किया। जाम्भोजी के बैकुण्ठवास के पश्चात् कुलचंदजी ने नगी के पास अपने प्राण त्यागे थे[2]। "३५ पुहं" और "हिंडोलणो" में इनका नामोल्लेख है स्वामी ब्रह्मानन्दजी ने कुलचन्दजी के सम्भराथळ पर विश्राम-भवन बनवाने की बात कहन जाम्भोजी के ७८ वां सबद बोलने का उल्लेख किया है[3]। सबदवाणी के गद्य-प्रसंग "एक पूरब को बिसनोई"[4] और 'पद्य-प्रसंग' में 'कनौज' के 'बिश्नोइयों'[5] द्वारा म मल के बिछौने भेंट किये जाने पर जाम्भोजी के यह सबद कहने का उल्लेख किया गया है यह संकेत कुलचंदजी की ओर प्रतीत होता है।

रचनाएं इनकी दो साखियां मिलती हैं[6] —

१-जागो जागो जांबू दीपे हुई अवाज, सही सोदागर झांभराज आवियो। ४ छन्द।
२-सांभल्य सांभल्य हे मेरी पदमणि माय, सभरथल्य रळो बधावणा। ४ छन्द।

प्रति संख्या १५२ में प्रथम साखी से पूर्व "राग ऊडारथ ॥ साषी हजूरी ॥ कुळचंद जी ॥ छंदो को ॥" लिखा होने से इन दोनों के रचयिता कुलचंदजी ही सिद्ध होते हैं। दूसरी साखी के दूसरे छन्द में तो कवि का नाम भी है। प्रति संख्या २०१ में इनका "राग मारू"

१-द्रष्टव्य -(क) प्रति संख्या ३९०, चेलजी की कथा, पृष्ठ २३, रचनाकार संख्या-१२०
(ख) स्वामी ब्रह्मानन्दजी श्री जम्भदेव चरित्र भानु, पृष्ठ ६१, २७९।
(ग) प्रति संख्या १९३, जम्भसार प्रकरण १६।
२ (क) प्रति संख्या १९३, जम्भसार, प्रकरण १९ और २२।
(ख) प्रति संख्या २०१,-'खड्यारी विगति,"-फोलियो २९९-३०१।
३-श्री जम्भदेव चरित्र भानु, पृष्ठ ६१, ६८।
४-प्रति संख्या २०१।
५-प्रति संख्या संख्या ११२।
६-प्रति संख्या-७६ (ब) ६४, १४१, १४२ १५२, १९१, २०१, २१३, २१५, ^१३, ३२१।

म गेय बताया है।

दोनों साखिया मे प्रकारान्तर से जाम्भोजी के गुण और कार्यों का उल्लेख करते हुए कवि अनेक प्रकार से लोगों को चेतावनी देता है। इनसे कवि की जाम्भोजी पर अपार श्रद्धा और दृढ विश्वास झलकता है। मुक्ति-प्राप्ति उसका अन्तिम ध्येय है और इसी कारण सद्-गुणो को धारण कर, जाम्भोजी के यहा आने का लाभ उठाने की बात वह कहता है। दूसरी साखा क तीसरे छन्द की—**"मेरो मन रातो बोणि पाहि मजीठ, मोमिण होय स विणजियो"** पक्ति पर सबदवाणी (२५ २०, २७ ४७) का प्रभाव लक्षित होना है। साखिया की वर्णन-सामग्री मे भी कवि का व्यापारी होना ध्वनित होता है। उदाहरण स्वरूप दो छन्द द्रष्टव्य हैं —

(१) विणजो विणजो मोम्यण चतर सुजाण, हीर पीछाणई।
मुरिखा मन हठ विणज न होय, परख्य न जाणही।
जाणि पारिख पथ पायौ, परचि पाखड छाडियो।
ससार सळियर मेलिह आसा, अमर आसा माडियो।
साह सतगुर नाव नीवो, प्रीति साट हम लयो।
छोडि छदा भ्रांति परहरि, साघ मोम्यण विणजियो ॥ २ ॥–साखी १, प्रति २०१।

(२) मेळो मेळो करि करतार, साघा मामिणा र म-य रळी।
साह वूठो छ पछयम र देसि, खिव सुवाई कुळाचद बीजळी।
खिव बीजळ झिलमिलती, घटा उजळ सीचई।
कर धारि अचळ आरतो, लाडी खडी पथ उडीकही॥
रतन काया सुरगि सोहै, छोडि जीव ससार नैं।
हसि मिलो मोमिण करो इकायत, मेल्यसी करतार न ॥ २ ॥–साखी २, –वही।

४२ राव लूणकरण (सवत १५२६-१५८३)

इनका जन्म राव बीकाजी की राणी रगकुवरी के गर्भ से विक्रम सवत १५२६ के माघ सुदि १० को हुआ और सवत १५६१ फागुन वदि ४ को बीकानेर की गद्दी पर बठे। सवत १५६६ म इन्होंने बीकानेर के पूर्वोत्तर म स्थित ददेवा का परगना हस्तगत किया तथा सवत १५८३ म नारनौल के युद्ध मे वीरगति प्राप्त की[1]।

ये बहुत प्रतापी और शक्तिशाली राजा थे[2]। प्रजा उनके समय म सुखी और सम्पन्न थी। कवियो और गुणियो का व अत्यन्त आदर और सम्मान करते थे[3]। राव

१-ओझा बीकानेर राज्य का इतिहास, प्रथम खण्ड, पृष्ठ ११२-११६, सन् १९३९।
२-प्रतिपियउ अन्न राजा प्रघट्ट। सातियइ सेन बाजिन सघट्ट।
माडियइ छात्र सप्रति महेस। देसउत नमइ अग्रहइ देस॥ ८८॥
–अज्ञात कृत "जतमी रो छन्द", अ स ला —बीकानेर, ह० प्रति, सख्या १००।
३-(क) इळ राईय करन वारो कि ई द। गुणियणा ग्रिहे बाघा गई द। (शेषाश आगे देखें)

जोधाजी और उनके वंशज प्राय सभी राठौड़ शासकों का घनिष्ठ सम्बन्ध जाम्भोजी से रहा था। राव लूणकरण भी उनके शिष्य थे। प्रसिद्ध है कि बारहट कान्होजी चारण की प्रेरणा पर ये जाम्भोजी के शिष्य हुए थे। गवन्याणी के गद्य, पद्य प्रसग (स्टवर-जाम्भोजी का जीवन-वृत्त) और परमानन्दजी के "रावजी भन्याळा रा नांव" (प्रति सख्या २०१, फोलियो २९९-३०१) म इनका उल्लेख हुआ है।

रचना साहबरामजी रचित "जम्भसार" (प्रति सख्या १९३) के ११ वें प्रकरण में, पत्र-सख्या ११ पर इनकी ५ कविता की एक स्तुति मिलती है (छन्द सख्या ४७-५१)। इससे पूर्व पत्र १० पर "कवत ॥ अस्तुति राजा लूणकरण की ॥" तथा समाप्ति पर यह दोहा है —

एहि विधि अस्तूती करी, लूणकरण नर ईस।
चरन कवळ प्रसत भया, धरयौ जभ कर सीस ॥ ५२ ॥

जब जाम्भोजी द्रोणपुर म राव बीदा को 'परचा देकर' वापस समराथळ पर आ गए, तब वहां राव लूणकरण आए और प्रस्तुत स्तुति की। इसके ठीक पश्चात् ही कुवर प्रतापसिह के घोडा नचाने सम्बधी "प्रसग" का उल्लेख है जो रावजी के अतिम समय की बात है। सवत् १५५०–५५ के आसपास राव बीदा वाली घटना घटने तथा आगे उद्धृत तीसरे छन्द म स्वय के लिए प्रयुक्त "राजा" शब्द से स्तुति का रचनाकाल सवत १५६१ के पश्चात् ठहरता है। अनुमान है कि सवत् १५६६ के आसपास ददेवा-विज के पश्चात् रावजी सम्भराथळ पर जाम्भोजी के दर्शनाथ गए होगे और तभी इसकी रचना की होगी।

जैसा कि नाम से स्पष्ट है, "अस्तुति" म जाम्भोजी को सर्व-शक्तिमान भगवान मानते हुए, गुरु-रूप म उनके गुण, महिमा, काय, देह-वशिष्ट्य, प्रभाव, कृपालुता और उपदेशो का श्रद्धा-भक्ति पूर्वक उल्लेख तथा स्वय को "पार उतारने" की प्रार्थना है। रचयिता के नाम की छाप प्रत्येक कवित्त मे है। कवि का जाम्भोजी सम्बन्धी यह उल्लेख ज्ञात और अज्ञात हुजूरी कवियो की रचनाओ के तद् विषयक वर्णन और साम्प्रदायिक मान्यताओ के अनुरूप ही है। इससे पता चलता है कि कवि प्रत्यक्ष-द्रष्टा था और उसे सम्यक साम्प्रदायिक जानकारी थी। रावजी के बीकानेर राज-घराने के सब प्रथम कवि होने से इस रचना का महत्त्व और भी बढ जाता है। उदाहरणार्थ तीन छन्द द्रष्टव्य हैं —

भक्त मुक्त दातार, जभ जगदीसुर कहिय।
थळ सिर रह्यो सु आय, भाग वड सु लहिय।
ओळखिय आचार, पार कहो कुण ज पाव ?

ताकुआ रेसि सो भाग तति। हिन्दुव राइ दीहा हसति ॥ ६२ ॥
–वीठू सूजा कृत 'छन्द राव जतसी रो', -अ स ला, बीकानेर, ह० प्रति ९९।
(ख) ओझा बीकानेर राज्य का इतिहास, प्रथम खण्ड, पृ० १२१-२२, सन् १९३९।
(ग) गीतमजरी, गीत सख्या ४, ५, पृष्ठ १२-१३, अ० स० ला०, बीकानेर, सवत २००१।

सारा सनमुख रहे, दई नहीं पूठ दिखाव।
ज्ञान कह्यो गुर गम दई, म्हा सू सनमुख देव।
लूणकरण कर जोड कहे, किणि हू न पायो भेव ॥ १ ॥ (४७)
जम गुर सो देव न कोउ सुण्यों न देख्यो।
घ्रत धूप मिष्टान होम कृत नित प्रति पेख्यो।
कर विष्णु उपदेस लेश जिव पाप न राख।
सब दुनियां सू हेत, खेत मुक्ति मुख भाख।
आन देव किए दूर सब, कहे मुखा हरि सेव।
लूणकरण राजा कहे, नमो नमो गुर देव ॥ ३ ॥ (४९)
गुर सो दाता नाहि, परमगति गुर तें पाई।
भवसागर बहे जात, मुकत की न्हाव लगाई।
हर कोई है प्रभाव, वचन हू कोऊ न टाल।
जीव सुजीवा सोधि, परित पहलो की पाळे।
मुकत ज्याज माडी जहीं, खाळक खेवणहार।
लूणकरण तव दास है, प्रभु मोहे पार उतार ॥ ५ ॥ (५१)।

४३ रेडोजो (सवत १५३०-१६२०)

ये अणखोसर के निवासी और जाति के सावक थे। इनके जन्म-काल का निश्चित [illegible]ा नही चलता, अनुमानत सवत १५३० के आसपास हुआ माना जा सकता है किन्तु [illegible]गवास सवत् १६२० मे होना प्रचलित है। रेडोजी की सबसे बडी प्रसिद्धि का कारण [illegible] है कि हजूरी कवियो मे केवल मात्र इन्ही की शिष्य-परम्परा चली, शेष किसी की भी [illegible]ी[1]। जाम्भोजी की विद्यमानता मे ही नाथोजी इनके शिष्य बने थे। जाम्भोजी के [illegible]ग-लाभ के पश्चात ये ही सम्प्रदाय के प्रामाणिक व्याख्याता और विद्वान् माने जाते थे। [illegible]म्प्रदाय मे यह मान्यता है कि जाम्भोजी के अधिकाश "सबद" रेडोजी और नाथोजी के [illegible]ण्ठस्थ थे। साहबरामजी के अनुसार, सम्प्रदाय के धर्म-नियमों का ये बडी दढता और [illegible]यमितता से पालन करते थे। वील्होजी ने मुकाम-मन्दिर पर '१२० सबद' रेडोजी के मुख [illegible] सुने और उनसे प्रभावित होकर सम्प्रदाय मे दीक्षित हुए थे (द्रष्टव्य-वील्होजी)। इसकी [illegible]ष्टि सुरजनजी के एक कवित्त से भी होती है, जिसके अनुसार वील्होजी अपने दादा-गुरु [illegible]डोजी) के 'दीवाण" मे तत्खण तर गए। आदि की दो पक्तियाँ ये हैं -

गुर दादा दीवांणि, तरयो गुर वील्ह ततखण।
भरण सुरेजमाळ, गयो वकुठ बीच खण॥ -प्रति सख्या २०१ से।

---

[1]-(क) चिरत कियो जाण्यु तवो, साधु चाल्या लार।
सारा सग पधारिया, रेडोजी रह्या तिण वार॥ ३ ॥ -प्रति २४४।
(ख) जाभैजी का सिस रेडोजी, नाथोजी इनक नेडोजी।
-जम्भसार, प्रकरण २३, पत्र २४।

सबदवाणी के सुरक्षित रह जाने सम्बन्धी उल्लेख करते हुए प्रकारान्तर से परमानन्दजी ने भी यही बात कही है (प्रति संख्या २०१ और २२७, सबदवाणी की पुष्पिका)। "१५ पुरुष" में इनका नाम ११ वाँ है। "हिंडोलणो" और "भक्तमाळ" में इनका नामोल्लेख है। गुरजनजी ने एक कवित्त में जाम्भोजी से दीक्षित कतिपय प्रमुख विष्णोई सिद्धों को विभिन्न रत्नों की उपमा देते हुए रेडोजी को "रतन" कहा है[1]। इससे रेडोजी की महत्ता, प्रसिद्धि और प्रभाव का पता चलता है।

रचना – कवि की २० पंक्तियों की एक साखी– "जीवड़ा रे क्षण अवसो ओळ अपरपर हेत किय हरि ध्यावौ", मिली है[2]। साखी की रचना जाम्भोजी की विद्यमानता में होने का अनुमान है जिसका संकेत प्रति संख्या १५२ में इससे पूर्व "साखी रेडाजी हजूरी कर्णा की ॥" शब्दों से भी मिलता है।

इसमें हरि प्रेम, जीवन्मुक्ति प्राप्ति, कुसंगति, सांसारिक माया मोह-त्याग, कमाई का दसवां भाग को हरि-हेतु खर्च करने और जाम्भोजी की शरण में आने का अनुरोध है। कवि का मुख्य उद्देश्य लोगों को सांसारिक वस्तुस्थिति से अवगत कराते हुए मोक्ष प्राप्ति की ओर उन्मुख करना है। चेतावनी रूप में कथन की सच्चाई और भाषा की सरलता के कारण यह साखी बहुत प्रचलित और प्रसिद्ध है। उदाहरण स्वरूप ये पंक्तियाँ देखी जा सकती हैं—

अजर जरो मन की मेर चुकावौ तो अमरापुरि पावौ ॥ २ ॥
सुई कै नाकै धागो पोवौ हरि हिरद यों जोवौ ॥ ३ ॥
एकर मरि क बोहड़ि न मरिस्यौ, दिल दरियाव सुढोवौ ॥ ५ ॥
देवजी को दसवंध खरचौ नाहीं, राखो विसन विसोवौ ॥ ८ ॥
खरच्य लाहो राख्य तोटो वीवरनि वीवरसि जोवौ ॥ ९ ॥
साच विसन न वोय न दीज, कारण किरिया न जोवौ ॥ ११ ॥
आज ज मीठी लभ करि लीज तिणरो भळकि विगोवौ ॥ १४ ॥
पुरेख फदीनु कळे मा आयो, कांय जागता सोवौ ॥ १७ ॥
को कहिसी साभळियो नाहीं, कांय न पड़ियो चोवौ ॥ १८ ॥
साखे दिया सतगुर समझाव, आंयू दीप खडोवौ ॥ १९ ॥
गुर परसादे रेडो बोल हरि क चरण आवौ ॥ २० ॥

कतिपय पंक्तियों (संख्या ६, ११, १४, १७) पर सबदवाणी (८४ १, २, ११ ११ ३१ २४ ४, ५५ ३) का प्रभाव स्पष्ट है।

१–अनत जोति गुर आप जास गति लखी न जाई।
रेडो नांव रतन, जेण गुर भति बताई।
नाथो मोती नाव, हीर गुण बीठळराया।
सोनू सुरिजमाळ, कळक नहि लगौ काया।
सुरजिन रूप वाधा सरस, जीव जीव कण जूजवा।
वासली वात जाण विसन, हम हरि सार हुवा ॥२८३॥ –प्रति संख्या २०१।

२–प्रति संख्या ७६ ९४, १४१, १४२, १४३, १५२, १६१, २०१, २६३।

४४ वाजिदजी (संवत १५३०-१६००)

ये भोवराज (कवि सख्या ४८) के समकालीन बताए जाते हैं। राग "जत श्री" मे गेय ५ छन्दो की इनकी एक साखी मिलती है (प्रति सख्या २०१ म)। इसमे ससार की असारता, जीवन्मा, मृत्यु की अनिवार्यता और अनन्तता का हृदयग्राही वर्णन करते हुए, आत्मपरक भावभरी चेतावनी दी गई है। साखी के २ छन्द द्रष्टव्य हैं —

१-सदा न सगि सहेलियां, सदा न राजा देस वे।
सदा न जगपति जीवणां, सदा न काळा केस वे।
सदा न काळा केस जगपति, सोच सांमी मुझि भया।
जीवण अ जळी नीर जेहा, मिलौ माधो करि मया।
मया कीज दरस दीज, पीज प्रेम अघाय वे।
आनन्द उपा इह निसा पीव पड तेर पाय वे।
पाय तेर पड प्यारे, जो आया सो खेलिया।
वाजिद कहै विचारि सांमी, सदा न सगि सहेलियां ॥ १ ॥
२-वेगा विलब न कीजिय, जीव किस दिस लागि वे।
बोहत गई थोडी रही, जे उठि देखू जागि वे।
जागि देखू रही थोडी, असीम ज घटाय वे।
जुरा आग जम पाछ, पिसण पहुता आय वे।
पिसण पहुता आय इसकू, कीज चित सवेरिया।
काम रूप कुलछणी, पीव तोउ साध ज तेरिया।
साध तेरी आण्य घेरी, दादे इसकी दीजिय।
वाजिद कहै विचारि सांमी, वेगा विलब न कीजिय ॥ ५ ॥ (१०८)

ध्यातव्य है कि ये दादूपथी वाजिद से भिन्न कवि है। कारण यह है कि "साखी ग्रथ" (प्रति सख्या २०१) मे केवल विष्णोई कवियो की साखियो का ही सकलन-सग्रह किया गया है (द्रष्टव्य-विष्णोई सम्प्रदाय नामक अध्याय)।

'वाजिद" के नाम से छोटी बडी ६८ रचनाएँ प्राप्त है, जिनकी सूची नीचे दी गई है। इनम से प्रथम ५५ रचनाएँ श्री प्रो० कृपाशकरजी तिवारी (हिन्दी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर) के सग्रह की सवत १७१० मे लिपिवद्ध एक हस्तलिखित पोथी (सख्या २०५) के आरम्भ मे मिलती हैं। इनमे प्रस्तुत विष्णोई कवि वाजिद की उपयुक्त साखी नही है। स्व० पुरोहित हरिनारायणजी के हस्तलिखित ग्रन्थ सग्रह की विभिन्न प्रतियो में २२ रचनाओ का नामोल्लेख है[1]। इनमे से ९ तो इन ५५ मे आगई हैं, शेष का नामोल्लेख सख्या ५६ से ६७ तक किया गया है। ६८ वी का उल्लेख केवल डा० मोतीलाल मेनारिया

१-विद्याभूषण-ग्रन्थ-सग्रह-सूची, पृष्ठ ९, १६, २७, ३०, ५०, ५१, ५२, ६८, ८४, ८८ जोधपुर, सन् १९६१।

ने किया है[1]। इनके अतिरिक्त रज्जबजी के 'सवगी'[2] और जगन्नाथजी के 'गुण गजनामा'[3] नामक सकलन ग्रन्थो[4] मे भी 'वाजिद' की फुटकर साखियाँ उद्धृत की गई हैं। रूप की दृष्टि से यहा "साखी" का तात्पय दोहा ही है। इन सब रचनाओ का पाठ-सपादन और दादूपथी वाजिद स्वतन्त्र अध्ययन के विषय हैं। सूची देने का अभिप्राय दोनो वाजिदो की भिन्नता दिखाने के लिए ही है। इनम "गुन" नामधारी प्राय सभी रचनाएँ दोहे-चौपइयो में हैं।

१-सुमरन को अग, अरिल १६,
२-गुन सुमरन सार, अरिल—२५,
३-गुन रतन माला-छन्द १५,
४-गुन दास किरत—६,
५-गुन गभीर जोग—२६,
६-गुन निरमल जोग—२१,
७-गुन अगम जोग—२९,
८-गुन तत्त निरवाण—१८,
९-गुन दरवेश नामा—२४,
१०-गुन ठरिया नामा—४७,
११-गुन मूरख नामा—२१,
१२-गुन ग्यान पवेरा—४६,
१३-गुन कूर किरत—१४,
१४-गुन आतम उपदेश—६९,
१५-कथा मिहरी मुनीश को—३३,
१६-कथा मिहरी मुनीश को, दूसरी—२४,
१७-गुन वाजिद नामा—१८,
१८-गुन अजब नामा—३०,
१९-गुन कठियारो नामा—६३,
२०-गुन सगुना—६३,
२१-गुन बदीवान किरत—२५,
२२-गुन विनती नामा—२४,
२३-गुन बिलइया नामा—२०,
२४-गुन परपच नामा—२०,
२५-गुन आतम उपदेश—२८,
२६-गुन बरागिनी नामा—२४,
२७-गुन पेम नामा—१७,
२८-गुन पिरम कहानी—१४,
२९-गुन विरह नामा—३२,
३०-गुन आतम परिच—६२
३१-गुन ब्रह्म प्रगास—१५,
३२-गुन साहिब नामा—१२,
३३-गुन छन्द—८,
३४-गुन छन्द, दूसरो—१४
३५-गुन हरि उपदेश—६०
३६ गुन निसानी—१५
३७-गुन भगति प्रताप-२७,
३८-गुन श्री मुपनामा—३०
३९-गुन हीयाली—९१
४०-प्रसन (प्रश्न)—३४,
४१-प्रसन (प्रश्न) दूसरो—१३,
४२-गुन मूरखनामो—२२,
४३-गुन मूरखनामो, दूसरो—१५
४४-गुन ग्यानप बेडा—१७
४५-गुन ग्यानप बेडा दूसरा-१७
४६-गुन दास किरत-१२,
४७-चौपई मन के अग की—१९,
४८-गुन दास किरत—२६,

१-(क) राजस्थान का पिंगल साहित्य पृष्ठ १९२, उदयपुर, सन् १९५२।
(ख) राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृष्ठ ३०० प्रयाग सवत २००८।
२-रज्जब वानी —"महात्मा रज्जब का परिचय', पृष्ठ ६, सम्पादक-डा० व्रजलाल वर्मा कानपुर, सन १९६३।
३-विद्याभूषण-ग्रन्थ-सग्रह सूची पृष्ठ ६८, रा पु म, जोधपुर सन् १९६१।
४-पचामृत, निवेदन, पृष्ठ 'क" सम्पादक स्वामी मगलदासजी, जयपुर, सन १९४८।

४९-गुन निंद्रा अस्तुति निसानी—३१,	५०-गुन विसवास फिरत—२४,
५१-गुन दयासागर—४६,	५२-गुन प्रानी परमोद—१५,
५३-गुन निरमोही नामा—२५,	५४-गुन उत्पत्ति नामो—५०,
५५-गुन मना नामो—४२,	५६-स्फुट दोहे आदि,
५७-वाजिदजी की अरिल,	५८-मियां वाजिद की साखी—१८ अंग,
५९-गुण छरिया नामा—२९,	६०-गुण विरह को अंग—१७०,
६१-पद, जखड़ी आदि,	६२-गुण हित उपदेश—२६३,
६३-स्फुट कवित्त,	६४-गुण श्रीध्रुव नामा—४६,
६५-गुन हरिजन नामा—१९,	६६-गुण नाममाला—२७,
६७-गुण गजनामा—३३४,	६८-राज कीर्तन।

४५ लखमणजी गोदारा (अनुमानत संवत् १५३०-१५९३)

इनकी ५ छन्दों की एक साखी—'सभरि आयो सांम्य सुचियारा साचो धणी' मिलता है[1]। यह राग धनाश्री में गेय "छन्दां की" साखी है।

ये हजूरी कवि थे। मूल में ये गांव रुणिया (बीकानेर से १० कोस पूर्व) के थे किन्तु संवत १५७० में अपने एक बंधु पाण्डू गोदारा के साथ जसलमेर राज्य के खरीगा गांव में आ गए थे। इनके वहां बसने की कथा अत्यन्त प्रसिद्ध है। जब जाम्भोजी रावळ जैतसीजी के आमन्त्रण पर जसलमेर गए तो ये दोनों भी "साथरियों" में थे। रावळजी ने जैतसमन्द की प्रतिष्ठा तथा कन्या-दान का कार्य सम्पन्न होने पर अपने राज्य में विष्णोइयों के बसाने की प्रार्थना जाम्भोजी से की[2]। जब यह बात "जमात" में सुनाई गई, तब इन दोनों ने अपनी मातृभूमि को छोड़कर वहां खरीगा में बसना स्वीकार किया —

वायक फिर्यो जमाते मां, कौळ सतगुर को पाळे।
रावळ सारे वीनती, साईं वीनती सभाळे।
लखमण पाडू धन्य कह्यो सतगुर को कीयो।
तज्य बाप दादे रो भोम्य, जांण देसोटो लीयो।
कुटब कड़ुवो छाडि के, गुर वायक मायं वदियो।
भोम्य छाडि पर भोमे गया, वास खरींग मंडियो॥ १०॥[3]

---

[1]-प्रति संख्या १९१, २०१, २१५। उदाहरण दूसरी प्रति से है।

[2]-सतगुर आगल्य आय, रावळ एक विनती सार।
माग छ एक पसाव उमेद मन उपनी म्हार।
केइक विसनोई देव देस माहर बसावो।
राय्यस रूड भाय, वाहरो म करिस दावो।
रावळ कहै चूकिस नहीं, कौळ बोल रूडा वहिस।
प्रमाण ताहरा देवजी, साच सील ताग वहिस॥ ९॥
-वील्होजी कृत कथा जसलमेर की, प्रति संख्या २०१ से।

[3]-वील्होजी कृत कथा जसलमेर की, प्रति संख्या २०१।

जाम्भोजी ने उनको अपनी जमात में बताते हुए रावळजी को सीख और समाज पर चलने का आदेश दिया[1]। साहबरामजी ने इसका समर्थन करते हुए इतना और लिखा है कि जाम्भोजी की आज्ञा से रावळजी ने दोनों के विवाह भी करवाए। (प्रति संख्या १९३-जम्भसार, प्रकरण १५, पत्र ९-१२)। इससे उनके गृहस्थ होने का पता चलता है। "३५ पुरुष" और "हरिणाकणों" में इनका नामोल्लेख है। जैसलमेर राज्य में विष्णोई-धर्म के प्रचार और व्याख्यान करने वाले ये और पाण्डू पहले विष्णोई थे। जाम्भोजी के वैकुण्ठवास के पश्चात लखमणजी ने भी अपने प्राण त्याग दिए थे। केसोजी ने एक साखी में इसका उल्लेख किया है[2]। साहबरामजी ने जाम्भोजी के बाद "खड़ने वालों" के नामों और स्थानों की सूची में लखमणजी का १,००० आदमियों के साथ कानासर (फलौदी से १५ पश्चिमोत्तर) में "खड़ना" लिखा है (-प्रति संख्या १९३, "जम्भसार, प्रकरण २२, पत्र १४-२१ की सूची)। इससे संवत् १५९३ में इनका स्वर्गवास होना प्रमाणित होता है। वर्तमान में इनकी संतति मीवां की ढाणी, कानासर, राणेरी में है ये लोग "लखाणिया गोदारा" कहलाते हैं।

प्रस्तुत साखी में भगवें वेशधारी, 'एकळवाई' विष्णु-जाम्भोजी के समराथळ पर आने, उनकी महत्ता और दर्शनार्थी जमातियों का उल्लेख करते हुए कवि अपने उद्धार की प्रार्थना करता है। उल्लेखनीय है कि यद्यपि कवि ने मोक्ष-प्राप्ति-हेतु नाम-जप, शील, संतोष, सत्य आदि धर्म-नियमों के पालन का अनुरोध किया है, तथापि सर्वाधिक बल उसने दिल से द्वैत-भावना, 'दुभाँति-त्याग" कर "इकमनिया" होने पर दिया है —

> दुनी आय दीदार देख, अतरि इधक उछाह।
> दिल मां दुजि दुभाति पको साधां देसी साह॥
> ग्यान गुसटि कीज धणी नै, सदा सीळ संतोष।
> इकमनियां सूं एक है, दिव साधां मोख॥

साखी में जमातियों और उनके मेले का सुन्दर वर्णन है जो कवि के प्रत्यक्ष-दर्शन का परिणाम है। उसको अपने "दीन" पर दृढ विश्वास है। उदाहरणार्थ दो छंद नीचे दिए जाते हैं —

> दरगह बोल दीन महर्मा अति मेळ मिली।
> जमात्या का भूळ साखी सबद सुर सांभळी।
> साखी सबद सुर सांभळी जै, परचिया मन पात।
> उतर दीखण पूरब पछम, आय जुडै जमाति।

१-राहि चालै राहि क, आए सतगुर की मान।
जप एक विसन, आन तोफान न मान।
अजर जर्यो जीव काज्य, वर भरम सह भगा॥
लखमण पाडू दोउ आय गुर पाव विळगा।
सहस भुज हुवै संतोषिया, सतगुर सभळा ए कही।
रावळ अमाण छ आगणी, परि विना रुडा वही॥ ११ ॥ -वही।

२-जगो जमाते प्रगटयो भोरड साध वखाण।
लछमण अर पाडू परति, खड्या खरीध जांण॥ २० ॥

भाव साह भेंट धरही, चुतर नर करी चोह।
महमा अति मेळै मिली, दरगइ बोल दीन ॥ महमां अति० ॥ ३ ॥
अब लीजौ अपणाय, टांण सू मत टाळयौ ।
खून बकसि बळि जाव, वांन की पति पाळियौ ॥
यान की पति पाळियो जी, खून बकसि बळि जाव।
दावन पकडयो दीन को, निरजण तो नांव ।
दास लखमण आस तेरी सतगुर थारो सांव ।
जम जोर्खं सू टाळियो खून बकसि बळि जाव ॥ वानं की पति ॥ ५ ॥

४६. आलमजी (आलमदास) (संवत १५३०-१६१०)

-ये ताळवा गाव के आसपास किसी गाव के निवासी और आसनोजी[1] की जाति के गौत थे तथा गान-विद्या म अत्यन्त प्रवीण थे। कदाचित इसी कारण सम्प्रदाय मे ये गायणा कहलाते हैं। गायणो म प्रचलित एक अन्य मत के अनुसार इनकी जाति 'अगरवाल' थी। ये परवर्ती हुजूरी कवियो म से थे और जाम्भोजी के बकुठवास के पश्चात् भी १६ १७ वर्ष और जीवित रहे थे। इनकी रचनाओ से भी यह बात ध्वनित होती है[2] । "भक्तमाल" तथा "हिंडोलणो" मे आलमजी का उल्लेख है। साहबरामजी न जम्भसार (प्रति सख्या १६३, प्रकरण २३, पत्र ३८ ४०) मे "आलम-कथा" दी है जिसका साराश यह है —ये सुरजनजी के शिष्य और गान-विद्या मे अत्यन्त कुशल थे। एक बार ये जसलमेर गए। वहा के राज-कलावन्त इनसे मिलने आए। राग रागिनियो के विषय मे वार्तालाप होने पर इन्होंने कहा तुम तो मूख दिखाई देते हो और अपने गुरु की प्रशसा करते हुए उनको 'गान-अभिमान" न करने को कहा। इस पर उन्होने गायन-प्रतियोगिता करनी चाही। वहा के राजा सालिम-सिंह का प्रधान कलावन्त, कोई "प्रेम" नामक गवया था जो जोधपुर के राजा जसवन्तसिंह का दरबारी भी रह चुका था। उसने शर्त रखी कि जो जीत जाएगा, वह हारने वाले का गुरु माना जाएगा। राजा के सामने आलमजी ने अनेक राग-रागिनियाँ गाईं जिससे वहा रखा एक पत्थर पिघल गया। तब उन्होने अपने "मजीरे" फेंक कर उसमें गाड दिए और बोले कि मैंने तो गाडे हैं, तुम निकालो। यह देखकर वहा उपस्थित आठ कलावन्त तत्काल

१-आसनू कुल आलम भयेऊ। गान विद्या कर मुक्त ही गएऊ।
—प्रति सख्या १६३, जम्भसार, पृष्ठ २३, पत्र ३८।

२-(क) सभरथळ रळि आवणो, तु ही मुकाम तळाव।
भगता मरसौ भाव करि देवजी दया करि आव ॥ २ ॥
गोमिदो गूगळ पेवतो, रमतो या थळिया।
साधा न समझावतो, हू वळि ताह दिना ॥ ५ ॥ हरजस ९।

(ख) तीरथ मोटो ताळवो, जै करि जाए कोय।
दिणि पहराजा उधरयो, साचो सतगुर सोय ॥ ३ ॥—हरजस ५।

उठ कर उनके शिष्य हो गए और 'चळू' लेकर गायणा हुए। आलमजी के साथ ही व कमाते—गाते रहे।

इस कथन म मुख्य ऐतिहासिक उल्लेख हैं। महाराजा जसवंतसिंहजी का समय संवत् १६८३ से १७३५[1] तथा सुरजनजी का संवत् १६४० से १७४८ है (द्रष्टव्य-सुरजनजी पूनिया)। सालिमसिंह नाम के कोई रावल जैसलमेर म नहा हुए। एक सबलसिंह हुए हैं जिनका राजत्वकाल संवत् १७०७ से १७१६ है[2] । बादशाह जहांगीर की आज्ञा स महाराजा जसवंतसिंह ने इन्ही सबलसिंह को गद्दीनशीन किया था[3] । साहबरामजी ने सबलसिंह को ही सालिमसिंह कहा प्रतीत होता है। इस प्रकार, यदि यह कथन ठीक हो, तो आलमजी का समय विक्रम की १७ वीं शताब्दी का अंत और १८ वीं का पूर्वार्द्ध ठहरता है। किंतु यह बात, जसा कि साहबरामजी ने स्वय कहा है, केवल सुने हुए आधार पर कही गई है[4] तथा इसम उस श्रुति-परम्परा पर कोई विचार नहीं किया गया जो आलमजी को हुजूरी बताती है। उद्धृत रचनाओं के अतिरिक्त स्वय सुरजनजी ने ही आलमजी की गायन-वादन म निपुणता की सूचना दी है —**केसो कथा अरथ न करमू, तप सूजो आलमू तांति॥** (गीत, प्रति संख्या २०१)। इस गीत की रचना संवत् १७३६ (केसोजी का स्वर्गवास समय) और १७४८ के बीच किसी समय हुई है। इस समय आलमजी विद्यमान नहीं थे किन्तु उनकी ख्याति पर्याप्त फल चुकी थी। इस प्रकार, आलमजी का काल साहबरामजी की मान्यता के अनुसार न होकर अनुमानत संवत १५३० से १६१० ठहरता है। यदि कवि सुरजनजी का शिष्य था तो वे हुजूरी सुरजनजी (कवि संख्या ७) ही होने चाहिएँ। ये बहुत ही प्रसिद्ध कवि थे। इसका पता इस बात से भी चलता है कि सम्प्रदायेतर कवियों म पीरदान लालस ने भी आलमजी का नामोल्लेख किया है[5] । इनका स्वर्गवास बीकूकोर में हुआ जहां इनको समाधि दी गई। वर्तमान मे गांव जैसला मे आलमजी के वंशज हैं।

रचनाएं इनकी निम्नलिखित (क) ८ साखियां और (ख) १२ हरजस मिलते हैं —

(क) साखियां —

(१) **आवो रळी साधो मोमिणो, रळि करि जमू रचाय**[6] ।

—पंक्ति १३, कणा की, राग सुहब।

(२) **बाबळ रचियो बिमाह, खरतर खरी कमाइय**[7] । छंद ४, छंदा की राग धनासी।

१-प० रामकर्ण आसोपा मारवाड का मूल इतिहास, पृष्ठ १७४, १९०।
२-(क) मेहता उमेदसिंह-"तवारीख" (राज-जसलमेर) पृष्ठ २०-२१ संवत १६८२।
(ख) नणसी की ख्यात, भाग २, पृष्ठ ४४१, ना० प्र० स०, काशी, संवत १९९१।
(ग) हरिदत्त गोविन्द व्यास जसलमेर का इतिहास, पृष्ठ ९४-९७, सन् १९२०।
३-कविराजा श्यामलदास वीरविनोद, पृष्ठ १७६४।
४-अ सो आलम भयो अताई, सु नि जसी कवि गाय बताई।
आलम जंभ लाडलो कह्यो, जंभ लोक म आलम गयो।—जम्भसार, पृष्ठ २३, पत्र ४०।
५-द्रष्टव्य पीरदान ग्रंथावली, "परमेसर पुराण" म, बीकानेर, सन् १९६०।
६-प्रति संख्या-६८, ७६, १४२, १५२, २०१।
७-प्रति संख्या-२०१।

(३) बावो लाड गोरो घर सांवळो, सग ब्याह सजोया[1] । छ* ४, छदा वी, राग धनासी ।
(४) कळिमां कलम फिरी, अब छोडो मेरा[2] । छद ६, छदा की, राग मारू ।
(५) विसन विसन भणि विसन विराणी विसनो विसन वखांणी[3] । दोहे २०, रामगिरी ।
(६) पहल जुगि मछ हुए, कया कया पोरस कीया[4] । छद १०, छदा की, राग सिंधु ।
७) अब ज चलो रे लाल जी न रहो र मयकर नहीं छ रहण को जोग ।
जासू तेरो रीसिबो, ओह चोरांणो लोग, मयकर[5] ॥१॥ टेक । १४ दोह–'मधकर' ।
(८) अब मन करो उमाहो रगीला पारको चालो ज्यो रतन गढे जांय ।
रतन गर्ग री जोति झिलमिल, झिलमिल झिलमिल बीज खिवाय[6] ॥ १ ॥ टेक ॥
–राग मारू, रगीलो ।

पहली माखी म "जमू" रचाने, वहा साधुम्रो से मिलने भ्रौर जीवमुक्ति-प्राप्त करने का उल्लेख है। पांच मासियों (२ से ६) म प्रवतारा भ्रौर जाम्भोजी से सम्बन्धित वर्णन हैं। वर्णन चार प्रकार से किये गये हैं —

१—जाम्भोजी की महिमा के साथ कल्कि भ्रवतार का (२, ४, ५), २—केवल कल्कि अवतार का (३), ३—दसावतार का (५) तथा इनके साथ यत्रतत्र सम्प्रदाय मे मान्य ततीस कोटि जीवा के उद्धार का (६, ७)। सातवीं मे देह की क्षणभगुरता, ससार की असारता, मृत्यु की प्रबलता का वर्णन करता हुआ कवि सुकृत करके वकुण्ठ–प्राप्ति की ओर प्रेरित करता है। आठवी म सुकृत द्वारा वकुण्ठ लाभ करने तथा वहा के सुखो का वर्णन किया गया है।

(ख) हरजस[7] —

(१) पतवो लिखि दे जी हो बाभणा, कहि ऊधो समझाय । ९ दोहे, राग धनासी ।
(२) अब न रहै गोपाल राय तम बिन मेरो जीवडो न रहे ॥ १ ॥ ६ दोहे, राग धनासी ।
(३) बलि जाइय ललाजी क दरसन कू बलि जाइयै ॥ पक्ति ८, राग धनासी ।
(४) असी प्रीति रे मेरा मन करि माधोजी सू प्रीति रे । पक्ति ७, राग धनासी ।
(५) करणी उतरिय पारि करणी मेर जीव को अधार ।
करणी को मोल न तोल, करणी तू दे मेरा साम्य ॥ ७ दोहे, राग नट ।
(६) सभ अचभ तुहारा ओळगु, करा तुहारी सेव ।
अल्ख निरजण पूरो परमगुर, देवा हो अति देव ॥ ५ दोहे, राग गवडी ।
(७) बाळ सनेही बाळमू, बाळापण को मीत ।
नांव लिय ही जीविय, तन मन होय प्रवीत । ७ दोहे, राग गवडी ।

१–प्रति सख्या २०१ ।
२–प्रति सख्या–१५२, २०१, २१५ २६३ ।
३–प्रति सख्या २०१ । तुलनीय–सबदवाणी ६६, ११९ से १२२ सबद तथा ३१ १३ ।
४–५–६–प्रति सख्या २०१ ।
७–पहले १० हरजस प्रति सख्या (क) ४८, (ख) २०१ तथा (ग) २२७ म मिलते हैं, शेष दो केवल (क) भ्रौर (ग) म । इनके अतिरिक्त प्रथम हरजस–पतवो, प्रति सख्या २, ६७, तथा ७६ म भी उपलब्ध है । इनम इसको 'साखी' बताया गया है ।

(८) हरि लियो अवतार आयो घरे पुकार क ।
साहेब सिरजणहार, जिणी उपाई मेदुनी ॥ ५ दोहे, राग ग्रमावची ।
(९) वरसण परसां देव रो, देवजी दया करि आय । ७ दोहे, राग मलार ।
(१०) इहनिस श्रोड रहे मोरी सहियां, सहियां हे मोरी श्रीरग सुजांण । ६ दोहे, समावची ।
(११) रू तोहू बरजि रह्यो मन मेरा ॥
(१२) अव मिल्य जा रे म्हारा पपिया, पयड मत लाए वार ।
सनेमो म्हारो श्रीरग न पहिया । ८ दोहे, राग सुहब ।
सक्षेप म हरजसो के तीन प्रधान वण्य-विषय हैं —
१-जाम्भोजी की महिमा, रूप, गुण, काय और उनके वकुण्ठभास म पश्चात की दशा का उल्लख (६, ८, ६) ।
२-गोपियो का कृष्ण के प्रति प्रेम, विरह-निवदन और मिलन की आतुरता (१, २, ३, ४, १०, १२) तथा
३-हरि-प्रेम और आत्मोत्थान सबधी, जसे हरि-महिमा (४), अच्छी करनी (५), भाव के अनुसार भगवद्-प्राप्ति (७), मन को वश मे करना (११)आदि ।
उपयुक्त रचनाओ के आधार पर आलमजी के विषय म कतिपय बातें उल्लेखनीय हैं-
१-कवि जाम्भोजी को विष्णु ही मानता है । कलियुग म वे मनुष्य के रूप म आए हैं । वे मानव को अजर-अमर और मोक्ष प्रदान कर सकते हैं[१] । विरहिणी गोपी के रूप में भी उसको सवत्र जाम्भोजी का ही रग दिखाई देता है, वे अलख निरजन (हरजस-६, टेक) परब्रह्म हैं[२] । कल्कि अवतार के रूप म वे ही प्रकट होंगे[३] ।
२-सम्प्रदाय म स्वीकृत तेतीस कोटि जीवो के उद्धार सम्बन्धी मान्यता का अनेक जगह उल्लख मिलता है ।
३-मोक्ष-प्राप्ति के लिए आलमजी अच्छी करनी-रहना, जीवन्मुक्ति और निष्काम क

१-कतिपय उदाहरण द्रष्टव्य है —
क-जुगि चौथे विसन आयो, हाथ्य जपमाळी जप ।
साच पुगी लिव लेपो, हुकम हास्यल रिव तप ॥ १ ॥
दाता भी सोई पही पूरो, सुर सभा पुहचावई ।
मानव रूपी फिर कळि मा भेद विरला पावही ।
दीन अर दुनिया को साहेब, विसन कर स होयसी ।
पार घरि पुहचाय झामराय रतन काया होयसी ॥ ४ ॥ —साखी ४ ।
पाच सात नव कोडि वारा, बौहडि नाही फेर हो ।
अजर अमर कर झाभराय पार गिराय वसरहो ॥ ६ ॥-वही ।
ख-चिळन देवा रा कुण लहै, कुण लहै किसन रा माघ ।
अपरपर वोणि कुण लहै, सोवन मडळ री माग ॥ ६ ॥-साखी ८ ।
२-सो सामरि सो मथुरा दवारिका, सब रग कम अचम ॥
कामणिगारो जो हो कान्हवो, मेरो पीव पारवरभ ॥ ६ ॥-हरजस १ ।
३-सम्भि गरड वाहण चढ्यो झामराय सम हेतु बुलाइया ।
दोय चांद सूरिज राष्य मनसा, आरता ले आइया ॥ २ ॥

पर विशेप वल दते हैं[1]। इस हेतु कवि "जमले" मे जाने का अनुरोध करता है क्योकि वहा सत्सगति मिलती है। पहली साखी का तो आरम्भ ही इसी से होता है।

४-कवि न सभराथळ, मुकाम, तळाव आदि स्थानो के माध्यम से जाम्भोजी के उपदेशो का परिचय दिया है।

५-मरुभाषा मे रचित कृष्ण-चरित्र सम्बन्धी काव्यो म विशेपत द्वारका कृष्ण, "रणछोड" का उल्लेख हुआ है, गोपी कृष्ण या रासलीलाधारी कृष्ण का नही। इसके मूल मे प्रमुख कारण सामाजिक मर्यादा का होना प्रतीत होता है। आलमजी के हरजसो मे विरहिणी गोपिया रणछोड कृष्ण को ही अपना सदेश भेजना चाहती हैं[2]।

-आलमजी की कुछ रचनाओ पर सबदवाणी का प्रभाव मुखर है। यह प्रभाव भाव और भाषा-दोनो पर विद्यमान है। उदाहरणार्थ, कवि के अनुसार, जिस नूर से मुहम्मद साहब उत्पन्न हुए, जाम्भोजी मे वही नूर है तथा मुहम्मद साहब के साथ एक लाख अस्सी हजार लोगो का उद्धार हुआ —

जह नूरो महमद उपनू, अह गुर ओही नूर।
भल प्रापति भगता मिल्यो, जाणे दिल मा उगो सूर ॥ ३ ॥
एक लाख असी हजार, दीन महमद आस।
बाबो हाजी रावळ जभजी, खान खोहर अल्हेपास ॥ ५ ॥। साखी ८।

यह बात प्रकारान्तर से सबदवाणी मे भी कही गई है (३९ ८ तथा १० ३)। कवि केसोजी ने भी ऐसा उल्लेख किया है। इससे प्रकारान्तर से इस बात की भी ट होती है कि अद्यावधि गोरखनाथ के नाम से प्रचलित एक छन्द-"महमद महमद[3]"

-कतिपय उदाहरण इस प्रकार हैं —

क-क्रिया कमावो तापरी करणी न घातो हेल।
माझ समाहो आपणा, करि तेतीसा मेळ ॥ १२ ॥-साखी ८।

ख-करणी तो इधक अनूप है करणी का अनत विचार।
करणी को विरळा कर, करणी है तत सार ॥ २ ॥-हरजस ५।

ग-आपरी जमा नयारी मिल्यस्य, जाकी जिसी रहाणी।
मयसा जसी दीसा पति तसी इदरी सही लपाणी ॥ १४ ॥-साखी ५।

घ-जा मतान न पोहई जीवत जे र मराय ॥ ३ ॥
जीवित मर म उबर, पु हच पार गिराय ॥ ४ ॥-साखी १।

ङ-छोडि क्रम निहक्रम हुवा, चालो सोह सगि साथ।
साभल्य जीवडा गुरि कही, मुकति पेत की वात ॥ २९ ॥-साखी ८।

२-क-ऊधो माधो सू कही अस कुछ हम न सुहाय।
वीठ्ठल बोह दिन लाविया, रह्यो दुवारिका छाय ॥ २ ॥-हरजस १।

ख-पाच सात नव बारहा करि ततीसा जोड।
प्रभु मलम मेळो दियो, भगत वछल रिणछोड ॥ ७ ॥-हरजस ५।

ग-जाके वन्न वस चद कोट मेरो मन लागो का ह सू।
भगत वछल रिणछोड, सहिया सिरीरग वाल्हो ॥ २ ॥-हरजस १०।

३-गोरखबानी, पृष्ठ ४, छन्द-६, सम्पादक डा० पीताम्बरदत्त बडथ्वाल, प्रयाग, सवत २००३।

सबदवाणी में भी है (१० वां सबद)। इसके अतिरिक्त, भाषा-प्रभाव की दृष्टि से निम्नलिखित अवतरण द्रष्टव्य हैं —

क-मारेतव नर मरां मरीबो और गुण घोवो मवति करे यम आंगी । ४ ।
माण्यो सीत हरोस्य मारयो, उ म्हां ठांडा पांणी ॥ ५ ।
गुर आप सतोषो, अपरां पोषो, लगर आचारांणी ॥ १ ॥ –गाथा ५ ।
ख–रतन क्या सांव हुओ ज्यों आपा पट्टांव ॥ ६ ॥ –साखी १ ।
ग–आतम के मन गुण गाय गोविंद कूं घोवगो घर अ पेरा । ५ हर० ११ ।

–तुलनीय –सबदवाणी–५६ २१-२४ ९७ १७, ६१ ७८ १ १०, ११, १ १९ और ११६ २ ।

७-कतिपय रचनाओं में भगवद्-प्रेम के गाप पद के भीतर "गगन मंडल में डेरा डालने" का उल्लेख मिलता है। इस मिश्रित भाव-धारा के बीज सबदवाणी में वर्तमान हैं। आलमजी के समकालीन अन्य कवियों-विशेषत मीरां की रचनाओं में भी ये दोनों तथा उल्लिखित कृष्ण-प्रेम-विषयक-तत्त्व विद्यमान हैं, जो सबदवाणी का सीधा प्रभाव है। कतिपय उदाहरण देखे जा सकते हैं[1]।

८-आलमजी की कतिपय उपमाएँ अनूठी और हृदयग्राही हैं। उदाहरणार्थ, काया को मसजिद और मन को मुल्ला बताने वाली यह उपमा—

काया मसीति मन मुलांणो, सिदक एक घोयाइय ।
पढ़ि कतेब, पु रांण करणी, मोल हसा पाइय ॥ ३ ॥—साखी ४ ।

९-कवि ने कतिपय वीर-प्रतीकों और वीर-रसात्मक काव्य-पद्धति को अपनी एक साखी में बड़ी कुशलता से अपनाया है। प्रभाव की दृष्टि से यह योजना अत्यन्त सफल रही है। अप्सराएँ वीर पुरुषों की राह देखती हैं। इसी बात को विष्णु-भक्ता पर लागू करते हुए कवि ने स्वर्ग-सुख का बड़ा सुन्दर वर्णन किया है[2]।

१-क–स्वाति की बूंद पिया सुप उपजै दुप सुख होत नवेरा ॥ ३ ॥
उरि डर होय मगन होय नाच, गिगन किया जाय डेरा ॥ ४ ॥–हरजस ११ ॥
ख–होय करि मगन गगन जाय वसिया जोते जोति समाणी ॥ १६ ॥
अजम कूं दांन मतो प्रभु दीज, कीवि सभा वसाणी ॥ १७ ॥–साखी ५ ॥
ग–निरपत रूडो कान्हवो दे दे नीणा रा झिकोळ ।
मन्यरा भल भोजन पिव इम्रत घल्या कचोळ ॥ ३ ॥
पीरोदिक नारी कुंजर वागो कंथ्यो अति कुंवळ पट चोळ ।
कोड र पायल पेपणा अ नहद रा रमझोळ ॥ ४ ॥–हरजस-६ ।
२–देस सुरगो पारखो, मोमिणा मीत वसाय ।
अरपण वर कामणी, वठी केळ कराय ॥ ३१ ॥
विसन भगति जा म य वस आ देषण वा चाव ।
चितरणी चढी महला पडी हूरा लिय हुलाह ॥ ३३ ॥
करता न कामण्य कहै अरज सुणी म्हारी सांम्य ।
कल्जिुग मा करणी कर आगीजैं इणि ठाम्य ॥ ३४ ॥

(शेषांश आगे दे

४७ रैदास पत्तरवाल (अनुमानतः विक्रम संवत १५३०-१६००)

ये गांव पोळवो (तहसील बिलाड़ा, जोधपुर) के निवासी तथा जाति के पत्तरवाळ गृहस्थ बिश्नोई थे। पोळवी में ही लगभग ७० साल की आयु में संवत् १६०० के आसपास इनका स्वर्गवास हुआ बताया जाता है। ये सत्संग प्रेमी और भ्रमणशील व्यक्ति थे। लिखित रूप में इनकी निम्नलिखित चार फुटकर रचनाएँ ही उपलब्ध हुई हैं किन्तु ये सम्प्रदाय में पर्याप्त प्रसिद्ध हैं। बिश्नोई समाज में इनकी छाप के और भी अनेक 'हरजस' सुनने में आए हैं, पर उनकी प्रामाणिकता के सम्बन्ध में निश्चयात्मक रूप से कुछ भी न कह सकने के कारण यहां उन पर विचार नहीं किया गया है।

रचनाएँ क-हरजस -

१-जो जन ऊधो मोय न विसारै ताहि न विसारूं पाय पड़ी[1] ॥ -४ छंद।

२-लजा तो मोरी राखो जी स्याम हरी[2] ॥ ५-छंद।

३-राज दगा दमड़ी के कुरब मूं डरत मूंड मुंडायो रे[3] । -८ छंद, राग भैरूं।

ख-साखी -पहल पहर रण के विणजारिया, जळम लियो संसारि मैं[4] । -४ छंद।

पहले 'हरजस' में भगवान श्रीकृष्ण का उद्धव के प्रति भक्तों के उद्धार सम्बन्धी दम का सोगाहरण कथन तथा दूसरे में चीर-हरण के समय द्रौपदी की करुण पुकार और भगवान की सहायता का उल्लेख है। तीसरे में 'दगा करने और न कमा सकने के कारण, 'दमड़ी के कुरब में' मूंड मुंडाकर 'स्वामी बनने वाले और बाद में किसी स्त्री को साथ रखने,

---

अचि इम्रत हरि नांव रस, मन मधकर होय सुरंग।
उडि अलमा मधकर मुंवर, मिलि गुर कमं अचम ॥ १४ ॥-'मधकर',-साखी ८।
ख-पथी दोय सुलपणा, सकळ कळा चंद सूर।
एह पटंतर देह न, हरि नेडा वस क दूरि ॥ २ ॥
कोई बताव हरि आवतो, साई म्हांरो पांयलियां।
आरति वूठा मेह ज्यों, पूज मन रळिया ॥ ३ ॥
निरधनिया धनिवाळ हो, आरतो आरतियाह।
यों हरि हमकूं वालहो, ज्यों चंद कमोदनियाह ॥ ४ ॥
जा देसां फळ ना घट, आव स्याम दिसाह।
जीऊं जो प्यारो मिलै, पछम रो पतिसाह ॥ ५ ॥
सेत दीप अराक पड, वसै पछम र देस।
सो जन पग पाहूळ लेऊं, ल्याव वाहु सदेस ॥ ६ ॥
दुल दुल घोड सापतो, आयो स्याम नरेस ॥
तिरलोका रो पेपणों सुरनर सकळ नरेस ॥ ७ ॥
अलमा जोति झिगमिग, मेघाडबर छाति।
कोड़ि तेतीसा रो पेपणों, परसा निकळक पाति ॥ ८ ॥-हरजस १२।

१-प्रति संख्या ६५, १४०, ३३२।
२-प्रति संख्या १४४, ३३५।
३-प्रति संख्या ३३२।
४-प्रति संख्या ७६, ९३, ९४, १४१, १४२, १९१, २०१, २६३, ३१८।

उससे उत्पन्न बाल-बच्चों सहित देश विदेश मे घूम फिर कर मागने, अ त मे 'मडी' म गृहस्थ बन कर रहने और 'गाव-धणी' की खुशामद करने वाले 'ठोठ' व्यक्ति का यथातथ्य एव भावपूर्ण चित्रण है। इससे तत्कालीन समाज मे व्यापक रूप में फले हुए तथाकथित साधुओं की रहनी, करनी और मनोवृत्ति का बहुत अच्छा परिचय मिलता है। साथ ही इसमे किए गए व्यग्य और चेतावनी भी उल्लेखनीय है। उदाहरणस्वरूप यह पूरा 'हरजस' नीचे उद्धृत किया जाता है[1]।

साखी की गणना अत्यन्त प्रसिद्ध साखियो मे है। इसम मानव-जीवन की चार अवस्थाओं को रात्रि के एक क्रम पहर से क्रमश उपमा, और प्रत्येक अवस्था के काय, स्थिति का सक्षेप म सारगर्भित वर्णन करते हुए समग्र जीवन का चित्रण कर चेतावनी दी गई है। प्रत्येक 'छद' नपा-तुला और प्रभाव की दृष्टि से सक्षम है। साखी के अन्तिम दो छन्द द्रष्टव्य हैं[2]। कवि के अनुसार भगवन्नाम-स्मरण करन वाले का उद्धार होता ही है, इसके

१- ॥ राग भरू ॥ राज दग दमडी क दुख सू डरत मू ड मु डायो रे ॥
हाथ मिवरणा पतर तू वडी ले तीरथ कू ध्यायो रे ॥ टेक ॥
विपत पडी जब मू ड मुडायो, सामी नाव धरायो र।
करी माळा चव र गूदडी परडव होय आयो रे ॥ १ ॥
कू डी कुतको होक चींपियो कमर कस उठ वूवो रे।
भोळी भडा और पीजरो जिण माही एक सूरो रे ॥ २ ॥
करम सजोग मिली एक औरत ता सू जुगळ बणायो रे।
पाच च्यार नव मास वदीता, करमकु ड सुत जायो रे।
छोरा छोरी छोड वरागण सग वण्यो है नीको रे।
मूल उनको माग वणायो गोपीचद को टीको रे ॥ ४ ॥
दस प्रदेस फिरयौ ब(न) ब(न) भलो घुमायो घोटो रे।
थयो ममो नित पाठ पढतो रयो ठोठ को ठोठो रे ॥ ५ ॥
मडी बधाय ग्रसत होय बठो तू बा भम्री आफू रे।
मुद नृप सेती कर पुसावद गाव धणी कू बापू रे ॥ ६ ॥
ढढी राडी वाय वावडो, जगत निपावट हूवो रे।
वार मास भटकता जाव, ना जीयो ना मूवो रे ॥ ७ ॥
इण जीवण त जी (वो) मरवो, ना इतरो ना उतरो रे।
कहै रदास भजन विन भम्यौ ज्यू धोबी को कुतरो रे ॥ ८ ॥

२-तीज पहर रण क विणजारिया, तेरा ढीला पड्या पुराण वे।
काया लीवानी क्या कर विणजारिया गढ भीतरि वस्यौ अजाण वे।
वस्यौ अजाण क्या गढ भीतरि, अहळो जलम गुमायौ।
भवको वेर न सुकरत कीयो, बौहडि न औ तन पायो॥
छीनी दह क्या कु मलाणी फीरि पाछ पछताण वे।
जन रिवदास कहै विणजारा, ढीला पड्या पुराण वे ॥ ३ ॥
चौथे पहर रण क विणजारिया, तरी थरहरि कपी देह वे।
आयो हकारौ साम्य का विणजारिया, छोडि पुराणा थेह वे।
यह पुराणा छोडि अयाणा, बाळदि लादि सवेरिया।
जमक आए पकडि चलाए, वारी पूगी तेरिया।
च या अकेला पथ दुहेला, किस सू करै सनेह वे।
जन रिवदास कहै विणजारा, थरहरि कपी देह वे ॥ ४ ॥ (८३)-प्रति सख्या २०१।

लिए किसी विशेष प्रकार की वेशभूषा रखने या 'साधु' बनने की आवश्यकता नहीं है। स्वयं भगवान भी ऐसे भक्त की सहायता करते हैं। ऐसी स्थिति में केवल भक्त ही प्रभुमिलन के हेतु आतुर नहीं होता, स्वयं भगवान को भी उसकी चिन्ता रहता है। कवि ने स्वयं प्रभु से ऐसा कथन करवा कर जनसाधारण को एक बहुत बड़ा आश्वासन और सम्बल प्रदान किया है (हरजस संख्या-१)। रैदासजी का उद्देश्य मनुष्य को चैतन्य करते हुए उसको परमगति प्राप्ति की ओर उन्मुख करना है जिसके दो प्रधान उपाय हैं—नामस्मरण और सुरत।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि उपर्युक्त साखी को, रचयिता के नाम-साम्य के कारण रामानन्द-शिष्य सुप्रसिद्ध संत रैदास (चमार) की रचना समझकर प्रकाशित किया गया है[1], जो भूल है। कहना न होगा कि विष्णोई- 'साखी संग्रह' में केवल विष्णोई कवियों की साखियाँ ही संकलित हैं (द्रष्टव्य-विष्णोई सम्प्रदाय नामक अध्याय)। अतः इस साखी के संत रैदास की होने का प्रश्न ही नहीं उठता। दूसरी ओर संत रैदास के नाम पर संकलित और प्रचलित रचनाओं की प्रामाणिकता संदिग्ध है। इस सम्बन्ध में स्वयं इसके संकलनकर्ताओं का कथन है कि 'संत रविदास की रचनाओं की जो प्रतिलिपियाँ प्राप्त हैं, उनकी प्रामाणिकता संदिग्ध है' (संत रविदास और उनका काव्य, पृष्ठ ८८-८९)। 'इस पुस्तक में प्रामाणिकता की दृष्टि से 'गुरु ग्रंथ साहब' को प्राथमिकता देते हुए 'पचवानी', 'रैदासबानी' और सर्वांगी' आदि की प्रतिलिपियों के तुलनात्मक अध्ययन के द्वारा इनका (रचनाओं का) सम्पादन व शोधन किया गया है' (वही, पृष्ठ ९१)। 'रैदास-बानी' का लिपिकाल संवत १८५५ बताया गया है (वही, पृष्ठ ८९) किन्तु 'सर्वांगी' का नहीं। 'सर्वंगी रज्जबजी द्वारा एक एक अंग पर कई-कई महात्माओं की उक्तियों का संकलन है जिनका रचनाकाल संवत १६५० से १७४० के बीच माना जाता है[2]। गुरुग्रंथ साहब में संत रैदास के ४० पद संगृहीत हैं, जिनमें प्रस्तुत साखी नहीं है[3]। इस संबंध में श्री परशुराम चतुर्वेदी का कथन भी ऐसा ही है – 'रैदासजी की रचनाएँ केवल फुटकर रूप में ही मिलती हैं और उनका कोई पूरा प्रामाणिक संग्रह अभी तक उपलब्ध नहीं है। इन दो संग्रहों (आदि ग्रंथ और

१-मयश्री स्वामी रामानन्द शास्त्री और वीरेन्द्र पाण्डेय संत रविदास और उनका काव्य, पृष्ठ १०८, पद २८, ज्वालापुर, हरिद्वार, संवत २०१२।

२-क-रज्जब बानी, पृष्ठ १० सम्पादक-डा० ब्रजलाल वर्मा, कानपुर, सन १९६३।
ख-डा० ब्रजलाल वर्मा संत कवि रज्जब (सम्प्रदाय और साहित्य), पृष्ठ १७५, १८७, जोधपुर, सन १९६६।
ग-"राजस्थान" वर्ष-१ संख्या ३ संवत् १९९२ में महात्मा रज्जबजी" निबन्ध।

३-आदि श्री गुरु ग्रंथ साहिबजी, प्रकाशक-भाई जवाहरसिंह कृपालसिंह बाजार माई सेवा, अमृतसर, (दो जिल्दों में)। इसमें प्राप्त संत रैदास के ४० पदों का विवरण इस प्रकार है (पहले पृष्ठ संख्या और बाद में कोष्ठक में पद संख्या दी गई है) —
जिल्द—१ पृष्ठ ९३ (१), ३४५-४६ (५), ४८६-८७ (६), ५२५ (१), ६५७-५९ (७), ६९४ (३) ७१० (१) = २४ पद।
जिल्द—२ पृष्ठ ७९३-९४ (३), ८५८ (२), ८७५ (२), ९७३ (१), ११०६ (२), ११२४ (१), ११६७ (१), ११९६ (१) १२९३ (३)=१६ पद। कुल ४० पद।

लवेडियर प्रेस के सग्रह ग्र थ) के पदो म पाठभेद बहुत अधिक दीख पडता है और इसका तिम निर्णय प्रामाणिक हस्तलेखो पर ही निर्भर है।' (सत काव्य, पृष्ठ २११)।

४८ भींवराज (अनुमानत सवत् १५३०-१६००) साखी।

भींवराज अपरनाम "भींयें" का उल्लेख केसौजी (कथा चित्तोड की) सुरजनजी कथा परमिध, कथा औतार की) आदि कवियो न किया है। केसौजी के अनुसार, दिल्ली का एक बडा 'शाह' निपुत्र था। उसने पता नहा किसी से माग कर या मोल लेकर, एक बालक को गोद लिया। बालक के परिवार का कुछ पता नही, लोगो के मु ह से सुना कि लुहार का था। उसको पढने के लिए बनारस भेजा गया, जहा उसने तीस वप तक भली-भाति विद्याध्ययन किया। गुरुदक्षिणा-स्वरुप तीन सौ रुपये भेंट कर वह दिल्ली आ गया और व्यापार करने लगा। विष्णोइयो की एक 'जमात' स जाम्भोजी के विषय म सुनकर उसने उनके "अवतार" होने की कटु आलोचना की। दूसरी बार ६ महीने बाद विष्णोइयो के लंघन करने और "धरणा' देने पर वह उनके साथ मन म चार "द" विचार कर जाम्भोजी के पास सभराथळ चला। उन्होने उसके प्रश्नो का उतर और "द" का रहस्य बताया तथा "सोवन नगरी' दिखाई। इससे उसका भ्रम दूर हो गया[1]।

वतमान म इनके विषय मे सम्प्रदाय म भी व्यापक रूप से यही बात प्रचलित है और ये लुहार के लडके निश्चित रूप से मान जाते हैं। उपयु क्त घटना सवत १५७२ के आसपास अनुमित है (देख-जाम्भोजी का जीवन-वृत्त)। इस समय इनकी अवस्था ४० ४२

१-सुन का दुप दिल माह कहै साह सहरि एक दिली रहै।
घर गरथ लपमी औतार, सोदो सूत वन्दौ वोपार ॥ ५३ ॥
मान तणा मन मा अ गराय, एक बाळक जोय ल्यायो जाय।
मोलि लियौ क माग्यो जोय, मा विधि सतगुर जाण सोय ॥ ५५ ॥
परमसर जाण परवार लोगा क मु हि सुण्यौ लुहार।
भागवत भीया निज नाव, साह सबल की आयो साव ॥ ५६ ॥
आणन्द करि दिल आणी असो बाळक लेग्या वाणारसी।
चक्रधर वायक वसिया चीति, तीस वरस पढिया करि प्रीति ॥ ५८ ॥
घण पढियौ आयो घर,मन रहस्या वाप र माय।
कुळ मारग लार रह्यौ पिंडत लाग पाय ॥ ६२ ॥
नीया विधि सू कहै विचार, आप तणो नाही अवतार।
कालिग पिसण कर परहार, कलिजुग मा एकौ अवतार ॥ ६७ ॥
घरि उपरि परगट नही घणी, भींयो कहै भरमाया कणी ॥ ७४ ॥
जमाति कहै कावळ क्या कही, तह विणि चाल्य चाल नही ॥ ७५ ॥
च्यारि दद्दा दिल हू लह्या, करू जुगति सू जाप।
भोलो भागो भीय को, तदि ओळखियो आप ॥ ८४ ॥
सोवन नगरी नजरि दिखाय, तो जाणौं तेतीसा राय ॥ ९९ ॥
करता की कथ मानी कही, सभरा नगरी दीठी सही।
घर मिन्दर हरपिय हिडोळ, भीय तणा मनि भागी भोळ ॥ १०५ ॥-कथा चित्तोड की।

सार की मान्यता से जन्म संवत १५३० के लगभग ठहरता है। इनके स्वर्गवास-काल का निश्चित पता नहीं है। अनुमानतः संवत १६०० के आसपास रहा होगा। "२४ सूर" और "हिंडोरणी" में इनका नामोल्लेख है। "भाणगाळ" (प्रति संख्या २१६) में "माया पडित वडो गुजाण' शब्द पर द्वारा गुण भी बताया गया है।

रचना -इनकी ४ पद्यों की 'धुन की" १ साखी मिलती है[1]। इसमें कवि ने मन को अनेक प्रकार से समझाते हुए कुसंगति और अन्य देवोपासना-त्याग, केवल विष्णु का जप और शरण-ग्रहण तथा गुरु के वचन का भाव-भरा अनुरोध किया है। कवि ने अत्यन्त सहज भाव से, प्रवाहपूर्ण सरल भाषा में मोक्ष-मार्ग बताते हुए मन को उस ओर प्रवृत्त करना चाहा है। विष्णोई साखियों में तो यह साखी बहुत प्रसिद्ध रही ही है, राजस्थानी गेय पद-परम्परा और उसके एक रूप की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है। रचना नीचे उद्धृत है -

रे विणजारा न करि पसारा, ताँड हुई नियारो।
थारी काजि समाहे मनवों, नायक नर निरहारो।
नायक नर निरहारो मनवों, खालिक खेवण हारा।
किरिया से किरियाणों नांणो, पारि उतरि विणजारा ॥ १ ॥
रे बोपारी करि दिल इकतारो, वाचा थीर सभाळी।
ओवरि कोळ कियो मन मेरा, उदयो वसवद टाळी।
वसवद टाळी खरतर चालो, निपजयो नर निरहारो।
इण विधि लाभ हुव मन मेरा, पारि उतरि बोपारी ॥ २ ॥
रे मन चंगा तजी कुसंगा, साध संगत रळि चालो।
अजर जरो भोवसागर तरियें, जिभिया मूठ ज पालो।
तन का तसकर वस करि मनवों, निजवट न्हाई गंगा।
आंन देव अभिमांन परहरो, तो जाणों मन चंगा ॥ ३ ॥
रे मसवासी जपि अभनासी, ध्यांन धणी सूं लाई।
ओळखि अलख अमर गढ चालो, जुरा न पुहचे जाई।
जुरा न पुहच जम की गम नाहि, सुरां सुरपति निवासी।
भींवराज विमन क सरण, मन हुवो मसवासी ॥ ४ ॥ १६ ॥-प्रति संख्या २०१ से।

४९ दीन सुदरदी (अनुमानत विक्रम संवत १५३५-१६००) साखियाँ।

ये हुजूरी कवि और सुप्रसिद्ध कवि काजी समसदीन के पौत्र थे। इन्होंने स्वयं ऐसा उल्लेख किया है -"बोल दीन सुदरदी पोता समसाणा ॥" ८ ॥ (प्रथम साखी)। दूसरी साखी में केवल 'पोता समस' से ही अपने को सूचित किया है -"भला पोता समस बोलियो कळि दसवं अवतारो हम विणजारडिया ॥" १५ ॥ समसदीन का समय संवत् १४९० से

1-प्रति संख्या—६४, १४१, १४२, १४३, १६१, २०१, २१३, २१५, ३२१।

१५५० है। (द्रष्टव्य–कवि सख्या २)। यदि एक पीढी के लिए २२–२३ साल का समय मानें, तो इनका जन्म सवत १५ ५ के लगभग ठहरता है। इनका स्वगवास नागौर म सवत् १६०० के आसपास हुआ बताया जाता है।

रचनाएँ इनकी तीन "करणा को" साखिया उपलब्ध हैं[1] —

१–भाव सुभाव कर जो गुर वाडी वाही ॥ १ ॥ ८ पक्तियां।

२–अला मेरो मन खरो उमाहियडो,
सांम्य मिलण दीदारो। हम विणजारडियां। १५ पक्तियां।

३–दिल चगा मन चांदिणो चांदिणो, ते मोमिण दीदार जो ॥ गुर कायमा ॥ १७ पक्तियां।

पहली साखी मे मन को वश म करने, दूसरी मे जम्भ–गुणगान और कल्कि–अवतार तथा तीसरी मे मन–शुद्धि और सासारिक क्षणभगुरता आदि का अनेक प्रकार से वणन है। तीनों के कतिपय उदाहरण नीचे दिए गए हैं[2]।

१–प्रति सख्या २०१, २६३।

२–क–किरिया हरि हुई जी, फळ फूल्य सुवाई ॥ २ ॥
काळा सा मिरघलडाजी, घट उजळ पेटा ॥ ३ ॥
चोरी जाय कर जी बीराण पेला ॥ ४ ॥
काहे की घणपलडोजी, काहे का बाणा ॥ ५ ॥
सत की घणपलडी, गुर के वच बाणा ॥ ६ ॥
मन मारया मिरघलडाजी, नही दीया जाणां ॥ ७ ॥–पहली साखी, प्रति २०१।

ख–अला हम विणजारा पूर साह का, विणज करण वोपारो ॥ हम विणजारडिया ॥२॥
अला पोटा पोटा विणज न वोहरां, माणिका दावो पारो ॥ हम ॥ ३ ॥
अला इह जुगि पहल मोमिणा, मत वठो पडि हारो ॥ हम ॥ ४ ॥
अला इह जुगि दूज मोमिणा, जीवडा चेति सभाळो ॥ हम ॥ ५ ॥
अला इह जुगि तीजै मोमिणा, होय चालो हुसियारो ॥ हम ॥ ६ ॥
अला इह जुगि चौथ मोमिणां, अब जीवां की वारो ॥ हम ॥ ७ ॥
अला मेघाडबर छतर धर, दुल दुल होय असवारो ॥ हम ॥ ९ ॥
अला हाथि तिधारो पडग लिव, दाणवा कर सघारो ॥ हम ॥ १० ॥
अला धरणि तांव की हुबली ठणवय बजावण हारो ॥ हम ॥ ११ ॥
अला हस उड टोळी रव, रुधिय भु य जळ पारो ॥ हम ॥ १२ ॥ –दूसरी साखी।

ग–दिल चगा मन चादिणो चादिणो, ते मोमिण दीदार जी ॥ गुर कायमां ॥
सुकरत वधो गाठडी गाठडी जीवडा का आधार ॥ २ ॥
पाच वखत करि वदगी वदगी, रोजा राखो तीस जी ॥ ३ ॥
देव दसु थ छूट नही छूट नही, सही विसोवा वीस ॥ ४ ॥
किसका माई धावला बावला, किसका पप परवार ॥ ७ ॥
माय कहै मेरा पुत है पुत है, बहण कहै मेरा वीर जी ॥ ८ ॥
इस म पियारी घोर मां घोर मां, कोण बधावै पीर जी ॥ ६ ॥
गोवळ आया गोवळी गोवळी, गोवळ छा दिन च्यारि ॥ १२ ॥
सुरग हमारै झु पडा, झु पडा हां है आघोचारि ॥ १३ ॥
नगी कराई रूपडो रूपडो, जदि तदि होय विणास ॥ १६ ॥
बोले दीन सुन्दरी सुदरदी, अळप जीवण ससारि ॥ १७ ॥

कवि के मन–मृग और विएाज सम्बधी कथन (पहली साखी) सहज ही ध्यान आकृष्ट करते हैं। खेत का रूपक तो सर्व-ग्राह्य है और इसी कारण यह साखी श्रेष्ठ जाम्भाणी साखियों में से एक है। इसमें ये प्रतीकार्थ हैं —

वाडी (खेत)=हृदय। बीज बोना=गुरु-प्रेम और निष्ठा। फसल=सत्कार्य। कालामृग=मन। धनुष=सत्य। बाण=गुरु-वचन।

परवर्ती कवियों में ऐसे रूपक वील्होजी ने बांधे हैं। हजूरी कवियों में केवल इसी कवि ने ही पूरे एक पद में मन–मृग मारने का रूपक बांधा है। इसी परम्परा में आगे चल कर हरजी वणियाळ ने मन पर बहुत सी साखियाँ लिखीं। विणज सम्बन्धी उल्लेख कवि की अपनी कल्पना है। कल्कि–अवतार वर्णन में पूर्व–परम्परा का ही अनुसरण किया गया है। इन दोनों के बीज सबदवाणी में विद्यमान हैं। तीसरी साखी की ७, ८ और ९ पंक्तियों पर सबदवाणी का प्रत्यक्ष प्रभाव है (३१ ६, १० तथा सबद ८३)। "गोवळ वासो सम्बन्धी कथन (पंक्ति–१२) का आधार भी वही है (५१ ३३–३६, ८४ १५)। इससे कवि की सबदवाणी पर श्रद्धा झलकती है। आत्मोद्धार हेतु मन को वश में और सुकृत करने का संदेश कवि ने दिया है।

तीसरी साखी के पाठ संबंधी कुछ बातें उल्लेखनीय हैं। इसकी निम्नलिखित चार पंक्तियाँ किंचित परिवर्तन के साथ कबीर के नाम से (दो दोहों के रूप में) मिलती हैं[1] —

साहिब मेरा वाणिया, वाणिया सहज्य कर वौपार ॥ ५ ॥
वीणि डाडी विणी पालड पालड, तोल्यो सोह ससार ॥ ६ ॥
मैं कुता तेरे नांव का नांव का, मोतिया मेरा नांव ॥ १४ ॥
गळ हमारे रासडी रासडी, जांहां खांचें जहां जांव ॥ १५ ॥

इस सम्बन्ध में अधिक सम्भावना यही है कि ये दोनों दोहे अपभ्रंश–काल से ही लोक में बहु–प्रचलित रहे होंगे और उसी स्रोत से ये दोनों कवियों की रचनाओं में अलग-अलग रूप से सम्मिलित कर लिए गए होंगे। इसी प्रकार, नीचे की दो पंक्तियाँ ऊदोजी नैण की एक साखी में हैं (द्रष्टव्य–ऊदोजी नैण, कवि संख्या ३७) —

किसका मेंडी मडपा मडपा, किसका ए घर बार ॥ १० ॥
सांईजी की मेंडी मडपा, अलख तणों घर बार ॥ ११ ॥

ऊदोजी नैण इनसे ३०–३५ वर्ष बडे और अत्यन्त समर्थ कवि थे। आश्चर्य नहीं कि उनकी संगति और प्रभाव के कारण प्रस्तुत कवि ने ये पंक्तियाँ सहज रूप से अपनी साखी में भी सम्मिलित कर ली हों। लिपिकार के कारण भी ऐसा मिश्रण सम्भव है।

१–क–कबीर ग्रंथावली, सम्पादक डा॰ श्यामसुन्दरदास, पृष्ठ ६२, दोहा–८ तथा पृष्ठ २० दोहा १४, ना॰ प्र॰ सभा, काशी संवत् २०१३।
ख–कबीर-ग्रंथावली, डा॰ पारसनाथ तिवारी, प्रयाग विश्वविद्यालय, सन १९६१, पृष्ठ १६५, दोहा–१० तथा पृष्ठ १६१, दोहा–१।

५० मेहोजी गोदारा थापन (सवत् १५४०–१६०१)

ये भोजास गाँव के सेखोजी गोदारा के दूसरे पुत्र थे। सवत् १५४२ मे सम्प्रदाय-प्रवतन के समय जाम्भोजी ने सेखोजी को थापन नियुक्त किया था। उस समय मेहोजी की आयु २ साल की बताई जाती है। सेखोजी के शेष दो पुत्र थे-चैनो और चाहू[1]। मेहोजी बडे होने पर रूणिया गाव मे रहने लगे थे। प्रसिद्ध है कि लगभग पतीस साल की आयु म सवत १५७५ के आसपास इन्होंने अपनी "रामायण" की रचना की। इनके जागळू म जान और बसने की कहानी बहुत ही प्रसिद्ध है।

जाम्भोजी के वकुण्ठवास के पश्चात् उनके समाधि-स्थल पर ताळवा गाव मे उनके प्रिय शिष्य पडियाळ के साधु रणधीरजी बाबल ने वतमान मुकाम-मन्दिर बनवाना आरम्भ किया। इसकी नीवें सवत १५९३ के पौष सुदि २, सोमवार को रखी गई और सवत् १५९७ के चत सुदि ७, शुक्रवार को मुख्य मन्दिर बनकर तयार होगया। तब चनोजी थापन ने उस पर अधिकार करने एव स्वय पुजारी और प्रबन्धकर्ता बनने की इच्छा से रणधीरजी को भोजन मे विष देकर मरवा डाला[2]। भेद खुलने पर प्राणो की आशका जानकर वह अयत्र चला गया। उसने दूसरे सम्भव हक्दार मेहोजी को भी मरवाने की सोची। इसका पता महाजी को लग गया। चैनो की स्वाथ-प्रवत्ति देखकर, पवित्र धार्मिक वस्तुओ को उसके चगुल स बचान के लिये वे समाधि-मन्दिर म रखी हुई जाम्भोजी महाराज के उपयोग की तीन वस्तुएँ-चोला, 'चापी' (भिक्षापात्र-'डिबिया') और टोपी लेकर सपरिवार इसी

१-भोजास गाव अग्र जात गोदारो। सेखो नाम जभ को प्यारो।
रय को बलवान वड भारी। थापन कीनऊ ताहि विचारी।
ब्राह्मण इह अस्थापण कीन्हा। कमकाड करहू केहि दीन्हा।
सेष क पुत्र भए तीना। मेहो चनो चाहू प्रवीना।
–प्रति सख्या १९३, जम्भसार, प्रकरण ६, पत्र २६।

२-सतरा मास एहि विध भए। छाजा दिया निकाल।
काम बहुत सो होय गयो, तब रचियो कपट जजाल ॥ ४४ ॥
थापना मन माहि विचारी। साध रहै याके पूजारी।
अपणा पूजा कछुव न आव। साध पथ के गुरु कहाव ॥
तात याकू मार गिरावौ। तो मद्र की पूजा पावो।
एहि विधि कपट रच्यौ जन सारा। पाच दिना में याकू मारा।
याकू मार अरु मद्र करावा। तो मद्र की पूजा पावा।
वखतू रुकमा थापन दोई। रणधीरजी की चेली होई।
रणधीरजी अस बोलत भएऊ। इह ले गू ठी औरन मत दएऊ।
अस कहि गू ठी बकस भएसी। जस भावी तसहि बुधि रहसी।
ता दिन चनं निवतो दीनो। भोजन करयो भहर सू भीनो।
जीमत ही मूर्छा भई भारी। गए जहाँ गुर जभ मुरारी।
हालदास रेडोजी पासा। मृतक देप भए बहुत उदासा।
तन कृपा कर राज पुकारा। स्रग मे थापन गए सारा।
–वही, प्रकरण २२, पत्र २४।

साथ संवत् १५९७ में जांगलू की ओर रवाना हो गए। वहां के धनराज भाटी ने उनको सब प्रकार से सम्मान प्रदान करते हुए आनन्द आग्रहपूर्वक अपने यहां बसाया। वहां मेहोजी ने एक छोटा सा मन्दिर बनवाकर जाम्भोजी का भेष पधराया। पीछे उसी स्थान पर वर्तमान जांगलू का मन्दिर बनाया गया जिसकी नींव मनरूपजी साधु ने संवत् १८८३ के चैत सुदि ९, सोमवार को रखी[1]। यह मन्दिर "पिछोवड़ो" कहलाया क्योंकि मेहोजी यहां पिछोवड़े (पीछे से) ये वस्तुएं लाये थे। प्रति अमावस्या को यहां बड़ा हवन होता है। कुछ समय पश्चात् वर्षों ने चैनो को भी पाहळ द्वारा "थोरा" करके सम्प्रदाय में प्रविष्ट कर लिया, पर तब से "थोरो" नाम से प्रसिद्ध हुआ[2]। मुकाम के थापनों की प्रार्थना पर मेहोजी ने टोपी उनको वापस दे दी। चोला और 'थाली' अभी तक 'पिछोवड़े' में विद्यमान हैं। मेहोजी का देहान्त संवत् १६०१ में हुआ और उनको 'पिछोवड़े'-मन्दिर के पास ही समाधि दी गई। सम्प्रदाय में तो परम्परा से ये बातें प्रसिद्ध हैं ही, भाटों के कथन से भी इसकी पुष्टि होती है। मेहोजी की संतति जैसलमेर के मोढ़ गांव में विशेष फैली। रामायण से मेहोजी का भक्त होना सिद्ध है।

रामायण[3]—मेहोजी की यह मेंरास एक ही रचना मिलती है, जिसकी प्रसिद्धि

१—संवत्-सूचक ये तीनों सूचनाएँ लेखक को महन्त श्री कौशलदासजी महाराज, 'भागूणी-जाजी", जाम्भा से प्राप्त एक गुटके में लिखी मिली हैं, जिसमें भागवत के एकादश स्कन्ध की टीका लिपिबद्ध है। यह टीका साधु हरिकिसनदासजी के शिष्य साधु परसरामजी ने संवत् १८८२ में लिपिबद्ध की थी।

२—एह सब ढ़ाहीं रहते भाऊ। हाथ जोड़ धन अस कहेऊ।
गंगा सम तुम न्यात कहावो। इन हम सबकूं न्याति मिलावो।
पांच देस के पंच बुलाए। चोरो करवो लियो मगाए।
पाहळ कियो प्रेमजी साधू। जम गरू को मन आदू।
जप कर पाहळ चैन कूं दीन्हों। धनं कूं चोपो कर लीन्हों।
काजण बालक सबहिं मिलाए। एकै पाणी भीठे कराए।
यू थापन कुल चालत भयो। मेळो सकल बिपर ही गयो।
—साहबरामजी कृत "जम्भसार", प्रकरण २३, पत्र ३७, ३८, प्रति संख्या १९३।

३—इसकी तीन प्रतियां मिली हैं —(१) प्रति संख्या १५२ (ठ), (२) २०७ (ख) तथा (३) २०१, फोलियो ३२३। तीनों के पाठ-अध्ययन करने पर पता चलता है कि पहली दो प्रतियां एक परम्परा की और तीसरी प्रति दूसरी परम्परा की है। प्रथम परम्परा की प्रतियों का आदर्श यत्रतत्र खण्डित या त्रुटित रहा प्रतीत होता है तथा ऐसे स्थलों पर छन्द-पूर्ति स्वरूप या अन्यथा प्रक्षेप भी किया गया है। सर्वाधिक विश्वसनीय प्रति तीसरी है, जिसका पाठ मूल के बहुत निकट का है।

प्रति संख्या २०१ में आए निम्नलिखित ६० छंद पूरे या आधे रूप में शेष दोनों प्रतियों में त्रुटित हैं —३–६, १०, ११, १३, ३२–४०, ४३–४६, ५४, ५८, ६४, ६७, ७५, ७७, ७९, ८२, ९७, ९८, १०५–१०७, ११२–११७, ११९, १३१, १३६, १४५, १५५–१५८, १६५–१६८, १९१–१९४, २१४–२१६ २५६, २५७।

इन दोनों प्रतियों (१५२ तथा २०७) में इनके स्थान पर तथा यत्रतत्र अन्य स्थलों पर भी नात (केसोजी, सुरजनजी और किसोर) और अज्ञात कवियों के अनेक प्रसंग

(शेषांश आगे देखें)

रचना के पश्चात ही जाम्भोजी की विद्यमानता मे खूब फल गई थी और पदम भगत कृत 'हरजी रो व्यावलो' की भांति जागरण मे गाई जाने लगी थी। उल्लेखनीय है कि यह उन्ही ग-रागिनियो मे गेय है जिनमे विष्णोई साखियाँ। यह कुल २६१ दोहे-चौपइयो की कृति । समस्त रचना निम्नलिखित राग-रागिनियो मे गेय है -

भु वरो (१७६ छन्द), सुहव (५७ छन्द), धनासी (८ छन्द), रामगिरी (६ छन्द), गौ (२ छन्द) तथा मलार या/और जतसरी (१२ छन्द)[1] । लिपिकारो[2] के अतिरिक्त रचना का "रामायण" नाम स्वय कवि ने भी अन्तिम छन्द मे बताया है -

अठसठ तीरथ जो पु न न्हायां, सु णौ रामायण कानै ।
पढियां नै मेहो समझाव, धापो धरम धियांनै ॥ २६१ ॥

थासार इस प्रकार है -

कवि सृजनहार का स्मरण करता है। असुर सहारने, बन्दी देवताओ को छुडाने और अपने वचन को सत्य सिद्ध करने हेतु राम लक्ष्मण ने अवतार लिया। वे तथा भरत शत्रुघ्न चारो कु वर दशरथ के घर जन्मे (१-५)। राजा दशरथ के अस्वस्थ होने और कोई

नुकूल छन्द लिपिबद्ध किए गए मिलते हैं। अनुमान है कि अज्ञात कृत ये छन्द भी विष्णोई कवियो द्वारा रचित होने चाहिऐं। नीचे प्रति सख्या २०१ की छन्द-सख्या को आधार मानकर ऐसे छन्दो की तालिका दी जा रही है -

प्रति सख्या २०१	प्रति सख्या १५२ तथा २०७
छन्द सख्या ९३ के पश्चात्	१ सवैया, अज्ञात कृत
,, ,, १४२ ,,	१ ,, (किसोर रचित) तथा २ चौपई, ३ कवित्त, १ सवया-अज्ञात कृत
,, ,, १४३ ,,	१ ,, अज्ञात कृत
,, ,, १५२ ,,	१ ,, तथा १ डिंगल गीत (२ दोहले)-अज्ञात कृत
,, ,, १९० ,,	२ सवए, १ डिंगल गीत (४ दोहले), २ कवित्त, २ सोरठे (१ सवया केसोदास रचित, शेष अ० कृत)
छन्द सख्या २१३ के पश्चात्	१ कवित्त सुरजनजी कृत रामरासौ का।

दोनों प्रतियों (१५२, २०७) में छन्द विपयय भी पाया जाता है।
प्रति सख्या २०७ मे प्रस्तुत रचना की पुष्पिका के पश्चात राम-सम्बन्धी १ कवित्त तथा १ डिंगल गीत और है।
तीनो प्रतियो में अपनी अपनी विकृतियाँ भी हैं। प्रति सख्या २०१ मे कुल छन्द २६१ हैं, जिनमे छन्द ६१ १६६ और २०४ की एक एक पंक्ति त्रुटित है। उद्धरणो सहित प्रस्तुत विवेचन इसी प्रति के आधार पर किया गया है।
प्रतियो की प्रतिलिपि-परम्परा के आधार पर भी रामायण का रचनाकाल १६ वीं शताब्दी उत्तरार्द्ध अनुमित होता है।

1-छन्द सख्या ७१-७९ तथा १०८-११०, कुल १२ छन्द, प्रति सख्या २०१ में "सीळरास की ढाळ" मे प्रति सख्या १५२ मे "राग मलार" मे और प्रति सख्या २०७ में "राग जतसरी' म गेय बताए गए हैं।
2-प्रति सख्या २०१ और २०७-"लीपतु रामायण", तथा प्रति सख्या १५२-"लीपतु अथ रामायण"।

"इनाम न लगने" पर कैकयी ने हर प्रकार से उनकी सेवा की। प्रसन्न होकर उन्होंने उस पर मांगने को कहा। उसने भरत-शत्रुघ्न के लिए राज्य और राम-लक्ष्मण के लिए वनवा मांगा और इस प्रकार वचनों से राजा को छला (६-१४)।

राम लक्ष्मण राजा के वचन-पालनार्थ अयोध्या छोड़कर वनवास के लिए चल गए इस पर भरत बहुत ही दुखी हुए। दशरथजी उनकी राह देखते हुए श्रवणकुमार के शाप को स्मरण कर अत्यन्त व्याकुल हुए और पुत्र वियोग म चल बसे (१५-२७)।

(कवि सीता-स्वयंवर का उल्लेख करता है) सीता के लिए चारों दिशाओं से बड़े नरेश एकत्र हुए किन्तु शिव-धनुष किसी से भी न उठाया गया। राम ने धनुष उठाक प्रत्यंचा खींचली। सीता का उनके विधि-पूर्वक कुलाचार सहित विवाह हुआ और बहु दहेज दिया गया। वे सीता को लेकर घर आगए (२८-३४)।

रावण ने लंका म जाकर भोज से पूछा—वे कौन थे जो सीता को ब्याह कर गए? जाकर खबर लाओ। वह वन म उनकी मढ़ी पर आया। उसकी कुम्हलाई हुई शक देखकर सीता ने पूछा—तुम इतने अस्वस्थ क्यों हो? भोज बोला – हे कामिनी! मेरे शरी म दुख है, मैं परदेशी पथिक हूँ। हे सखी! मुझे अपनी शरण म रखो। वहां रात्रि म वह रहा, तभी से उपद्रव आरम्भ हुआ। उसने सीता के "नख चख निरखे"। प्रभात होते ही वह 'पचमढ़ी' से चल पड़ा। लंका म आकर उसने सीता के सौन्दर्य का अनेक भांति से वर्ण किया। इस पर रावण उसको महलों म (अपनी रानियाँ दिखाने हेतु) ले गया। उसने वहां भी सीता की प्रशंसा करते हुए कहा-मन्दोदरी तुम्हारी पटरानी है, किन्तु वह तो सीता की पनिहारिन मात्र है। रावण ने मंदोदरी के रूप का संक्षेप म वर्णन किया जिस पर पुन: भोज न सीता के रूप और सौन्दर्य को अद्वितीय बताते हुए कहा कि उसके समान स्त्री संसार म तो है ही नहीं, कोई स्वर्ग म हो तो हो (३५-५३)।

यह सुनकर रावण ने सीता को लाने का पक्का विचार किया। ज्योतिषि इसके परिणाम के विषय मे पूछकर मुहूर्त साधा और नगर से निकल कर प्रतोलि-द्वार पर आया। मार्ग म उसको सांप बायाँ, गदहा दायाँ और सुनार सामने आता हुआ मिला। उसने भोज से पूछा-स्वयं ठगे जायँगे या उनको ठगेंगे? वह बोला-सौदागर व्यापार से प्राप्ति करता है, वह शास्त्र और शकुन का विचार नहीं करता। तुमको मारने वाला कौन है? तू ही किसी को मारेगा (५४-६१)।

राम रामसर खुदवाते थे, लक्ष्मण "पाळ" बांधते थे और सीता हाथ में घड़ा और सिर पर सोने का "बेहडा" लिए पानी लाने जाती थी। सरोवर पर उसने स्वर्णमृग को देखा। उसको भलीभांति देखकर वह घड़ा लेकर वापस आई और लक्ष्मण से उस को मारने के लिए कहा। लक्ष्मण ने समझाया– वह स्वर्णमृग नहीं, कोई दानव ताक रहा है। मृग को सीता ने अनेक बार चरते देखा और एक नारी के रूप म अपनी परवशता पर बहुत खेद प्रकट किया। लक्ष्मण ने उसको कोई और वस्तु मांगने को कहा किन्तु उसके हठ के कारण अन्त म इसके लिए राम को वन मे जाना पड़ा। उन्होंने मृग के बाण मा

ढते ही उसने कहा- हे लक्ष्मण! राम मारा गया। यह सुनकर सीता ने लक्ष्मण के समझाने र भी, उनको राम की सहायतार्थ जाने को बाध्य कर दिया। वे 'कार" दे कर चले गए। पीछे से तपस्वी के वेश मे आकर रावण ने सीता से भीख मागी। "कार" पर पाट रख-कर भीख डालते समय सीता को वह उचक कर ले चला। तभी गरुड ने रावण का रास्ता रोका। सीता ने अनुनय की- यदि तू मुझे छोड दे, तो मेरे स्वामी के गरुड को वापस भेज दूगा, तू सकुशल लका चले जाना, किन्तु वह न माना। सूर्यास्त के समय गिद्धराज आया और उसने युद्ध किया, रावण उसको पख विहीन कर सीता को लका म ले गया (६२ ९८)।

राम वापस आए। सीता को न पाकर वे विलाप करने लगे। लक्ष्मण और हनुमान जी ने उनको बहुत प्रकार से धय बधाया किन्तु राम का दुख कम नही हुआ (६६ ११०)।

(सुग्रीव न राम को सात्वना देते हुए कहा-) हे राम ! दुखी क्यों होते हो ? क्षण भर म ही सेना को आज्ञा देता हूँ, जहा कही भी सीता होगी, ढूढ लगे। दक्षिण दिशा म सीता का पता लगाने के लिए अगद ने बीडा उठाया। उसके साथ १२ वीर चल और पद्रह दिन बाद व चम्पगिरि पहुचे। आगे अथाह सागर था। अगद के पूछते ही हनुमानजी हर्षपूर्वक सागर-पार जाने के लिए उद्यत होगए और उसे लाघ कर लका पहुचे। वहा पनिहारियां से उन्होंने सुना कि राम की पत्नी सीता लका मे लाई गई है तथा लका का नाश होने वाला है (१११-१२१)।

(हनुमानजी द्वारा श्रीराम की 'मूदडी' सीता की गोद मे गिराने पर-) सीता के मन अनेक विचार उत्पन्न हुए। बोली- श्रीराम की 'मूदडी' यहा कौन लाया है ? हनुमानजी उत्तर दिया- हनुमान। उन्होंने श्रीराम और उनकी सेना के विषय मे विस्तार से बताया था 'वाडी' के फल खाने की आज्ञा मागी। रावण के बल का उल्लेख करते हुए सीता ने गिरे हुए फल ही खाने और लका की ओर पाव न देने की शिक्षा देते हुए आज्ञा दी।

हनुमानजी ने बाग का विध्वस कर दिया तथा अनेक असुरों का सहार किया। पकडे जाने पर उन्होंने स्वय ही अपनी मृत्यु का उपाय- पूछ में सूत लपेट कर आग लगाना बताया। ऐसा ही किया गया। उन्होंने सारी लका जला दी। सीता के पास आकर उनका सन्देश लिया और समुद्र के इस पार आए। राम लक्ष्मण को उन्होंने एतद् विषयक समस्त समाचार कहे।

सीता के "सत" को डिगाने के लिए मन्दोदरी ने कहा- तुमको रावण अपनाएगा। सीता बोली- मिथ्या बात मत करो, सीता के तो रावण बाप है। मन्दोदरी ने ताना मारा-तू ही यदि सती थी तो अपने प्रियतम का साथ क्यों छोडा ? सीता ने उपयुक्त उत्तर दिया-उनको वधस्य दिलाने और तेतीस कोटि देवताओं को मुक्त कराने के लिए (१२२ १६८)।

मन्दोदरी न रावण को अनेक प्रकार से समझाया। वह बहुत क्रुद्ध हुआ, बोला-मानी-गीनी तो मेरा है और पुकारती है राम, राम। कोई है जो इसका गला घोंट दे ? यदि मैं सीता को ले आया तो तू चर क्यो करती है ? तेरे जमी पटरानी और सहस्रो कर सकता ... लका मुझसे कोई नही छीन सकता (१६९ १८८)।

लक्ष्मणजी ने हनुमानजी और सब बन्दरों को रावण मार कर लंका जीतने और सीता को छुड़ाने की आज्ञा दी। राम ने समुद्र पर पुल बंधवाया। सौ योजन सागर लांघ कर सेना लंका में आ उतरी। विभीषण राम की शरण आया। उसने फिर रावण को भी समझाया किन्तु वह नहीं माना (१८६-२००)।

(रावण की बहन 'किराड़ी'- काराड़ी-) किसी पथिक से पीहर का समाचार पूछती है। उसने उत्तर दिया- लंका के सारे पाट अवरुद्ध हैं, लक्ष्मण युद्ध कर रहे हैं। युद्ध सीता के लिए हो रहा है। रावण ने भूल करके लंका खो दी है (२०१-२०६)।

(लक्ष्मण के मूर्च्छित होने पर) राम ने वैद्य को बुलाया। विलाप करते हुए वे कहने लगे- स्त्री के लिए लक्ष्मण जैसा भाई मरवा दिया। हनुमानजी 'जड़ी' लेने के लिए गए और पहाड़ ही उठा कर ले आए। बूटी घिस कर लगाई गई, और लक्ष्मण उठ बैठे हुए (२०७-२१३)।

रावण की सेना में युद्ध का बीड़ा महिरावण ने लिया। वह छल से राम लक्ष्मण को पाताल ले गया। उनको सेना में न पाकर हनुमानजी अत्यन्त चिंतित हुए। पाताल जाकर उन्होंने महिरावण को मारा और राम लक्ष्मण को वापस लाए।

लंका में सर्वत्र बन्दर छा गए। कुम्भकरण से भी कुछ करते न बना। वह राम बाण से मारा गया। अब लक्ष्मण युद्ध के लिए तैयार हुए। मन्दोदरी बोली-हे रावण अब तुम्हारी बारी है। उसके प्रधान आकर लक्ष्मण से दया की भीख मांगने लगे कि उन्होंने बाण से रावण को मार दिया।

रावण के मरते ही बन्दी देवगण मुक्त हुए और राम की जयकार होने लगी। विभीषण को लंका का राज्य देकर सीता सहित राम अयोध्या में आए। वहाँ सर्वत्र प्रसन्नता छा गई। मेहोजी कहते हैं कि अड़सठ तीर्थों में नहाने से जो पुण्य होता है, वह "रामायण सुनने पर सहज ही मिल जाता है।

रामायण की प्रचलित कथा और इसमें कुछ अन्तर है जिसका उल्लेख नीचे किया जाता है —

१-अपनी अस्वस्थता में की गई कैकेयी की सेवा से प्रसन्न होकर राजा दशरथ उसको वर मांगने के लिए कहते हैं[1]।

२-राम वनवास के समय अयोध्या में भरत भी मौजूद हैं, राम उन पर रोष भी प्रकट करते हैं[2]।

१-नहेड़ो हुवो नरपती, लाग नही इलाज।
कोकहि वारो महलि, लंका छोजण काज्य ॥ ६ ॥
सेवा कारण्य सुंदरी, इधको सेयो नाह।
नींद न सोवै निसछले, बसि पळोया पाव ॥ ७ ॥
ज्यों बिस छुटयो कामणी, सुप छल्य सूतो राव।
मांग ज मांगो केकवी, तूठो दसरथ राव ॥ ८ ॥

२-राम कहै रोसाय, भरथ भली परि बाहड़ो।
महलां उतर्‌या थारी माय, देस निकाल्या रहि पड़ो ॥ २२

३-सीता स्वयंवर का उल्लेख राम वनवास और दशरथ-मरण के पश्चात् किया गया है।
४-सीता-स्वयंवर के बाद लंका में जाकर रावण भोज को राम के सम्बन्ध में खबर लाने के लिए भेजता है, वह रावण का 'रजपात' ('रजपूत') है[1]।
५-भोज की काया कुम्हलाई हुई देख कर सीता सहानुभूति दिखाती और उसकी प्रार्थना पर शरण में रखती है[2]।
६-भोज पंचवटी में रात भर रहता है, वहां सीता का "नख-चख" देखता और वापस आकर रावण को उसके रूप के विषय में बताता है[3]।
-रावण एकाएक सीता की ओर आकर्षित नहीं होता। वह दो प्रकार से उसके रूप-सौन्दर्य के विषय में भोज से पूछता और निश्चय करता है –
(क) अपनी रानियों को दिखा कर[4]
(ख) पटरानी मन्दोदरी की सुन्दरता का वर्णन करके[5]।
-रावण सीता के सौन्दर्य से प्रेरित होकर उसका हरण करने की सोचता है[6]।
-इस हेतु वह ज्योतिषियों से तथा अपशकुन होने पर भोज से पूछता है। मनोनुकूल उत्तर पाकर ही वह आगे बढ़ता है[7]।

१-रावण लंका जाय करि भोज गूझ सु समय-।
वकुण छा सीता परण्यग्या पवरि लियावो जाय ॥ ३५ ॥
रजपात रावण राव रो, सक विण्य रम सिकार।
आसण्य आयो राम र, दण्यो मढी ददार ॥ ३६ ॥
२-तापन पुहता तर व य, सती रहै उण ठाय।
काया कुमलाणी थकी, नर तू नहरो काय ॥ ३७ ॥
काया दुप छ कामणी, भोज कहै मुप भाषि।
हूं परदेसी पथियो, सती सरण मोहि राषि ॥ ३८ ॥
३-उपन्र चाल्यो उण दिना, रवण्य रह्यो जित रानि।
पचमढी हूं चालियो, पोह विगसो परभाति ॥ ३९ ॥
नप चप सगळा निरपिया, विष्य सूं कर वषाण।
लंक नगर मा उण कह्या, राणी सती तणा सहनाण ॥ ४० ॥
४-एरळ रथ असडी हुव रन मा तया रहाय।
लाभारथ ए चालियो, मन सुध महला माहि ॥ ४५ ॥
चामटि सहस अतेवरी, मदोवरि महलेग।
इनरया ऊपरि सा तया, कीरत वषाण केण्य ॥ ४६ ॥
५-कोट सोहै कागरा, भीते सोहै चीत।
रावळ दवळ टाल्य क, काय सराही सीत ? ॥ ४७ ॥
मूंडा भोज न जाण्यज, मदोवरि रा मभ।
सुंदरि सोहै आगण, लवी जिसी सलभ।
पावामर री तीजणी, मान सरोवरि हंज।
सीह वीलुधा साकळ, ज्यों घगा दीस सभ ॥ ५० ॥
६-सीम गयो सुकियारथो, उणि सुंदरि अरथाय।
मीम पयोही सारिस्या, सीत सट सिर जाय ॥ ५५ ॥
७-रावण तेड्या जोयसी, जोयस दिवो विचारि।
मीत हड्या कायो हुव, जिया कन्आव हारि ॥ ५६ ॥ (शेषांश आगे देखें)

१०–राम के रामसर खुदाने, लक्ष्मण, के "पाळ बाधने" और सीता के पानी लाने का उल्लेख है।

११–सब प्रथम स्वर्णमृग को सीता वही देखती है[1]। मृग मारने सबधी उसकी प्राथना न मानने पर एक नारी के रूप म अपनी विवशता पर वह खेद प्रकट करती है[2]।

१२–वापस आते समय आकाश मे रावण का माग पहले गरुड अवरुद्ध करता है[3]।

१३–मृग मार कर राम के वापस आने पर पचवटी म लक्ष्मण के साथ हनुमानजी भी मौजूद हैं। लक्ष्मण के अतिरिक्त हनुमानजी श्री राम को धय बधाते हुए कहते हैं- सीता गई तो जाने जाने दो, वसी बीस और ला दू गा। राम इसका उत्तर भी देते हैं[4]।

१४–राम–सुग्रीव मित्रता या सेना–सगठन का कोई प्रसग न होकर, एकत्र सेना मे राम को (सुग्रीव द्वारा) आश्वस्त किए जाने का उल्लेख है[5]।

१५–अशोक बाग के फल खाने की आज्ञा देते समय सीता द्वारा रावण के बल की बात किए जाने पर हनुमानजी उनको अपने साथ ले चलने का प्रस्ताव करते हैं किन्तु वे नहीं

जोतग वाच जोयसी, सरखे लगन विचारि।
सीत हड तो कळि सबौ, मर त मोप दवारि ॥ ५७ ॥
ग्रह हावो पर दाहिवो, सोम्हो पुळ सुनार।
आपा ठगांवा क बांह ठगां, कहि भोजेला विचार ॥ ५६ ॥
सासत सू ए किसौ सौदागर, लाहो ले विणजारो।
जीपण धरती रहै अपरछन्द, तो नै कु ए छ मारण हारो ॥ ६० ॥
मारणहार नही को देपू, जै तू कही न मार ॥ ६१ ॥

१–सोवन मिरघ सरोवरा, सतो फिरतो दीठ।
असडा मिरघ न मारही, लपण कमाव झूठ ॥ ६५ ॥

२–जा नही नासिका, जा किसो सोड, जा नही पीहरो, ता किसो कोड।
जा नही मात, न जा नही तात, कन कहू सयो गुझ री वात ॥ ७३ ॥
वाप द दान तो सासरा मान सासरा मान जे वाप द दान।
त्रिया आभरण नही पीव किसौ मोह, पेट छाले अर्थी डडरा सोह ॥ ७४ ॥
काय हुर अति कोध वळाप, पळातर पाव ज पुन र पाप।
गोवरि न पूजी मैं रुद्र री नारि। मन वछयो वर दिव एण्य समारि ॥ ७५ ॥

३– गुरड पपा घट छावियो, धरहरियो असमाण।
रावण रुधो वरिया, लक न लाभ जाण ॥ ६३ ॥
सु ण्य रांवण सीता कहै, वाच दिवो मो वाह।
गुरड पलाड्यू म्हार साम्य रा, कुसळे लका जाह ॥ ९४ ॥

४–राम रोव लक्ष्मण धीरव, गणवत मल्है चोस।
सीत गई तो जाण दे, अवर अ णाऊ बीस ॥ १०२ ॥
गहला हणवत वावळा, तो मन किसी जगीस।
सीता न सहस न पूजहो, तू र म णावै वीस ॥ १०३ ॥

५–कांय विदूहो रामचन्द्र कांय अ मूक्या माण।
घड़ी महुरत ताळ मां, भांण दिढ फुरमांण ॥ १११ ॥ आदि।

कारण बताकर यह स्वीकार नहीं करती[1]।

१६-लका मे हनुमानजी अपनी मृत्यु का उपाय स्वय बताते हैं[2]।

१७-लका से वापस आकर हनुमानजी अन्य समाचारो के साथ सीता-हरण सम्बन्धी एक भुलावे का उल्लेख भी करते हैं। रावण शकर के रूप मे डमरू बजाता हुआ आया था, उसके माथे पर मुकुट और गले मे साप थे। सीता ने यह समझा कि वह (शकर रूप धारी रावण) श्री राम के दर्शनार्थ आया है। उस वेश के भुलावे मे सीता आ गई थी[3]।

१८-सीता को लेकर मन्दोदरी और रावण मे खूब कहा-सुनी हुई। अन्त मे मन्दोदरी ने एक स्वप्न का भी उल्लेख किया जिसमें उसने लक्ष्मण को लका विजय करते देखा था[4]।

१९-सेना के सागर-पार उतरते ही विभीषण लक्ष्मण की शरण में आगया, जिन्होंने उसको लका सौंपी। तत्पश्चात् उसने लका जाकर सीता को वापस सौंप देने के लिए रावण को समझाया[5]।

१-रावण सर्वो न राजवी, लका सर्वो न थान।
कही पराई जे सुण, जा सिर नाही कान॥ १३९॥
लक उपाड़ू सू जडा, सायर अबा जाह।
मारू रावण राजियो, लेजू देपताह॥ १४०॥
उमति भणीज तीय जण, हणवत लछमण राम।
तीयौ आव बाहरू, इण्य विध्य पाछी जाव॥ १४१॥
बधो न छूट देवता, रहै न रावण राज।
सीत हडी किम जाणिय, राम रहै किम लाज?॥ १४२॥

२-मोन बताव वादरो, साभल्य राणा राव॥ १४५॥
पूछड सूत पळटि न, दियौ वसदर लाय॥ १४६॥

३-माथ मुगट सुहावणो, पठो हैरू वाय॥
राणी रावण ले गयौ, लक नगर रो राय॥ १६३॥
गल्य ईसर का आभरण, परमेसर क गाति।
सीता दरसण भोळवी, जाण्यौ आयो श्री रघुनाथ॥ १६४॥

४-सदक सूती सुहिणो लाधो, लका लापण आयो।
लापण आयौ लका लीवी, सायर सेत बधायो॥ १८५॥
जिणरी आण मानै सो कोई, जिण सू वाद न कीज।
कहै मदोवरि सुण हो रावण, लक नगर गढ लीज॥ १८६॥
छुग छतीसू सूझ रावण, अठोतरि कुळ जाण।
सुर तेतीसा जू जू करता बसे आय पगाण॥ १८७॥

५-वीभीपण आय विळगो पाए, लापण लका दीवी।
आप तणो जन ओळख आपे, पाछ लका लीवी॥ १६४॥
कहै वभीपण सुण हो रावण, थिर रावत घण सूरा।
बेल्हा येल्हा वे तेडावौ, वात करो मन धीरा॥ १६५॥
सीता धोह घर राम मनावौ, मेल्हौ माहस धीरा॥ १६६॥
कहै ज रावण सुण वभीपण, सिर सू सीता देस्यौं।
लाप पाजा काम न सरसी, महरावण रथ लेस्यौं॥ १६७॥

(२०) युद्ध-समय में (रावण की) बहन विराही (वीराही) किसी पथिक से अपने पीहर के समाचार पूछती है और वह बताता है[1] ।

(२१) महिरावण ने 'ठगमूली' से राम-लक्ष्मण का हरण किया, तब हनुमानजी, पाताल से उनका उद्धार कर वापस लाए[2] ।

(२२) लक्ष्मण को युद्धार्थ उद्यत हुए देख कर मन्दोदरी रावण को सावधान करती है, रावण के प्रधान लक्ष्मण से उन पर दया करने की प्रार्थना भी करते हैं[3] ।

(२३) जन रामायण की भांति लक्ष्मण रावण को मारते हैं[4] ।

रामायण एक सांगोपांग सफल आख्यान काव्य है, श्रेष्ठ आख्यान-काव्य के सभी गुण इसमें विद्यमान हैं। विक्रम सोलहवीं शताब्दी के राजस्थानी साहित्य की यह तीसरी महत्त्वपूर्ण आख्यान-काव्य कृति और रामचरित सम्बन्धी अपने ढंग की पहली रचना है। विश्नोई-आख्यानों में इससे पूर्व रचित काव्य हैं-ऊदे कृत कथा अहमनी और परम नंद कृत कृष्णजी रो व्यावलो[5] । रामचरित सम्बन्धी इससे पूर्व की जो कृतियां मिलती हैं वे मारू-गुर्जर की रचनाएँ हैं । विषय-वस्तु, काव्यरूप भाषा-शैली, उद्देश्य, रोचकता, काव्योत्कर्ष और तत्कालीन मरुदेशीय समाज-चित्रण की दृष्टि से यह राजस्थानी का एक विशिष्ट कृति है। सामूहिक एवं पृथक्-पृथक् रूप से एतद् विषयक परंपरा में यह गौरवपूर्ण स्थान की अधिकारिणी है।

१-पूछे बहण विराही रे पथिया, कवण भोम्य सू आयो ?
कहे पीहर री कुसळात ।। २०१ ।।
पीहर री कुसळात वात, वीर वध वध बाधी ।
अठोनरिस बहना हुती काळी कायर गाढा ।
कहे न रे वीरा थयी वात ।। २०२ ।।
लछमण गुणे पठायो, पूछ बहण वीराही रे ।
पथिया कवण भोम्य सू आयो ।। २०३ ।।
लंक नगर हीलोहळी रुधा च्यार्यो घाट ।। २०४ ।।
रुधा च्यारि घाट हे बहणी ढोल दमामा वाज ।
लछमण बाण असी परि छूट, जाण इंद गराज । २०५ ।।
असी जोयण सी ऊंची लंका समद सरीषी खाई ।
सीता काज वग्रह मातो भूल लंक गुमाई ।। २०६ ।।
२-महरावण लंक सू नीसरयो कोई अवर न लीयो साथि ।
ठग मूली महरावण, दीन्ही राम हाथि ।। २१६ ।।
हणवन्त मरू कळाइया, ते लाधी जळ सोर ।
पसि पयाळ जुध कियो, दत मल्या करि जोर ।। २२७ ।।
३-लछमण बाण सजोवियो ताण्य र हुवो तियार ।
वाती मुंध मदोवरी, दसिर थारी वार ।। २४६ ।।
दसिर दोडा मेल्हिया पूछि आया परधान ।
दया करो थे देवजी करता सभल्य काय ।। २४७ ।।
४-गहनी मुंध मदोवरी, रही न झाले हाथ ।
कोप्य लायण छेन्यिा, तिहु लोका र नाथ ।। २५३ ।।
५-इन दोनों के विषय में "विश्नोई साहित्य" के अन्तर्गत अन्यत्र लिखा गया है।

इनके प्रायः सभी पात्रों में सहज मानवीय भावनाओं की धड़कनें सुनाई देती हैं। पात्र अलौकिक शक्ति-सम्पन्न होते हुए भी इस तौर से प्राणी चित्रित हुए हैं। परि-स्थिति-विशेष में उसी और जिस सुख-दुख की अनुभूति और अभिव्यक्ति जनसाधारण करता है, वही और उसी प्रकार की इनके पात्र भी करते हैं। कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं -

(क) मृग मारने की प्रार्थना स्वीकार न किए जाने पर सीता अपनी दशा पर खेद प्रकट करती है। इसमें जिस विवशता, आक्रोश, शृंगार और दयनीयता का चित्रण किया गया है, वह किसी भी नारी पर लागू हो सकता है। एतद् विषयक तीन छन्द पहले दिये जा चुके हैं (देखें-'कथा में अन्तर', संख्या ११ के उद्धरण) दो ये हैं -

म्हे जाणो नीठाहुडी आपसी पेय। म्हे जळ जोगणी आयी कुरलेत।
म्हे मतवालणी चढी कचेलास। सो नहीं आवयो नां हू पीर पास्य ॥ ७८ ॥
क्यों पड सांमहो पाणियो देह। सो सतो नातियो लोहड लोह।
कहियो करेस्यो न करा नाहि। एहो छ जोय पटोल्डी गांठि ॥ ७९ ॥

(ख) रावण का रहन विगड़ी के प्रश्न और कपिल के उत्तर में एक अन्य उदाहरण रखता है। इस प्रकार सीता का कुशल-क्षेम पूछती ही किन्तु किसी विशेष संकट के समय तो उसकी एक विषय उत्कंठा और व्याकुलता का परिचय होना बहुत स्वाभाविक है। कवि ने इस नवीन प्रसंग के द्वारा न केवल सहज मानवीय भावनाओं को ही मुखरित किया है अपितु लंका में हो रहे कार्य-व्यापार और उसके परिणाम को भी संक्षेप में सवाद-रूप में बता दिया है (देखें - 'कथा में अन्तर' संख्या ११ के उद्धरण)।

(ग) सीता वियोग में श्री राम का करुणा पूरित उद्गार भी ऐसा ही है, जिसकी मुख्य विशेषता है-लोक-प्रचलित उक्तियों के माध्यम से अभिव्यक्ति। सम्बन्धित छन्द ये हैं -

क्यों वीसर दांत क्यों वीसर मांन।
क्यों वीसर जुगति सू जीमियो धांन।
क्यों वीसर सांप न सीस रो घाव।
क्यों वीसर वरियां उदि पड दाव ॥ १०८ ॥
नींबोल्डी चूसियां क्यों वीसर दाख।
चदण क्यों वीसर घट मळो राख।
कांवळ[1] ओढयां क्यों वीसर चीर।
सीत क्यों वीसर लागणा सीर ? ॥ १०९ ॥
न वीसर मात पिता तणो नांव।
न वीसर नगर अजोधिया गांव[2]।
खाडोपीय गात नाळेरीय सीस।
हसि वीसाळ राणी दात बत्तीस ॥ ११० ॥

१-प्रति १५२ में-"माकला' पाठान्तर है।
२-प्रति १५२ में इस पंक्ति के स्थान पर यह पंक्ति है -
"न वीसर वाल्पण सेलिया सेल न वीसर नवल सजोजनी नेह"।

यह नाटकीय गुणों से युक्त सवाद-प्रधान रचना है। प्रमुख सवाद निम्नलिखित हैं

१-दशरथ-ककेयी (८-१३)।
२-सीता-भोज (३७, ३८)।
३-भोज-रावण (४१-४४, ४६-५३)।
४-रावण-ज्योतिषी (५६, ५७)।
रावण-भोज (५६-६१)।
५-सीता-लक्ष्मण (मृग-हेतु) (६८-७०, ७७-७६)।
सीता-लक्ष्मण (राम की सहायतार्थ) (८३-८८)।
६-सीता-रावण, हरण-समय (८६-६१, ६४-६६)।
७-राम-लक्ष्मण, राम-हनुमान (६६-१०४)।
८-अगद-हनुमान (११७, ११८)।
६-हनुमान-सीता (१२३-१४२, १५६-१५८)।
१०-लक्ष्मण-हनुमान (१६१-१६४)।
११-मन्दोदरी-सीता (१६५-१६८)।
१२-मन्दोदरी-रावण (१६६-१८८)।
१३-विभीषण-रावण (१६५-२००)।
१४-विराही और पथिक (२०१-२०६)।

सभी सवाद अत्यन्त सटीक, प्रसगानुकूल, प्रभावपूर्ण और कथा को आगे बढाने वाले हैं, चरित्र-विशेष का चित्रण उनसे स्वत ही हो जाता है। श्रोता और पाठक को वे सम्बन्धित वस्तुस्थिति से भी भली प्रकार अवगत करा देते हैं। कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं -

(क) मन्दोदरी और सीता के इस सवाद मे उत्तर-प्रत्युत्तर बहुत ही सटीक और तर्कपूर्ण हैं -

मदोदरी महलां ऊतर, सीतां सत भोळावण।
आई बाग मदोदरी, सीतां करिसो रांवण ॥ १६५ ॥
अख्यो म वच मदोदरी, अळिय लाग पाप।
सो रांवण क्यो न कीजिसी, सी कं रांवण बाप ॥ १६६ ॥
जोहरा म्हे सोवरण करां, नितरा करां अवास।
सीतां सती कहांवती, क्यों छोड्यो पीव पास ? ॥ १६७ ॥
क्यों भेळीज अकट गड, क्यों तूट बतधीस।
तो नं दोण रडेपडो, छोडावण तेतीस ॥ १६८ ॥

(ख) ऐसा ही सवाद मन्दोदरी और रावण का है। अपने पति को बचाने के हेतु मन्दोदरी तर्कपूर्ण ढग से समझाती है। अहकार और हठवश रावण समझता है कि उसकी सहानुभूति राम की ओर है तथा वह सीता के कारण ईर्ष्यावश ऐसा कहती है। परिस्थिति के सन्दर्भ म इस सवाद मे अत्यन्त स्वाभाविकता है। कतिपय छन्द ये हैं —

अकलि गई मति हड़ि हो रावण, धन खड़ चोर पहुतो ।
पास जातो मांहे लीयो, जबर जगायो सूतो ॥ १६९ ॥
रळी करी ये पूजा रचावो, सूतो काळ जगायो ।
धन खड री सतवती सीतां, रावण ले घरि आयो ॥ १७० ॥
जपियेलो लखण कवार, सुरनर से य घलायसी ।
तोलली घर असमांण, अनव्या कथ नुवावेसी ॥ १७२ ॥
कहैं त बधु सेंण हवारू, कोट गढां का राजा ।
जोगी जगम सह धुग मारू, एक न मेल्हू साजा ॥ १७४ ॥
धांर तेम्र तिरे जळ पाहण, दिवळे जग ज पांणी ।
जास तणी त कार न लोपी, तास घरणि क्यों आंणी ? ॥ १७५ ॥
वहि विण बाद न कीजे रांणा, अथघ न पैसे पांणी ।
राज गयो रांडेपो आयो, भण मदोवरी रांणी ॥ १७६ ॥
यार लछमण रांम भणीजे, म्हार कुंभकरनो ।
जिण रै पेटि समाव सायर, कांप पांणी अनो ॥ १७७ ॥
जितरो तेज पुवण अर पांणी, अतरो गणो भणीज ।
जितरो तेज वहु दळ मांहें, अतरो रांघो वीज ॥ १७९ ॥
घ्यारे चक अर तेहु त्रलोके, सुरगि पयाळ भणीजे ।
अतरो तो लाखण पताव, लाखण अल न लीज ॥ १८० ॥
उचवय मेर नै ऊपरि रेहें, थांमां कवण अधारे ?
कहै मदोवरि सुण हो रांवण, कोप्यो लाखण मारे ॥ १८१ ॥
खाय पीय विलस धन मेरो, रांम राम पुकार ।
है कोई इण्य लक नगर मां, तया गळो दे मारे ? ॥ १८२ ॥
अळियो चव मदोवरि राणी, वात किसी मन्य सुधी ।
जे मैं आणी सीता राणी, तू क्यों घर वीलुधी ? ॥ १८३ ॥
त सारीखो पाटमदे राणी, सहस करू लो औरे ।
जोगी जगम सह चुग्य मारू, काढू देसोटो रे ॥ १८४ ॥

(ग) 'मून्डी' गिरान पर हनुमान–सीता सवाद म सीता के मन म उठन वाले सकल्प प का भी पता चलता है । उल्लेखनीय है कि हनुमानजी के उत्तर सीता के प्रश्नो से सीधे धत और सक्षिप्त हैं । उनके उत्तर मे सीता के शब्दों की पुनरावृत्ति भी द्रष्टव्य है —

क मुवो क मारियो, क सुपनं आयो सांम्य ।
थी राम रो मूदडो, कुण रन मां ल्यायो रांम ॥ १२३ ॥
न मुवो न मारियो, न सुपन आयो सांम्य ।
थी रांम रो मूदडो, ल्यायो छ हणोमान ॥ १२४ ॥
घडिय न ढोली मेल्हता, मेल्हि न करता कांम ।
लछमण अजू न आवियो, तातां खोजां रांम ॥ १२५ ।

सूर तपतो पोरि ऊर, भगतो भगत रहाय ।
अवर न परण रामचंद, जब लग काइ बसाय ॥ १२८ ॥
आडा डूगर थोसायण, थोघ माछला गयड ।
सीत कट्ट रे म रा, किण्य विण्य सोवियो समद ? ॥ १२९ ॥
रात लिवर्यो सीता तणो, लछमण तणी ज आण ॥
श्री राम रो मू बड़ो, क्यों र भुजा रो पाण ! । १३० ॥
सीता मन आणंद हुयो, कण्य सुणी कुसळात ।
कितरा साथत राम र, कितरो रावण साथ ? ॥ १३१ ॥
तेतीस कोड़ी देवता, अरि गजण अरि मोड ।
श्री राम र साथ मा बांदर छप्पन करोड ॥ १३३ ॥

सवायों के पदों में कथा में गौण स्थान विभिन्न वर्णनों का है। वर्णन बहुत ही संक्षिप्त हैं और कहीं कहीं तो वे उल्लेख मात्र जान पड़ते हैं, तथापि जो भी हैं वे सरस, स्वाभाविक प्रवाह और प्रभावाभिव्यक्ति के लिए श्लाघ्य हैं। ये दो प्रकार के हैं —एक तो वे जो पात्र विशेष की परिस्थितिजन्य मनोदशा को प्रकट करते हैं तथा दूसरे वे जो वस्तु, परिस्थिति घटना आदि का चित्रण करते हैं। प्रथम प्रकार के अन्तर्गत दशरथ, सीता और राम[1] की मनोभावना प्रकट करने वाले स्थलों की गणना की जा सकती है। दूसरे प्रकार के मुख्य वर्णनों में अयोध्या, सीता-स्वयंवर, वन में राम, सीता, लक्ष्मण के साथ, लंका-दहन और युद्ध आदि के प्रसंगों को लिया जा सकता है। युद्ध का प्रभावशाली वर्णन तो कवि ने लोक-प्रचलित और घरेलू उपमाओं के सहारे किया है। कतिपय छन्द द्रष्टव्य हैं —

राम पठाया बदर आया, बदर लंक पहुंता ।
तोड हाट उपाड मढी, भान रथ सजुता ॥ २३३ ॥
अन धन लिछमी घूड रळाव, कर भडार 'स रीता ।
लंक नगर मां लाळो थाजो देखि ज बदर कीता ॥ २३४ ॥
बादळ दीस बरसणा, गहरी सुणिय गाज ।
देव दाणो जुध मडियो कूण छुडाय आज ॥ २४१ ॥
सूर बिढ अग पालट, सूरा दीस सूप ।
पडनाळे पांणी वहै, राता रूप सरूप ॥ २४२ ॥
चौपड़े मांडी चोहट छिन मा लीवी उतारि ।
श्री राम र बाण सू, कुंभकरण री हारि ॥ २४३ ॥

१—दसरथ हुव तो जाणज, क भरथि भाज भीड ।
अजोध्या अळगी रही अब कुण पस पीड ॥ २०९ ॥
किया ज हाटि वेसाहणो, दिना क्यारि को सीर ।
तिण्य र कारण मारियो, लाषण सरसो वीर ॥ २१० ॥
हणवत अजू न आवियो, गयो ज मूळी लीण ।
काज पराया सीवळा, जा दुप जा पीड ॥ २११ ॥

सोवन लक सळो करि गाहिये, हठोस्यो असमाणो ।
कह मेहा रिण मूक्यो रावो, घण ज्यों मूठा बांणी ॥ २५९ ॥

कहा-कही काय-व्यापार और वर्णन की त्वरा को बड़े ही सुंदर रूप में चित्रण या गया है। ऐसे स्थलों पर अनुरूप शब्द-चयन भी दर्शनीय है। प्रतीत होता है मानो मन या विचार के ठीक साथ साथ ही कार्य घटित हो रहे हों। इस सम्बन्ध में दो उदाहरण प्ति होंगे। पहला हनुमानजी के लंका जाने और दूसरा पाताल में महिरावण को मारने सबंधित है।

(क) जळ पियो चपगिर चड्या, सायर अथघ अथाय
अंगद कहै रे बनचरां कूण तिरै जळ माहि ? ॥ ११७ ॥
हम हम हम हणवंत हरखियो, कहिसू कियो किळाव।
हणवंत सायर कूदियो, जाणं आभ बीज सळाह ॥ ११८ ॥
कूद्यो जोध जुगति सू, सुरनर सीख ममीठ।
जाण्य पलेरू अंबरा, लंका आय बइठ ॥ १२० ॥
(ख) करो सिनांन सिनांनी हुंता, एक खडग दोय तोड ।
माळा देई रे मद आंगी, ले लि मुंड चहोड ॥ २२३ ॥
पडपच करि करि पींड छलंता, न को तत न मतो।
लछमण तो रामचदजी सिंवर्‌यो राम सिंवर्‌यो हणवतो ॥ २२४ ॥
भंड महरावण खडग उभार्‌यो, नैयि गणो दाकळियो।
हायां खडग पड्यो महरावण, यडहा मड़ि यडहड़ियो ॥ २२५ ॥
महरावण की भुजा उपाडी, गणो पराक्रम कीयो।
रोव माय मुव महरावण, गढ भीतरलो लीयो ॥ २२६ ॥

रचना में राजस्थानी वातावरण की छाप है। यहाँ तक कि भोज रावण से अपने बे हुए जिन स्थानों का उल्लेख करता है, वे राजस्थान और उसके आसपास के ही हैं[1]।

ध्यातव्य है कि वन में राम लक्ष्मण और सीता-सभी कार्यरत हैं। राम तालाब खाते लक्ष्मण उसकी "पाळ" बाधते और सीता सिर पर घड़ा रखे पानी लाती है। ड़ी बोली के प्रबन्ध-काव्यों में वर्णित पौराणिक चरित्रों में नवीन भावनाओं तथा उनके र्यों की बुद्धि-सम्मत, तर्कसंगत एवं वैज्ञानिक व्याख्या प्रस्तुत की गई देखकर जो आलो-क इसे उनके कवियों की नई सूझ-बूझ बताया करते हैं, उन्हें इस रामायण के संदर्भ में पने कथन पर पुनर्विचार करना चाहिए। कवि का कथन है —

राम खणावै रामसर, लछमण बधे पाळि।
सौरि सोन रो बेहडो, सीता पांणीहारि ॥ ६२ ।

१-मिंघ सुवालष पोकरण, मारू ताह वचीत।
तया सिरि सीता तया, ज्यों नपता सिरि आदीत ॥ ५२ ॥

हाथि कटोरो सोरि पड़ो, सीता पांणी जाय।
चपो मरवो केवड़ो, सोच छ वणराय ॥ ६४ ॥
सोवन मिरघ सरोवरा, निरख्यो नजरि निहाल्य।
छाले पड़ो क्यों पाहुड़ो, आई मिरघो भाल्य ॥ ६६ ॥

कवि ने अपना विशेष ध्यान मूल-कथा पर ही रखा है, इतर प्रसंगों या वर्णनों में वह नहीं गया। अत्यन्त संक्षेप में वह मोटी-मोटी बातों का अनेकविध उल्लेख करता गया है। कथा-प्रसंग, छन्द विधान और राग-रागिनियों का चयन, आख्यान काव्य के सन्दर्भ में उसकी प्रबन्ध-शक्ति का परिचायक है। इनसे यह भी पता लगता है कि वह लोक-रुचि का पारखी और लोकमानस का मर्मी था। रामायण ने मरुदेशीय समाज को एक सांस्कृतिक पीठिका प्रदान की और जनमनरंजन के साथ जनरुचि-परिष्कार और उदात्त गुण-ग्रहण का महनीय कार्य किया।

इसमें मरुप्रदेश की सोलहवीं शताब्दी उत्तरार्द्ध की लोकभाषा का बड़ा सही रूप सुरक्षित है। इसके लिए इसका आख्यान काव्य होना ही पर्याप्त है। कवि के "समभावै" और "सुणो" (पंक्तियां ने मेहो समभाव, सु णो रामायण कांने) शब्दों से यही प्रतीत होता है। इसमें प्रयुक्त अनेक लोकप्रिय और प्रचलित उक्तियों, कथनों और मुहावरों के व्यापक प्रयोग से भी इसकी सार्थकता सिद्ध होती है। कहना न होगा कि ऐसे प्रयोग आज भी यहां उतने ही प्रचलित हैं। इस प्रकार तत्कालीन भाषाशास्त्रीय अध्ययन के लि- यह रचना बहुमूल्य और प्रामाणिक सामग्री प्रदान करती है। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं -

थूकया पाछ कु ण गिळ जे लाखीणो थूक (१४)।'
आणंद मगल गाव्यजै, वाजै विरध वधाव (३२)।
मढ़हा मेळ ज बीखरी (३४)।
कूडा करो डर्फाण (६८)।
उठि भरि माथो जाह (८७)।
तू बामण हू गाय (६६)।
कवळा काग बइठ (१००)।
पहलू मार पुरेख न साध्य सती पण्य होय, तया भरोसो जन करो (१०७)।
धरती ऊपरि आभ तल्य, अती न देस्यों जांण (११२)।
दिखणी बोडो दोहरो, सूर रह्या मुख मोडि (११३)।
पोह विण्य पूरी न पड, पग विण्य पथ न होय (१२७)।
भाई सदा वितारज्य, माइया माज भीड (१३२)।
रूति न वूठा मेह (१३५)।
अवस टळ बलाय (१४७)।
कचण काळो होय पडदा रहती पदमणी, परगट दीठां होय (१५१)।
भव भव बोल वासदे (१५२)।

धारी मूरति न घनकार (१९८)।
राम नाम गिर तिरिया (१६३)।
घाट घड छळ बळ सह जाए, अलख न पूज कोई (२००)।
सावेत एक न मेल्हू (२१५)।
सारू असर्‌या कामो, मु ह की मागी दिक वधाई (२२०)।
पडी पयाळे धाडि (२२८)।
घरि घरि हुई कडाही, फिरगी राम दुहाई (२३५)।
सत सीता जत लखमरण, सबळाई हरणवत (२५१)।
वडा री आदे वडाई (२५७)।
तोडि गळा सू राल्यौ (२५८) आदि।

कृष्ण-रुक्मिणी प्रसग को लेकर लगभग सवत् १५४५ म सुप्रसिद्ध विष्णोई कवि पदम भगत ने "हरजी रो व्यावलो" नामक आख्यान काव्य की रचना की थी। इसके वीस साल वाद रामचरित्र पर मेहोजी ने यह उसी प्रकार का काव्य प्रदान किया। इस प्रकार, कृष्ण और राम, मध्ययुग के सर्वाधिक मान्य अवतारो पर लोकप्रिय आख्यानो की रचना कर इन दोनों कवियो न न केवल राजस्थानी साहित्य के ही प्रत्युत हिन्दी साहित्य के भी एक वडे अभाव की पूर्ति की। इन दोनो काव्या को पृष्ठभूमि पर किया गया हिन्दी और राजस्थानी के परवर्ती राम और कृष्ण चरित सम्बन्धी काव्यो का मूल्यांकन ही समुचित कहा जायगा।

५१ रहमतजी (विक्रम सवत १५५०-१६२५)

ये रौळ (नागौर) के एकान्तवासी मुसलमान विष्णोई साधु थे। इनका समय उपयु क्त अनुमित है।

इनका ५ दोहो का एक हरजस-"रळ मिळ करै है अचार हेली, आयो घर ही पु वार क" की टेकवाला प्राप्त हुआ है (प्रति सख्या ४८ मे)। इसमें जाम्भोजी के अवतार, अवतार का कारण, उनके गुण और महिमा का भक्ति-भाव भरा वर्णन है। उल्लेखनीय है कि कवि न जाम्भोजी को विष्णु ही माना है। प्रसिद्धि को देखते हुए इनकी और रचनाएँ होने का भी अनुमान होता है। उदाहरणार्थ अन्तिम ४ छन्द द्रष्टव्य हैं —

घर घर ही सों नौसरो रे हेली मुष देषण सु वार।
सोरभ अत हो सुहावणो इार न दसों द्वार ॥ २ ॥
निगम नेत जस गावही रे हेली सेस सहस फण सार।
सिव ब्रह्मादिक षोजतां विसन तणों नहीं पार ॥ ३ ॥
इन्द्र सहत सर्व देवता आए चरण जुहार रे हेली।
चरण प्रस्या जी स्याम का गावै मगळचार ॥ ४ ॥

पहराजा के कारण रे हेली समरथळ अवतार।
जन रहमत की वीनती जंभ गरू अवतार ॥ ५ ॥

५२ गुणदास (संवत् १५६०-१६४०)

इनकी १३ पंक्तियों की एक "कणां की" साखी उपलब्ध होती है[1]। इससे प्रतीत होता है कि ये समय-विशेष के लिए जाम्भोजी के समकालीन और उनके पश्चात भी मौजूद रहे थे। इस दृष्टि से ये सधिकालीन कवि हैं। अनुमानतः इनका समय ऊपर निश्चित माना जा सकता है।

साखी में गुरु-भाइयों और 'जमातियों' से आपस में मिलने, मिलकर पारस्परिक भेद भाव दूर करने, जाम्भोजी की महिमा, उनके उपदेश-पालन तथा आवागमन से मुक्ति पाने का वर्णन है। यह नीचे दी जाती है —

जी हो मिलो हो जमाती अर गुर भाई, जां मिलियां दिल खुल्हें ॥ १ ॥
खुल्हे स खुल्हे म्हारो सतगुर बोलें, दिळ सादा दिळ खुल्हे ॥ २ ॥
टांके तोळो रतिये मासो, धुळ घड़ि आप कसाव ॥ ३ ॥
यड सौदागर संभराज साह घड़ियो, हीरा लाल विसाहे ॥ ४ ॥
वसयद खरचो गुर को कयळ समाळो, ज्यो साहिब क मन्य भावें ॥ ५ ॥
हूर क सुर मिल मन मानो, उत पायळ को डर थावो ॥ ६ ॥
सुर तेतीसां संभराय मेऊ, मूरे मूर मिलावो ॥ ७ ॥
हयव सरोवर को म्हानें,इयक उमाहो, नित हयव सरोवर न्हावो ॥ ८ ॥
रतन कया मिलें नवरगी, बोहडि न इण लडि आवो ॥ ९ ॥
गढ तेतीसां म्हारों वास करावो, पाटो अमर लिखावो ॥ १० ॥
सभरथळि सतगुर परमास्यो, कवि केवळ ग्यान सुणायो ॥ ११ ॥
हम गुनही गुर म्हारो पूरो दाता, म्हारा गुन्हां माफ करावो ॥ १२ ॥
गति परसोमें गुणदास बोल, आवागु वणि चुकावो ॥ १३ ॥

साखी बहुत प्रसिद्ध और प्रचलित रही है। इसके आकर्षण का प्रधान कारण यह है कि इसमें जाम्भोजी की विद्यमानता तथा उनके पश्चात– दोनों कालों की साम्प्रदायिक दशाओं के भावपूर्ण संकेत मिलते हैं। इन दोनों का ही प्रत्यक्ष द्रष्टा होने से कवि के कथन विश्वसनीय, सहज-ग्राह्य और प्रभावशाली हैं। दूसरा कारण कवि की निश्छलता है जो बारहवीं पंक्ति में ध्वनित है। इससे जाम्भोजी के पश्चात् बिखरती हुई साम्प्रदायिक स्थिति का भी भान होता है। दूसरी पंक्ति की अंतिम अर्द्धाली पर सबदवाणी (८४ ३) का प्रभाव प्रतीत होता है।

१–प्रति संख्या ७६ ९३ ९४ १४१ १४२, १५२ १९१, २०१, २१३ २१५, २६३ २८९ ३२१। उदाहरण प्रति संख्या २०१ से।

५३ लाखू (लाखाराम) (सवत १५६०-१६५०)

ये मारवाड के हजूरी गहस्थ विश्णोई थे। इनका समय उपयु क्त अनुमित है।

राग 'सिधु' मे गेय इनकी १६ छन्दों की एक साखी प्राप्त हुई है[1] जिसमे भविष्य में होने वाले कल्कि अवतार, उसकी सेना, विजय और तदुपरान्त वसुधा के साथ विवाह तथा सत्ययुग की स्थापना का वर्णन है[2]।

उल्लेखनीय है कि कवि ने कल्कि का कलियुग के साथ युद्ध-वर्णन न करके तद् हेतु उसकी सेना, सज्जा तथा युद्ध से पूर्व और विजयोपरान्त स्थिति का ही विशेष वर्णन किया है। उसकी इस सेना म प्राय सभी देवता, सिद्ध पुरुष और पूर्व में हुए अवतार सम्मिलित होंगे। दूसरी बात युद्ध की मर्यादा से सबधित है। कल्कि अपने लोगों को उनकी जोडी के शत्रुओं के साथ युद्ध करने को प्रेरित करेंगे। तीसरे कल्कि की विजय के साथ ही तेतीस कोटि जीवों का उद्धार हो जाएगा और भगवान के प्रह्लाद को दिए हुए वचनो की पूर्ति होगी।

सम्प्रदाय मे यह "अगम की साखी" नाम से प्रसिद्ध है जो वर्ण्य विषय की दृष्टि से त ही है। कल्कि अवतार से सम्बन्धित रचनाओं मे इसका विशेष महत्त्व है।

उदाहरण के लिए ये छन्द द्रष्टव्य हैं —

डो कालिंग साथि, विसर्न रचावलो, उतपति धुधुकार, पुवण चलावैलो ॥ १ ॥
से किरणे सूर, फेर तपावलो, सरण रहिस्य साथ, असरो दशावैलो ॥ २ ॥
दुळ होय असवार, तमचय नचावैलो खडग तिधारो हाथि, विसन संभाहैलो ॥ ४ ॥
त्या पदमें अठार, रायव आवलो, जादम छपन करोडि, कन्हड आवलो ॥ ६ ॥
य लोक तत सार, आणि मिलावलो वाजै जांगी ढोल, निसांण घुरावैलो ॥ ११ ॥
प आपणी जोट, आणि भिडावलो, तोर काळग को तोडि, धरणि ढुलावैलो ॥ १२ ॥
पर्धा आणद होय, कोड रचावलो, मिल तेतीसे कोडि, पहळाद थपावैलो ॥ १५ ॥

५४ कवि - अज्ञात छप्पय (रचनाकाल-सवत-१५९६-९७)

परमानदजी वणियाळ ने प्रति सख्या २०१ मे 'साखा' (फोलियो-५४६ ४७) मे तगत जाम्भोजी, विश्णोई सम्प्रदाय, मुकाम-मन्दिर और कतिपय कवियो सम्बन्धी अन्य महत्त्वपूर्ण सूचनाएं देते हुए लिखा है कि सवत् १६०६ की आसोज वदि १४ को इम्मन्वा नागोरी और राव जतसी बीकानेरिया मुकाम-मन्दिर पर आए, उसकी प्रदक्षिणा की, चन्दा किया और अन्दर गए। कहने लगे- जाम्भोजी की जगह बडी जगह है। तब साथ

१-प्रति सख्या ६४, १४१, १४२, १९१, २०१। प्रथम प्रति मे इसको राग "सूहब" में गेय बताया है। उदाहरण प्रति २०१ से।
२-रिद्धि उपधि तिण वार, सतजुग रचावलो। बोउ लाख पात, आगिम गावलो ॥ १६ ॥

थे एक राजपूत ने यह दोहा कहा[1] —

छाया खोज न दीसतो, लोह हुतो जिणरो कह्यो।
कुम्भा तिस नींद न व्यापती, थोहुरो झांमोहु पनि मर गयौ॥

इसकी सुनकर प्रतिक्रिया स्वरूप वहाँ उपस्थित किसी धर्मप्रिय विष्णोई ने प्रस्तुत छप्पय कहा —

अजू गग जळ वहै, अजू छलियो रणायर।
अजू मेर नहीं टल्यो अजू रवि तप दिणायर।
अजू धर आकासि, अजू पंग पवण फरक।
अजू ध्रस[2] रिस धनि धम, अजू कपूर महक।
तीन लोक चवदं भुवण,वदन मुनि जस जस भयो।
ससार करन अठ अभ न कहि म कहि झमो मुयो॥

छप्पय मे "झांमोहु पनि मर गयौ" का घोर प्रतिवाद तो है ही, साथ ही कवि की निर्भीकता, स्पष्टवादिता, प्रत्युत्पन्नमति और जाम्भोजी को सर्व-शक्तिमान, अजर-अमर मानने का दृढ विश्वास और असीम आस्था भी प्रकट होती है। स्मरणीय है कि ऐसे कवियों की इस प्रकार की सुदृढ भावनाओं के कारण ही सम्प्रदाय मे विघटन नहीं हुआ और एकता तथा एकरूपता बनी रही।

उपर्युक्त छप्पय की तत्काल प्रतिक्रिया यह हुई कि दोनों ने इसमे कथित बात की सत्यता जानने के लिए "तावूत" खोल कर जाम्भोजी को प्रत्यक्ष में देखने का आग्रह किया। परमानदजी के अनुसार, इस पर विष्णोइयों ने प्रतिवाद किया और चौदस के दिन झगड़ा रहा। उस दिन रात्रि को नाल्हाजी (निहालदास चोटिया जाट) नामक विष्णोई को सोते समय यह वाणी सुनाई दी-'यदि ये खोलें तो खोलने देना, रोकना मत। इनको निश्चय दिलायेंगे'। दूसरे दिन तावूत खोलने पर जाम्भोजी के माथे पर 'पसीने के मोती' और हाथ में "जपमाळी" फिरती देखकर बोले-"दूसरों के सबद तो सच्चे हैं, पर शरीर नहीं, किन्तु जाम्भोजी के सबद और शरीर दोनों ही सच्चे हैं"। उनको अपनी इस करनी पर घोर पश्चात्ताप भी हुआ[3]। (...)

१-"समत १६०६ असोज वदे १४ महमदखा नागौरी जतसी वीकानेरीयो मुकाम्य आया। मुगट दोळा प्रदेषणा दीन्हा। चडावो कीयो। झागळौ उभो करे मुगट मां वड्या। कहण लागा-भाभजी री जायगा वडी जायगा। एक रजपूत दूहो कह्यो"।

२-ध्रस्रिष (ध्रुवऋषि) कश्यप का नामान्तर है। ये ब्रह्मा के मानसपुत्र मरीचि के पुत्र, सप्तर्षियों म एक तथा सृष्टिकर्ता प्रजापतियों में प्रधान माने जाते हैं। विष्णोई साहित्य मे अन्यत्र भी "दीप" और तिरद' नाम से इनका उल्लेख मिलता है। द्रष्टव्य सुरजनजी कृत रामरासो का विवेचन।

३-'दुहो कवत महमदखान जतसी साभल्या। त्यो नी देषा पोल्य न देषा। वीसनोइ अरज करण लागा। चवदसि र दिन कजियो रह्यो। साम्ही मावस री राति आई। नाल्हाजी ने राति सुतां अवाज हुई-पोल तो पोलण द्यो। मतो पालियो। माह की नीसा करि-

(शेषांश आगे देखें)

परमानन्दजी के इस कथन मे एक ऐतिहासिक असगति है। सवत् १६०६ में बीकानेर की गद्दी पर राव जैतसी न होकर राव कल्याणसिहजी थे। राव जैतसी का देहान्त तो सवत १५९८ मे हो चुका था[1]। इसी प्रकार इस सवत् तक नागौर पर मुहम्मदखा का अधिकार नही रहा था। सवत १५९० (सन् १५३३) मे नागौर का सूरवशीय शासकों के अधिकार मे होना पाया जाता है[2] तथा कम से कम सवत् १६१२ तक–हुमायू की मृत्यु तक वह मुगलों के अधिकार मे भी नही था[3]। इस प्रकार या तो यह सवत गलत है अथवा ये नाम। सवत ही गलत प्रतीत होता है, क्योंकि राव जैतसी का मुकाम-मन्दिर के निर्माण मे सहायता देना तथा उसके बन जाने पर वहा जाना परम्परा से प्रसिद्ध है। उस समय साधु रणधीरजी वर्तमान थे। उनके साथ नागौर का कोई अन्य मुहम्मदखा रहा होगा, शम्सखा का वशज और जाम्भाणी साहित्य में उल्लिखित "मुहम्मदखा नागौरी" नही। ाम का निज-मन्दिर सवत् १५९७ के चैत सुदि ७ को पूरा हुआ था[4]। इस प्रकार यह ना इसके पश्चात और १५९८ के बीच किसी समय सभवत १५९६–९७ मे घटी होगी।

५५ वील्होजी (विक्रम सवत १५८९-१६७३)

जीवन-वृत्त

वील्होजी के जीवन और कार्यों के सम्बन्ध मे सुरजनजी, केसोजी, परमानन्दजी, ोविन्दरामजी, साहबरामजी आदि के उल्लेखो तथा अन्य कई स्रोतों से पता चलता है। ाहबरामजी ने जम्भसार (प्रति सख्या १६३) मे तीन प्रकरणो (२१, २२, २३) में िचित् विस्तार से इनके विषय मे लिखा है। कालक्रम की दृष्टि से वील्होजी के जीवन को ो भागों मे बाटा जा सकता है —(१) उनके विश्नोई सम्प्रदाय मे दीक्षित होने तक तथा (२) उसके पश्चात।

"जम्भसार" के प्रकरणो (२१, २२) मे विभिन्न प्रसगों मे जाम्भोजी की भविष्यवाणी के रूप मे वील्होजी का परिचय दिया गया है जो उनके जीवन के प्रथम भाग विषयक परिचय की पृष्ठभूमि कही जा सकती है। एक के अनुसार, एक समय जाम्भोजी ने अपने सब सन्तों के मध्य रेडोजी, निहालदास और रणधीरजी–तीनों को महन्त बनाया

स्यां। परभात तबूत पोलय दरस्या माय पसेव का मोती हाथे जपमाळी फीर। कहण लागा–वीजा रा सवद माचा न पीड काचा। श्री झांभजी रा सवद इ साचा, पींड इ साचा। घतरी कह पछ पछतावो कीयो। असडो कोई हीदवाण तुरकाण कइ कीयो नही सो आपा कीयो। अपार रो पार कोणी पायो न पायसी। हम कोइ हींदवाण तुरकांण इमी वीचारजो मती"।

१-ओझा बीकानेर राज्य का इतिहास, प्रथम खड, पृष्ठ १३६, सन् १९३९।

२-डा० कलानन्द जैन एन्सियन्ट सिटीज आफ राजस्थान–नागौर, अप्रकाशित शोध-प्रबन्ध, राजस्थान विश्वविद्यालय पुस्तकालय, जयपुर।

३-ओझा राजपूताने का इतिहास, जिल्द पहली, पृष्ठ ३१२, सवत १९९३।

४-स्वामी ब्रह्मानन्दजी विश्नोई धर्म विवेक, पृष्ठ ४२, सवत् १९७१, द्वितीय सस्करण।

किन्तु चौथी गद्दी के महन्त की सफेद पोशाक, जाम्भाणी टोपी, चोला, माला और चद्दर एक "पेटी" में रख दी । साधुमण्डली ने महन्त का नाम पूछा, तो वे बोले–"स्वाल्डी शाह" नामक बादशाह जो मेरा शिष्य हो गया था, पुण्य कर्मों-वश रेवाड़ी में एक बढ़ई के घर जन्मा है, नाम वीठल है । आठ वर्ष बाद वह यहाँ आएगा और इस पंथ को चलाएगा' । तब रेडोजी ने पूछा कि उसको जानेंगे कैसे ? जाम्भोजी ने उत्तर दिया–मेरे 'सबदों' को वह एक बार सुन कर ही पूरा बोल देगा । पुरोहित-वृत्ति देकर उसको चौथा महन्त बनाना । उसको मेरा ही स्वरूप मानना' । (२१ वां प्रकरण) । दूसरे (प्रकरण २२) के अनुसार, ८५ वर्ष की आयु में जाम्भोजी लालासर चले गए । साधुओं ने उनका देह-त्याग का विचार देख कर प्रार्थना की–"पंथ का धणी" तो किसी को अवश्य कीजिये' । तब जाम्भोजी ने प्रथम कथन विस्तार से बताते हुए वह सदूक दिया और उसको वील्होजी के आने पर उनको दे देने को कहा । ८ वर्ष बाद संवत् १६०१ के फागुन वदि अमावस्या को जब वील्होजी मुकाम मन्दिर में आए और जाम्भोजी की बताई हुई सभी बातें उनमें मिल गई तो रूपोजी ने उनको वह सदूक सौंप कर 'गुरु' मंत्र दिया । परमानन्दजी ने भी कुछ ऐसा ही उल्लेख किया है[1] । इनको तथा अन्य उल्लेखों को ध्यान में रखते हुए वील्होजी के इस भाग के जीवन के सम्बन्ध में निम्नलिखित बातें कही जा सकती हैं —

इनका वास्तविक नाम विटठलदास था । इनके शिष्य सुरजनजी ने इनको इस नाम से भी याद किया है किन्तु सम्प्रदाय में ये वोल्ह, वील्हो नाम से ही प्रसिद्ध हुए । इनका जन्म संवत् १५८९ में रेवाड़ी में दइया जाति के (परमो, परशुराम) सुथार (खाती) के यहां हुआ । ४ साल की आयु में ही इनकी आँखें जाती रहीं । ये बालपन से ही अत्यन्त कुशाग्र बुद्धि, सरसवी, धार्मिक-प्रवृत्ति के और बहुत अच्छे गायक थे । स्मरण-शक्ति इनकी अत्यन्त तीव्र थी । एक बार गुजरात की ओर से एक साधु आकर रेवाड़ी में रहा । अन्य बालकों के साथ खेलता हुआ विटठल भी उसके पास पहुंच गया । सन्ध्या समय उसने "साखी-सबद" गाये जिनको सुनकर इन्होंने "वाह ! वाह !" कहा और उसकी गाई हुई सभी रचनाएं ज्यों की त्यों सुना दीं । साधु ने संस्कारी जीव समझ कर परशुरामजी से इनको माँग लिया और साथ लेकर गंगाजी की ओर चला गया । कालान्तर में यत्र-तत्र भ्रमण करते हुए विटठलजी साधुमंडली के साथ नागौर हिमटसर में उतरे । वे प्रातःकाल घूमने निकले ही थे कि इन्होंने मुकाम-मन्दिर में हो रहे सबद-पाठ की ध्वनि सुनी । इस पर एक विश्नोइन-से इन्होंने पूछा–क्या दक्षिण-दिशा में कोई मन्दिर है ? वह बोली–"जम्भद्वारा" है आप भी जाकर दर्शन कीजिए । तब ४-५ साधुओं के साथ वे मन्दिर पर आए (जम्भसार, प्रकरण २२) । वहां रेडोजी और नाथोजी आदि के साथ अन्य अनेक विश्नोई हवन और सबद-पाठ कर रहे

१–"जमाते कहै- देवजी थारे लेप मां और देह धारे जको क्यों ओतार ? ओतार की मरजाद ईह की बांधियै । इह बिना वासो सुनर नही । —म्हारो वदलायत छ रेवाड़ी । जळम सुथार घरे ल । दोइयो जाते । आखे जपम । वील्हो नाव हुइसी । नाथिया तु थडी ना । सुणी-दीठी बात तान कही । भगत मीलिसी"
—चौळत कीया पड आ की वेगति, प्रति संख्या २०१, फोलियो २९९ ।

थे। वे सबद उनको याद हो गये। पूरे "सबद" सुनने पर वील्होजी को ज्ञानानुभव हुआ और प्रसिद्ध है कि उनकी आखों में ज्योति भी आगई। तब उन्होंने आत्म-निवेदन रूप एक "साखी" मे उद्धार की प्रार्थना की[1] और विश्नोई सम्प्रदाय मे दीक्षित होना चाहा (जम्भसार, प्रकरण-२२)। तब नाथोजी नामक साधु ने उनको गुरुमंत्र देकर दीक्षा दी। यह घटना संवत १६११ के कार्तिक सुदि सप्तमी[2] की है जब वील्होजी २२ साल के थे।

इस विषय में किंचित भिन्न विचार भी प्रकट किए गए मिलते हैं जिनकी चर्चा यहा आवश्यक है।

श्री स्वामी ब्रह्मानन्दजी के एक[3] मत के अनुसार, 'वील्होजी की माता का नाम आनन्दा बाई और पिता का श्रीचन्द था। ये रेवाडी के रहने वाले पुरी उपाधि-वाले सयासी थे। इनके नेत्र शीतला रोग से नष्ट हो गए थे। १८ वर्ष की आयु में एक साधु-मंडली के साथ ये अलवर गए, वहा चातुर्मास्य करके पुष्कर चले गए। वहा गोपाल भारती नामक विद्वान के पास रह कर ३ वर्ष तक विद्याध्ययन और योग-साधन किया। तत्पश्चात् जोधपुर राज्य में भ्रमण करने लगे और अध्यात्म-विद्या सम्बन्धी विषयों को समझने समझाने लगे। घूमते-फिरते ये संवत १६३२ मे जोधपुर के धूपालिया नामक ग्राम मे जा निकले। उस दिन माघ शुक्ला चतुर्दशी थी। रात्रि मे उन्होंने किसी को यह कहते सुना कि कल अमावस्या है, इसलिए कोई गाडी, हल न चलावे, खेत की मेड न बाधे कोई संसारी काम न करें किन्तु घर रहे, विष्णु की भक्ति, होम, यज्ञ, अमावस्या का व्रत आदि करे। यह बात सुनकर उन्होंने गाव वालो से इस सम्बन्ध मे पूछा। लोगो ने बताया कि इस गाव म विश्नोई रहते हैं, यह सूचना उनकी ओर से दी गई है। ये लोग अमावस्या के दिन कोई सासारिक कार्य न कर परमार्थ से सम्बन्ध रखने वाले कार्य करते हैं और सब मिल कर नियत स्थान पर बैठ कर हवन करते हैं। दूसरे दिन ये हवन करने के स्थान पर गए और विश्नोइयों के कर्तव्यों को देख कर उनके सम्प्रदाय में दीक्षित होने की इच्छा व्यक्त की। नाथोजी ने इनको 'पाहळ

१-गुर तारि बावा, जिवडो लोभी लब्धी पूनी, एगि पून क्रिया बोहतरा। १।
गुर तारि बाबा, मरि मरि गयौ जळम फिरि आयौ इण भयो न छोडी मेरा। २।
गुर तारि बाबा आवागुवण सह्या दुख सकठ, फिरयौ अनती फेरा। ३।
गुर तारि बाबा, मनज इडज उरधज भोगवी, भोगवी षणि अजेरा। ४
गुर तारि बाबा, लख चौरासी चौहचकि भीतरि भरम्यौ बोहळी वेरा। ५।
गुर तारि बाबा, योह दुख सह्या सरणि वीणि गुर की, करि करि करम कुफेरा। ६।
गुर तारि बाबा वर क्रिया वरी उठि लागा, मैं सरणा ताक्या तेरा। ७।
गुर तारि बाबा, मनि परच्या पूरा गुर पायैं, न भजू आन अनेरा। ८।
गुर तारि बाबा, अरज करू साहिबजी आगी, मोहि सबहो अबकी वेरा। ९।
गुर तारि बाबा, वील्ह कहै विनती गुर आग, द्यौ पार गिराय बसेरा॥ १०॥
—प्रति संख्या २०१ से।

२-सोळा स ग्यारोतर, सुदी सात ऊज मास।
नाथजी को नान सुण, परचे वीठळदास। —प्रति संख्या १६० और १६८।

३-श्री मर्दि स्वामी वील्हाजी का जीवन चरित्र, तथा श्री वील्हाजी का संक्षिप्त वृतांत, संवत १९७०।

पिलाकर'-विष्णोई बनाया और पुरी उपाधि हटा कर बील्होजो नाम रखा। एक सम जोधपुर नरेश चन्द्रसेन ने इनकी सिद्धि देखने के निमित्त अपने दरबार में बुलाया था'।

दूसरे स्थान पर[1] उनका कहना है-'संवत विक्रमी सोलह सौ बीस में शुद्धि-क्रम और श्री बील्हाजी नामी महापुरुष ने अधिक ध्यान दिया और अपने समय में उन्होंने अनेक नेक क्षत्रिय, जाट और वैश्य आदि जातियों को नूतन प्रविष्ट किया। वह विश्वस्त व्यक्तियों को ही स्वधर्म में प्रविष्ट करना वो उत्तम समझते थे। इनके धर्म प्रचार संबंधी कार्यों उस समय के जोधपुर के नरेन्द्र मालदेव महाराज के पुत्र कुंवर चन्द्रसेन की सहायता विशेष सफलता प्राप्त हुई। यह इस मत में आने से पहले दशनामी संन्यासियों के सम्प्रदाय के संत थे। इस धर्म के महत्त्व को देख कर फिर वे विष्णोई धर्म के संत श्री नाथाजी नामे महापुरुष के दीक्षित शिष्य हो गए थे'।

तीसरी जगह[2] वे कहते हैं-'बील्होजी ने बड़े जोर-शोर से प्रचार किया और उदयसिंह और चन्द्रसेन जोधपुर के राजा को उपदेश देकर इस मत की ओर आकर्षित किया और सैकड़ो जाट और राजपूतों को नये विश्नोई समाज में मिलाया।

साहबरामजी के अनुसार, संवत् १६०१ की फागुन वदि अमावस्या को बील्होजी सम्प्रदाय में दीक्षित हुए। वे ऊदोजी तापस को इनका गुरु मानते हैं, यह कहा जा चुका है। अन्यत्र भी वे इसकी पुष्टि करते हैं (-जम्भसार, प्रकरण २३, पत्र ३)।

श्रीरामदासजी महाराज का कथन है कि 'संवत १६०१ के वैशाख वदि ३ को बील्होजी ने जोधपुर के राजा सूरसिंहजी को परचा दिया[3]'।

स्वामी ब्रह्मानन्दजी के विभिन्न वक्तव्य ऐतिहासिक दृष्टि से असंगत और परस्पर विरोधी हैं। प्रथम उल्लेख के अनुसार संवत् १६३२ में बील्होजी सम्प्रदाय में दीक्षित होते हैं और पश्चात जोधपुर-नरेश चन्द्रसेन को सिद्धि-परिचय देते हैं, जो असंगत है। चन्द्रसेन संवत १६१६ से १६२२ तक जोधपुर में राज्य करने पाए थे कि उनको वहां से हटना पड़ा। संवत १६२६ में वे फिर बीकानेर के राजा रायसिंह के घेरे के कारण जोधपुर का किला छोड़ने पर बाध्य हुए और संवत् १६३७ तक-मृत्युपर्यन्त बाहर ही रहे। संवत् १६३६ में राठौड़ो की सलाह पर वे सोजत आए किन्तु अकबरी सेना के कारण उनको वहां से भी हटना पड़ा[4] था। स्पष्ट है कि बील्होजी का संवत् १६३२ में विष्णोई सम्प्रदाय में दीक्षित होना और पश्चात नरेश चन्द्रसेन से जोधपुर में मिलना-दोनों बातें सम्भव नहीं हैं। कवि का जन्म संवत उन्होंने नहीं बताया है किन्तु संवत १६०० ध्वनित होता है। उनका दूसरा

१-अखिल भारतवर्षीय विष्णोई महासभा, तृतीय अधिवेशन, कानपुर, सभापति-पद से दिया गया भाषण, संवत् १९८१।
२-विद्या और अविद्या पर व्याख्यान, संवत् १९७२।
३-श्री १०८ श्री जम्भेश्वर धर्मदिवाकर, पृष्ठ ५-६, संवत १९८४।
४-(क) ओझा जोधपुर राज्य का इतिहास, खण्ड १, पृष्ठ ३३२-३५०, सन् १९३८।
(ख) ,, बीकानेर राज्य का इतिहास, खण्ड १, पृष्ठ १६५-६६, सन् १९३९।
(ग) पं० रामकरण आसोपा मारवाड़ का मूल इतिहास, पृष्ठ १४३-४७।

उल्लख पहले का विरोधी है। संवत् १६२० में या इससे पूर्व तो वे दीक्षा ग्रहण करते हैं और इसी साल उनको, 'कुंवर' चन्द्रसेन की सहायता मिलती है जो अनुचित है। 'कुंवर' तो वे संवत १६१९ तक ही थे। तीसरे में उन्होंने केवल चन्द्रसेन और उदयसिंह के नाम दिए हैं, संवत नहीं। उदयसिंहजी का राजत्वकाल-संवत १६४० से १६५२ है। इनसे मिलने की सम्भावना हो सकती है किन्तु प्रतीत होता है कि उनको वील्होजी का विशेष सम्बन्ध चन्द्रसेन से ही मानना अभीष्ट है। वस्तुतः वील्होजी का विशेष सम्बन्ध जोधपुर के राजा सूरसिंहजी से था।

साहबरामजी के अनुसार, वील्होजी ११ साल की आयु में, संवत १६०१ में दीक्षित हुए। मुकाम-मन्दिर में आने के प्रसंग से विदित होता है कि साथ वाले साधु उनको अत्यन्त आदर की दृष्टि से देखते हैं और उनकी आज्ञा का पालन करते हैं। इससे वे स्वयं निर्णायक और सम्मानित साधु प्रतीत होते हैं, जो ११ वर्ष के बाल-साधु के लिये परिस्थिति देखते हुए असम्भव सी बात है। अतः इस संवत में उनका दीक्षित होना जँचता नहीं। दूसरी ओर साधुओं की सर्वमान्य 'वंशावलियां' में यह संवत् १६११ दिया हुआ है। साधु-परम्परा में भी यही प्रसिद्ध है। दीक्षा-तिथि और महीनों में भी साहबरामजी और ब्रह्मानन्दजी में मतभेद है। दोनों के उल्लेख ठीक नहीं हैं।

श्रीरामदासजी का कथन भी अमान्य है, क्योंकि सूरसिंहजी का जन्म संवत् १६२७ में हुआ था। संवत १६०१ में वील्होजी उनसे मिल ही कैसे सकते थे ?

साहबरामजी का ऊदोजी तापस को वील्होजी का गुरु मानना भी ठीक नहीं है। सभी प्राचीन उल्लेखों के अनुसार नाथोजी ही उनके गुरु थे। 'साधु-वंशावलियों'[1] के अतिरिक्त सुरजनजी,[2] परमानन्दजी[3] आदि ने भी ऐसा ही माना है। वील्होजी के निधनस्थान-रामडावास से प्राप्त "साधाँ री वसावळी" (प्रति संख्या २९४) में एक बहु-प्रचलित दोहे में भी यही कथन है —

नाथजी मुख ग्यांन सुणि, परचे वीठळदास।
पंथ उजाळण आवियो, वील्ह नाम परकास ॥

दीक्षा के पश्चात उल्लेखनीय है कि जाम्भोजी के पश्चात् 'बिश्नोई पंथ' एक प्रकार से सूना हो गया और विचलित होने लगा था। अनेक राजा और छोटे बड़े लोग उसको त्यागने लगे थे। वील्होजी के दीक्षित होने तक सम्प्रदाय की नींवें डगमगाने लगी थीं। उसको थोड़ा-बहुत सहारा सम्प्रदाय के साधुओं और 'पंचायत' का ही था। ऐसी स्थिति में

१–दो का उल्लेख किया जा चुका है। प्रति संख्या १७० में भी–"प्रथम आचार्य श्री जाम्भोजी। जाम्भजी का चेला नाथोजी। नाथोजी का चेला वील्होजी" लिखा है।
२–'नाथो मोनी नाव हीर गुण वीठळराया।'
–रैदोजी के सन्दर्भ में उद्धृत छप्पय की एक पंक्ति।
३–क्रम गुर नाथव वील्हजी, धनो नेतो निज दास।
दांमो रासो और ग्यान गुर है सतगुर का दास ॥ ६ ॥ –नमस्कार प्रसंग, प्रति २२७।

वील्होजी ने उसको सम्भाला[1] और अपने अथक प्रयत्नो से पुन उसको सुदृढ धरातल पर स्थित किया । दो प्रकार से उन्होंने यह काय किया – एक तो साहित्य निर्माण से और दूसरे अन्य विभिन्न कार्यों से । ऐसे कार्यों म स कतिपय का उल्लेख यहा किया जाता है ।

सवत १६४८ म वील्होजी ने 'जाम्भोळाव" पर दो मेल आरम्भ किये । एक तो चत बदि ११ से अमावस्या तक– "चती' मेला (द्रष्टव्य अल्लूजी, कवि सख्या ३८ के प्रसग म) और दूसरा भादवा की पूर्णिमा को– "माधी" मेला[2] । इसी प्रकार, मुकाम में भी परम्परा से चले आ रहे फागुन बदि अमावस्या के मेले के अतिरिक्त आसोज बदि अमा-वस्या का मेला शुरु किया[3] । तीनो ही मेले आज पयन्त चले आते हैं । जाम्भोळाव के उत्तर की ओर पडे पत्थर पर उन्होने 'पाळ भी लगवाई[4] । वहा अब मन्दिर बना हुआ है ।

'अज्ञानो' (अपरनाम ज्ञाननाथ, ज्ञानचन्द या ज्ञानदास) नामक वामपथी भूतनाथक' व्यक्ति ने अनेक विष्णोइयो को पथ भ्रष्ट कर अपना अनुयायी बना लिया था । वह लोगो को पहले जल पीकर फिर स्नान करने और "चहम–चहम ' भजन करने को कहता था । वील्होजी ने जोधपुर के रुडकली ग्राम मे उसको परास्त कर उत्थापित किया तथा धर्मोपदेश दकर अनुयायियो सहित सम्प्रदाय म प्रविष्ट किया[5] । कालान्तर म वह मेवाड क समेला ग्राम म चला गया, जहा उसने एक विशाल विष्णोई मन्दिर बनवाया[6] । इस मन्दिर की नींव मेवाड के महाराणा जगतसिंह (प्रथम) के राजत्व काल (सवत १६८४–१७०९)[7] में सवत् १६९० क वशाख सुदि ३, सोमवार को दी गई थी[8] । ज्ञानवान या ज्ञानी का पद मारवाडी म "स्याणो', "स्याणा" होने से, सम्प्रदाय म वह 'स्याणिया' या 'स्याणिदे

१–सूनो पथ विटलतो भयो । सागे धम सम जम सग गयो ।
वार राजा च्यार पठाए । कोटक जाट और मुगलाए ।
ईह सब पथ छोडते भए । चलतोई पथ उलट मिल गए ।
जे जै जीव सुपात सनेही । जभ धम राप्यो सुद्ध तेहीं ॥ ४७ ॥
–प्रति सख्या १९३, जम्भसार, २२ वा प्रकरण, पत्र २५–२६ ।

२–'प्रसिद्ध है कि इसके आरम्भ करने मे वील्होजी को पाली ग्राम निवासी चौधरी माधवजी-गोदारा ने विशेष सहयोग दिया था । इसलिए मेले का नाम "माधी" रखा'।
—श्री स्वामी ब्रह्मानन्दजी का अखिल भा० वि० महासभा, कानपुर के ततीय अधि-वेशन पर सभापति पद से दिया गया भाषण सवत १९८१ ।

३–स्वामी ब्रह्मानन्दजी श्री महर्षि स्वामी वील्हाजी का जीवन चरित्र, सवत् १९७० ।

४–इस पत्थर पर पाळ लगावो । तात उजड न पाव दावो ।
सु नत ही स्यात पाळ कर दई । उतराद छेड सो भई ॥
–जम्भसार, प्रकरण २८ वा पत्र २७ ।

५–प्रति सख्या १९३ जम्भसार प्रकरण २३, पत्र १४ । स्वामी ब्रह्मानन्दजी ने विश्नोई धम विवक, (पृष्ठ २८) म इस घटना का सम्बन्ध जाम्भोजी स जोडा है जो गलत है ।

६–स्वामी ब्रह्मानन्दजी श्री महर्षि स्वामी वील्हाजी का जीवन चरित्र ।

७–ओझा उदयपुर राज्य का इतिहास तृतीय खण्ड पृष्ठ, ८३०–३६, सवत १९८९ ।

८–दरोगा के विश्नोई भाट श्री लालमोहम्मद मिरासी (मुकाम–श्री बजोल्या) की बही के अनुसार ।

भूत नाम से भी प्रसिद्ध है। भूत इसलिये कि वह भूत-साधक था। उसकी समाधि समेला के निज-मन्दिर से २० फुट पूर्व की ओर है जिसको 'स्याणिये का मन्दिर' कहते हैं।

मरु भूमि मे यत्र तत्र बिश्नोइयो को पथ भ्रष्ट होते देख कर इन्होंने उनको किंचित भय दिखाने की भी आवश्यकता समझी, क्योंकि केवल समझाने से वे मानने वाले नहीं थे। यह विचार कर राजकीय सहायता और सहानुभूति-हेतु वे जोधपुर गए[1]। वहां के राजा सूरसिंहजी ने उनसे भेंट की, उस दिन बैसाख वदि तीज थी। प्रसिद्ध है कि एक चारण के कहने पर राजा ने वील्होजी के सिद्धि-बल जानने के निमित्त तीन "परचे-" "सिट्टा, काकड़ी और मतीरा" मांगे। उन्होंने "वूकळ मार कर" तीनो ही चीजें प्रस्तुत कर दी। तब राजा ने उनको जाम्भोजी के समान जान कर प्रार्थना की और कुछ मांगने का कहा। वील्होजी ने बिश्नोई सम्प्रदाय की स्थिति पर चिन्ता व्यक्त करते हुए कहा—'जाम्भोजी के बाद लोग धर्म छोडने लगे हैं, बिना राजकृपा के ये लोग नहीं मानेंगे। मुझे कुछ आदमी, छोटे तम्बू और दण्ड देने की स्वीकृति दीजिए'। राजा ने ऐसा ही किया। इस सहायता से वे मारवाड मे जगह-जगह घूम कर अनेक धर्म विमुख लोगो को वापस सम्प्रदाय मे लाने मे सफल हुए (जम्भसार, प्रकरण—२३, पत्र २-४)। महाराजा सूरसिंहजी भक्तिभाव वाले (आसोपा मारवाड का मूल इतिहास, पृष्ठ १५८-१६३) वीर, दानशील और योग्य शासक थे। दानपुण्य की ओर उनकी विशेष रुचि थी और वे ब्राह्मणो, चारणो आदि का बडा सम्मान करते थे (ओझा जोधपुर राज्य का इतिहास, पृष्ठ ३८७)। वील्होजी जैसे साधु को इनसे सहायता मिलना कोई आश्चर्य की बात नही है। इस घटना के समय का निश्चित पता नहीं चलता सम्भवतः यह संवत १६६०-६२ मे किसी समय घटी होगी। ऐसे ही बीकानेर और जैसलमेर नरेशो से भी उनको धर्म रक्षार्थ दो ताम्रपत्र मिले थे[2]। उन्होंने जीव रक्षार्थ "थाट अमर करवाये", वृक्षो का काटा जाना सर्वथा बन्द करवाया तथा प्राणतिपूर्वक आठ "साके" किए जिनमे से तीन का परिचय तो उनकी साखियों से भी मिलता है।

उपर्युक्त सभी बातों की पुष्टि इनके शिष्य सुरजनजी के इस कवित्त से होती है –

तीरथ झांभोळाव, चेत चौठिये मिलायो।
मेळो मंडयौ मुकांमि, लोक आसोजी आयौ।
अमर थाट बाकरा करे, खेजड़ी रखाव।
आयांनू उपये, गति सोह ग्यांन मिलावै।

1-। छन्द। देख भ्रष्ट आचार अति कर, सत अन सोचत भए।
जिनहिं राज न मान एहि जन, कछु कहे न तब चुप हो रहे।
राज बिन अचौ न मानहि, अस कहिं फिर गढ कूं गए।
कह दास साहब आस कर जम वील्ह गुर चरण नए ॥ ५० ॥

। दोहा। वीलरू मन अस भई। जोरि किन्या नहिं प्रीत।
प्रीत किया पूछ नहीं एही जगत की रीत ॥ ५१ ॥
—जम्भसार, २२ वा प्रकरण, पत्र २८।

2-स्वामी ब्रह्मानदजी विद्या और अविद्या पर व्याख्यान, पृष्ठ ७, पादटिप्पणी।

अधिपा सील पोथी कथा, सुपह पथ सवारियो।
सोझत आठ साका किया, वील्ह वकुंठ सिधारियो॥

वील्होजी ने अनुभव किया कि अधिकांश राजकीय और शासक-वर्ग के लोग हत्या और कुसंगति में लगे हुए हैं और वे इन्हें छोड़ नहीं सकते। अतः रजवाड़ों को छोड़ कर जन साधारण और गरीब लोगों को सुपथ पर लाने के लिए उन्होंने अपेक्षाकृत अधिक जोर दिया[1]। उन्होंने अनेक स्थानों पर ज्ञानोपदेश कर सम्प्रदाय को सुधारा और अनेक अन्य लोगों को "पाहळ" देकर नए सिरे से विष्णोई बनाया[2]। प्रसिद्ध है कि एक बार ये भ्रमण करते हुए अपने अनुयायियों के साथ लाम्बा गांव में उतरे। वहां लोगों को आचार विचार हीन और बाणगंगा के पानी के लिए गाली-गलौज करते हुए देख कर बोले -

काढो चोंथ, मच्छी मार, नित री कर लडाई।
दूज गाव बस बिसनोई, लाम्ब बस कसाई॥

और यह कवित्त कह कर उनको दूसरे गांव चलने का आदेश दिया —

परहरिय सो गाव, नांव बिसन को न भणीज।
नहीं साध सू गोठ, ग्यान सरवणे न सुणीज।
घणो वाद अहकार, घणी पर-द्रोह काज।
नहीं धरम सू सीर, मुखे अभपळ बोलीज।
भेट्यो सतगुर को कह्यो राह सतानी पाखडी।
वील्हा विलब न कीजिये, जिह नगरी एका घड़ी॥५॥

-प्रति संख्या २०१

इस पर लोगों ने पूछा—महाराज, तब कैसे गांव में वास करना चाहिए? तो उन्होंने एक कवित्त[3] कहकर यह बताया और वहां से चल पड़े[4]। समान [illegible]

१-वील्हदेव मन कीन्ह विचारा। छोड देवो सर्व राज दवारा।
इनके हित्या कर सतसगी। इह सब लोक कर कुसगी।
तातें इनकू मति चेतावो। गरीब लोक कूं राह लगावो।
मन जिय जाण तजेउ रजवाडा। पूरण छतीसू बाधऊ वाडा।
-जम्भसार, २३ वां प्रकरण पत्र १३।

२-बीकानेर फलोधी जु देस देस धर्म धारे छिमा हु सतोष नित नीत [illegible] हैं।
गगा पार देस अरु कालपी कनौजपुर, तहां वील्ह देव गुर धर्म निज धारे हैं।
और हू अनेक जीव वील्हाजी मिलाए सीव, अनाना उधार दुनि जोधाण पधारे हैं।
सूरसिंघ राजा परचो पाय कै मगन भये, कहै गोमदराम हाव भाव जु बधारे हैं॥४
-गोविन्दरामजी के कवित, प्रति संख्या २००।

३-जिह नगरी धरम दिढाव, सत मिवरण नर सूरा।
सर्म सुचील सिनान, जुगति जरणा पग पूरा।
मेल्हि मन्यों मिराति भरम भोळावो भांन।
जप एक बिसन, आन को सेव न मांन।
बोलण्यो गुर मांमो सही जांह को धन्य जीतब जियो।
वील्हाजी को दीन जोविज, जीह नगरी वासो लियो॥६॥ -प्रति २०१।
(फुटनोट ४ आगे देखें)

वील्हाजी को सह्य नही था। लोक का सर्वतोमुखी उत्थान उनका ध्येय था। इसके लिए उनको अनेक प्रकार के और अनेक मतावलम्बी लोगो को समझाने के लिए अथक प्रयत्न और महान् उद्योग करने पडे। अनेक साधु-सतों की गवाही है कि उनको इस काय मे पूरा सफलता मिली थी। उनकी रचनाओं मे यत्रतत्र इसके सकेत मिलते हैं। उस समय तथाकथित वेदान्तियों का जोर था। वील्होजी ने ऐसों को खूब फटकारा था और लोगों को उनसे दूर रहने की सलाह दी थी[१]। वील्होजी पर सुरजनजी ने अत्यत मार्मिक मरसिये कहे हैं। इनमे बताया है कि लाख गुण वाले वील्होजी ने ससार मे दो तो बडे 'अवगुण' और पाच 'भरम' किए। अवगुण हैं—दुष्टो को सालना और सत्पुरुषो के हृदय म दिव्य-ज्योति का प्रकाश करना[२]। 'भरम' हैं—(१) विष्णोइयो का 'दाण' आधा करवाना, (२) वक्षों को न काटने की राजाज्ञा प्रचारित करवाना, (३) गुरु-कथित ज्ञान को सुनाना समझाना, (४) रामसर म वृहत यज्ञ कर जगत 'जिमाना' और (५) अनेक कूआ और जलाशया का निर्माण करवाना[३]। वे केवल तत्त्व-कथन ही नही करते थे, भावपूर्ण-रचना कर सुरील स्वरों म गाते भी थे। आत्मज्ञानी और कवि हाने के साथ वे राग रागिनियों के ज्ञाता और सुप्रसिद्ध गवए भी थे[४]। उल्लेखनीय है कि उनकी अधिकाश रचनाएँ विभिन्न राग-रागिनियों मे गेय हैं।

४-इसका सकेत गोविन्दरामजी कृत वील्होजी के भ्रमण-स्थानो के उल्लेख सबधी कवितों के बीच उनके (वील्होजी के) 'जिहु नगरी धरम दिढाव' कवित्त के उद्धत किए जाने स भी मिलता है। —प्रति सख्या २००।

१-देवजी न मेळी दुज, पथ ता पासे टळिया।
मेल्हि मुगुर की गोठि, जाय सताना भिळिया।
कूड घन मन माहि, जीभ ता अळियो भाप।
आप न कर ही धरम, अवर करत न राप।
राता विष विकार सू, आप सवारथी पर हती।
वील्ह कहै एक वीनती, विसन टाळि वेदान्ती ॥१३ —प्रति सख्या २०१।

२-ध्रम जप धारणा, ग्यान भारी गुण सागर।
सहज सील सतोप, कियो पथ महा उजागर।
सुप दीठा दुष जाय, दुष सह मिट दुरिजण।
लष गुण लभता, कीय दोय वील्ह अवगण।
दुरिजणां साल सणां दई, जोती श्री देवा जयो ॥
वीछडे जीव लागी विरह, अजे नैसासो न गयो।—प्रति सख्या २०१।

३-मकडाण मेटि दात अधकरी करावै।
वन वाढ राजसी, महत करि मेर छुडाव।
जो गुर कथियो ग्यान, ग्यांन सो गति सुणाव।
कियो जिग रांमसरि, न्यौत जिणि जगत जिमाव।
धेन पर नीर आसीस द्य, पोहमी निवाण किया पसा।
सुरजमाल ससार मा पाच भरम किया असा ॥—प्रति सख्या २०१ से।

४-ग्यांन गुसटि गुण आतमा, तिल अघ नही अधूरी।
जा पूछ तो पूछि, पूछी सारी तो पूरी।
च्यारि वेद री वात, कुळी सुध काढि सुणाव। (शेषाश आगे देखें)

जीवन के अन्तिम दिनों मे वे रामडावास मे आकर रहने लगे थे। उनके सात साधु शिष्य थे। (देखें-परिशिष्ट मे 'साधु-परम्परा') जिनमे अंतिम-सूजोजी (अपरनाम-सुरजनजी) को उन्होने अपनी गद्दी सौंपी[1]। रामडावास (रामडास) म ही सवत् १६७३ के चत्र सुदि एकादशी, रविवार को उन्होने स्वर्गलाभ किया,[2] जहा उनको समाधि दी गई। तबसे रामडावास वील्होजी का 'धाम' माना गया[3]। प्रसिद्ध है कि उन्होंने स्वर्गवास स कुछ पूर्व सब भक्तो के सम्मुख बठकर (राग धनाश्री मे) 'उ माहो' गाया था[4]। साहबरामजी ने

नाद वेद गुण जाण, कठ सर सोमार गाव।
प्रमोधि एक प्रीतम असो, गल्ह गुझ न को वियो।
वील्ह मरण फटो नही, है ! है ! बजर पथर हियो ॥ २ ॥—सुरजनजी, प्रति २०१।

१–(क) गोविन्दरामजी (कवि सख्या १०४) क कवित्त,–प्रति सख्या २००।
(ख) प्रति सख्या १९३, जम्भसार, प्रकरण २७, पत्र १९।

२–(क) वील्हजु महाराज तब धामहि सिधारे जब,
समत सोळास अरु तेहतरो वखाणिय।
सूरज उतर दिस काल सोई जानो उत,
रुतहि वसत मधुमास जु प्रमाणिय।
विष्णु वरत सुदि सोऊ एकादसि तिथि,
माना वार मे सुआदिवार दितवार मानिय
उतरा नपत मानो धुरव कर जोग जानो,
तुल सु लगन काल अमत जानिय ॥ १० ॥

(ख) साहबरामजी ने यद्यपि वील्होजी के देहावसान का समय नहा लिखा है तथा उन्होने इस सम्बन्ध म गोविन्दरामजी के उपयुक्त छन्द को उद्धत कर इस पुष्टि की है—जम्भसार, प्रकरण–२३, पत्र २३।

(ग) स्वामी ब्रह्मानदजी श्री महर्षि वील्होजी का जीवन चरित्र।
श्री परमानन्दजी ने "साका" (प्रति सख्या २०१, फोलियो ५४६–४७) के अन्त "सवत १६६३ फागण वदे ११ गाव रामडास्य वील्होजी वड्या" भूल से लिखा है।

३–सिर सिरोमण रामडास जा वील्हैजी को धाम।
जाक पद रज परसता मनसा पूर ण काम।
मनसा पूरण काम तास कोउ सीस निवाव।
मिट अयल अघ दास जास कोउ सरणैं आव।
पथ सुधारण कारण वील्हजु जम्भगुर आयुस आविया।
रामडास समाद ले वाल्ह वकु ठ सीधाविया ॥—गोविन्दरामजी के कवित्त, प्रति २००।

४–बाबो जाबू दीपे परगट्यो, चोहचकि कियो उजास।
अपनैठो केवळ कथा साधा मोमिणां को प्राण अधार ॥ १ ॥
दव तू जाहर हिरन वस्यो, तेरा जन पुहता पारि ॥ २ ॥ टेर ॥
समरथळ रळि मावणो जिन दव लगो दीवाण।
परगण्यि पगडो हुवो, निस अंधियारी भाण ॥ ३ ॥
एकळवाई पग ठयो करि हसजी भुपि जाप।
समू रो निवरण कर, जैय जप सोई आप ॥ ४ ॥
भगवी टोपी पहरतो गळि पथा दस नाम।
भोगी बांणी योलतो गुर वरज्यो इद बाद विरांम ॥ ५ ॥
नूप नहीं तिसना नहीं, गुर मेन्ही नींद निवारि।

(शेषांश आगे देखें)

उनकी साम्प्रदायिक देन की यह कह कर अत्यन्त सटीक व्याख्या की है कि जिस धर्म की जड जाम्भोजी थे, वील्होजी उसके स्तम्भ थे और शेष साधु-सन्त डालियो के समान थे। धर्म का उन्होंने पुनरुद्धार किया, उतरते हुए अमल के नशे को दुबारा चढाया[1] । राज—

काम लबधि व्याप नही, तह गुर की बलिहारी ।। ६ ।।
इसकदर परमोधियो, परच्यौ महमदखान ।
राव राणा नवि चालिया, सभळि केवळ ग्यान ।। ७ ।।
मधमा ता उतिम किया, खरी घडी टक्साळ ।
कहर क्रोध चुकाय क, गुर तोड्यौ माया जाळ ।। ८ ।।
सीप बस मझि सायरा, ओपति सायर साथि ।
रीगायर राच नही, चाहै बूंद सुवाति ।। ९ ।।
जळ विणि तिसना न मिट, अन विणि त्रपति न थाय ।
केवळ भाभ वाहरयो, कूण कहै समभाय ।। १० ।।
जळ सार वीणि माछळा, जळ विण माछ मराय ।
तम तो सारो हम विना, तम विण हम मरि जाय ।। ११ ।।
पपहियो पिव पिव कर, बोहळी सहै पियास ।
भुय पडियो भाव नहा, बूंद अधर की आस ।। १२ ।।
हंसा रो मान सरोवरा, कोयळ अंबाराय ।
मधकर कुंवळे रय कर, साध विसन क नाय ।। १३ ।।
नधनिया धनवाळ हो, अपण वल्हा दाम ।
विषिया वाल्ही कामणी, यो साध विसन क नाम ।। १४ ।।
बोह जळ बेडी बूडता, दूझे नही गिवारि ।
केवळ भभ वाहरयो कूण उतार पारि ।। १५ ।।
ठग पाहण पोहमी घणा, मेल्ही छडुं नी भुलाय ।
पाषंड करि पर मन हड, ता मेरो मन न पत्याय ।। १६ ।।
धन्य परेवा बापडा, छाज वस मुकाम्य ।
चूणि चुग गुटका कर, सदा चितार साम्य ।।१७ ।।
अबाराय वधावणा, आणद ठावों ठाय ।
साम्य सुमाहो माडियौ, पोह कियो पार गिराय ।। १८ ।।
काच कथीर न राचही, गुर विणज्या मोती हीर ।
मेरो मन रातो साम्य सूं, गुदडियो गुरां गहीर ।। १९ ।।
अवसरि मिलिया मोमिणां, वलि मेळो कदि होय ।
दुखी विहाव तम विणा, हरि विण धीर न होय ।। २० ।।
बोल्यौ वील्ह उमाहडो, करि मनि मोटी आस ।
आवागवण चुकाय के, दयौ अमरापुरि वास ।। २१ ।।
काही के मनि को धणी, काही के गुर पीर ।
वील्ह कहै विसनोईयां, नाय विसन क सीर ।। २२ ।।-साखी १११, प्रति २०१।

1-दस देसातर वील्ह सिधारे । गयो धम उलटो फिर धारे ।
-जम्भसार, प्रकरण २३, पत्र १४-१५ ।
चल्यौ पथ वीलेसुर काढयौ । उतर्यौ अमल फेर जिम चाढ्यौ ।
ध से सत पथ के थमा, डाळा सत मूल जड जभा
सब देसन में रमणी करेऊ, जहां तहां धम-बुद्धि वितरेऊ ।।
-जम्भसार, प्रकरण, २३ पत्र १८ से ।

इसमें चारो युगों और दसावतार[1] के सामान्य एव कलियुग[2] के विशेष उल्लेख सहित जन्म-महिमा[3] वर्णित है। सत्ययुग मे भगवान के मत्स्य, कूर्म, वराह और नृसिह-चार अवतार हुए। इस युग में भगवान ने प्रह्लाद की प्रार्थना पर पांच करोड जीवों को मोक्ष प्रदान किया। त्रेता में वामन, परशुराम तथा राम-लक्ष्मण तीन अवतार हुए। गुरु ने राजा हरिश्चन्द्र पर कृपा की जिनके साथ सात करोड जीवो को मोक्ष मिला। द्वापर में कृष्ण और 'बुध' दो अवतार हुए[4]। इसमें गुरु की राजा युधिष्ठिर पर कृपा हुई, जिनके साथ नौ कोटि जीवो का उद्धार हुआ। कलियुग मे "निकल्की" अवतार होगा। इसमे शेष बारह कोटि जीवों का उद्धार होना है। इनके उद्धार के लिए जाम्भोजी समराथळ पर आए हैं। जिन्होंने उनको नहीं पहचाना, वे आवागमन के चक्कर मे पडे रहेंगे। कलियुग मे कसाई मान-कथन करेंगे और निशक गाय-हत्या करेंगे। अवतार की आड मे लोग पाप-कर्म करेंगे, वे शक्तिशाली लोगो का साथ देंगे। खूनी "जमला" रचायेंगे। इस युग मे सतपथ से भ्रष्ट कुगुरुओं द्वारा भ्रमाए गए लोग अनेक प्रकार के पाखण्ड करते हैं[4]। ऐसे समय में प्रत्यक्ष सतगुरु आए हैं, किन्तु गवार लोग समझते नही। हीरा तो जोहरी ही पहचान सकता है। गुरु ने स्वय विषपान करके दूसरो को अमृत पिलाया, ऐसे कवल्य ज्ञानी के अतिरिक्त ज्ञान-कथन करने वाले झूठे हैं[6]।

१-धडा बध चोह जुग को, पणऊ दस अवतार।
सतगुर सुधो भाषियो, सु णियो मत विचारि ॥ २ ॥
-कळिजुग काळाहुळि घणी, कहि सभळाऊ साद।
जामू कही ज हेत सू, सोई चलाव वाद ॥ २६ ॥
कळि धुतारा आवस्य, दुनया करिसी मोह।
भू न सेठू वलहो, फीरि फीरि सोध पोह ॥ ३० ॥
पारि रूहि एको गिण, भुळाया कुगराह।
असा अकारण वरितिस्य, कळजुग लागताह ॥ ३३ ॥
-सतगुर वीणि जाण नही, चहू धरम को भेव।
सु गुर चेलो बूझिस्य, दया विहू णं हेव ॥ २५ ॥
वोह गुरा जाण्यों नही, अदया दया विचार।
ताह भरोसे बापडा, वोह बुझिस्य गिवार ॥ २८ ॥
यान वेहु णा गुर कर, परच वीणि पूजाहि।
मति हाणां मनहट कर, मन मुषि दान दीवाहि ॥ ३४ ॥
१-द्वापुर जुग मर परगट हुवो सो सगती सारत।
गोवळे कन्हड बुध वळ, असरा सघारत ॥ १३ ॥
१-सतपथ हू व पतरया, पतराया कुगरेह।
मूला कूडे कागळे, मन मोह्या मुकरेह ॥ ४२ ॥
कांहीं पथर पूजिया कांहीं गळि बध्या तूर।
कांहीं औसर घातिया, कांहीं मरधे सूर ॥ ४४ ॥
कांहीं मुगट सीरि बधिया, कांहीं मुदरा कानि।
थाऊ थाऊ होयस्यं, गुर मूलणां निदांनि ॥ ४५ ॥
१-गिगर दीपे दोह दिसा, भौळू भाय अ धार।
सतगुर आयो सापरति, बूझै नही गिवार ॥ ४६ ॥

(शेषांश आगे देखें)

रचना का महत्व सम्प्रदाय में मान्य तेतीस कोटि जीवों के उद्धार सम्बन्धी भावना और दशावतार वर्णन के लिए है। उल्लेखनीय है कि जाम्भोजी की गणना अवतार में न करके उनको "गोरख सतगुर" (दोहा ४६)-प्रकट विष्णु बताया है, जिन्होंने 'जोगरूप' में उपदेश दिया। तत्कालीन धार्मिक और सामाजिक स्थिति का भी सुन्दर चित्रण इसमें मिलता है। इस दृष्टि से कवि की स्पष्टोक्तियाँ और उपमाएँ देखते ही बनती हैं। रचना की कतिपय पंक्तियों पर सबदवाणी का प्रभाव प्रतीत होता है[1]। यह जाम्भोजी के जीवन-चरित्र सम्बन्धी कथाओं की पृष्ठभूमि के रूप में है। "कथा औतार पात' का संकेत भी कवि ने इसमें किया है[2]।

(२) **कथा औतारपात**[3] यह राग "मारू" में गेय १४२ "दोहे-चौपाइयों" की रचना है (अपरनाम-'अवतार चिरत जाम्भाजी का' तथा 'औतारपात का बखाण')। इसमें जाम्भोजी का प्राकट्य, बाललीला तथा उनके उपचार-हेतु किए गए उपायों का वर्णन है, जो संक्षेप में इस प्रकार है —

लोहटजी का वन में एक जोगी से पुत्रोत्पत्ति का वर पाना, जांभोजी का उत्पन्न हो कोई पेय-पदार्थ ग्रहण न करना, पीढ़े पर से "ईस" के बल, पृथ्वी पर पीठ न लगाना, न पीने के कारण भोपों को "भाग्या दिखाना", उनके प्रपंच, हांसा की अनुपस्थिति में बा जाम्भोजी का दूध की "बढावली" उतारना, उनको "गहला" कहने पर भोपों-ब्राह्म आदि से उपचार के लिए पूछना, भोपों का ११ जीव मारना, उनमें एक गर्भवती बकरी उत्पन्न दो जीवित बच्चों का मर जाना, इस रहस्योद्घाटन से उनका मान-भग्न, पुनः श्मशान-सेवी ब्राह्मण से उपचार, उसके पाखण्ड और कर्म-काण्ड, जाम्भोजी का पानी कच्ची मिट्टी के दीपक जलाना, पाण्डे का अहंकार-चूर और प्रतिबोध उसको बधाई-स्व एक गाय दिलाना और अन्ततोगत्वा वन-प्रवेश।

इसमें कवि अनेक प्रकार से भगवद्-महिमा और अपनी असमर्थता का वर्णन कर है। वह जाम्भोजी को परमेश्वर मानता है जिन्होंने कलियुग में "जोगरूप" में आकर "ग्य खड्ग" से (पापों पर) प्रहार किया। ऐसे सतगुरु के गुण कवि ने सुने हैं और चूंकि सत्य कथन से स्वर्ग-प्राप्ति होती है, अत वह गुरु के गुण-वर्णन करता है। जाने-अनजाने में

हीरा परख जूहरी, सुरति निज ही होय।
सुधि सराफी बाहर्‌यो, पारिख लहै न को ॥ ४७ ॥
अमी भोलाव विष पिव, जीवड होय जीयान।
कवळ ग्यानी बाहरयो, कूडो कथ गियान ॥ ४६ ॥

१-थळ माथ निवाण करि, नर काय लोड नीर?
नाळ पोळ न मिले रीणायर वीणि हीर ॥ ३६॥-सबदवाणी २६.१५।
कालर वीज न नीपजे, सूक ठूठ न फूल।
कवळ ग्यानी बाहरयो कूडा कुगरा न भूल ॥ ३८ ॥-सबदवाणी २० ३, ७१ १०

२-जह परि आयो जगत गुर सो परि कहू विचार।
वील्ह कहै औतार की परचो आळीगार ॥ ५३ ॥

३-प्रति संख्या ५, २७, ८१, १५४, २०१, २०७, २४७। उदाहरण प्रति २०१ से।

अपने मन से हुई झूठ से तो कवि बहुत ही डरता है क्योंकि इससे नरक-वास मिलता है। यही कारण है कि गुरु-गुणगान में अक्षर-मात्राओं की गलती के लिए भी वह क्षमा-प्रार्थी है[1]। इस सदभ में कवि की अन्य रचना 'सच अखरी विगतावळी' और ऐसे ही अन्य कथन भी यदि ध्यान म रखे जाएँ, तो इसमे वर्णित बातो की प्रामाणिकता पर आस्था होती है और अवाच्य लगती हैं। य इसलिए भी सत्य हैं कि कवि का रचना-समय जाम्भोजी के वैकुण्ठ-स-समय से विशेष दूर नही है। इसम सतुलित दृष्टि से नपी-तुली और बोलचाल की ावली म वर्ण्य-विषय को स्पष्ट किया गया है। भोपों के प्रपच का तो बड़ा ही सुदर वरण मिलता है। तत्कालीन समाज ऐसे पाखडियो के कारण[2] डूबा जा रहा था। रचना बीच-बीच म कवि ने अनेक दोहो म अपना सिद्धात और नीति-कथन किया है[3]। सगानुकूल होने से इनका हृदय पर गहरा प्रभाव पडता है।

कथा गुगळिय की[4] यह राग "आसा" म गेय ८६ दोहे-चौपइयों की रचना है,

---

१-एक जाम मुष ना ह्वडो, अळप भाव इणि ठाय।
हरि गु ण सायर ते घणों, मो मुखि क्यो र समाय ॥ २ ॥
ज्यों पपी समद त, नीरि चच छलि लेह ।
सायर ऊणो न थिय, हरि गु ण पारिष एह ॥ ३ ॥
कोटि रूप करि धारी क्या । जोग रूप जग आयो मया ।
ग्यान पदग पायो परहार । जीता काम क्रोध अहकार ॥ ५ ॥
वाह कहे हू डरपू घणों । मैं गुण सामल्यो सतगुर तणों ।
कूड कहे सो दोर जाय । साच कहे सो भिसती थाय ॥ १६ ॥
मन जाग जे कथणी करू । जाणि अजाणि कूड ता डरू ।
और कहू जे और होय । दरगे जाउ न आवें मोहि ॥ १७ ॥
आपर मात जे चूकू थाय । बकस करी तिहु लोका राय ॥ २० ॥
-धरती उपरि धाम सहि । साकळिया री सोक ।-
ज्ञानि पपो जागर कर, मुप ता बोल फोक ॥ ५५ ॥
हीर पपो हीजर कर, डाका तणा डभीड ।
गुर हीणा गळ कटणा, न जाण पर पीड ॥ ५६ ॥
कूडा कूड घड मन माहि । केतो हेक जुग मेल्ह्या भरमाहि ।
गहणा धान कर उ वार । धूते धूत्यो बोह ससार ॥ ५७ ॥
वड़क करक हो कर हाक । मुप ता बोळ कूड नीफाक ।
नाटक चटक भरमावणी । कहि कुवात सु णाव घणी ॥ ८ ॥
पूद भोपा बाभणां, भरडा मु दराळाह ।
मारो करिस्या बाळको निर्यो बधाई साह ॥ ७९ ॥
भोपा की भरमावणी, घो भव डूबतो जोय ।
जाव दिया जीव उबर, ता नरपति भर न कोय ॥ ६२ ॥
३-परव सम वीचारि कर, ततकण ल्यायो जोय ।
भोप साधु ई कूड की, दवा न राप कोय ॥ ८ ॥
धर्मियां गुरड़ दवार थी, ज्यों विष नविष होय ।
विमन अपना पाप प्यो, वोहडि न करियो कोय ॥ १०७ ॥
४-प्रति ३६, ६५, ७१, ८१, १५४, २०१। कथासार अंतिम प्रति के पाठ के आधार पर दिया गया है।

जिसमें संवत् १५४२ में पड़े अकाल में जाम्भोजी द्वारा लोगों की सहायता किए जाने का वर्णन है। गूगल से ऊँट बनाए जाने के कारण इसका यह नाम पड़ा है जिसका सार इस प्रकार है —

इस साल मे पड़े भीषण अकाल से समस्त जीव भूख से व्याकुल हो गए। लोग 'जीवारी' के लिए बाहर जाने लगे। "थली" में बापेऊ नामक गांव में यादव वंशी भाटियों से निहत गिलहरी, किसान और रायका लोग रहते थे। वे अत्यन्त अपवित्र रहते, मूस और जीव हत्यारे थे। उस समय जाम्भोजी समराथळ पर वास करते थे। वे लोग यदि कुछ उपाय पूछते तो जाम्भोजी अवश्य ही बताते किन्तु उनको उन पर विश्वास ही नहीं था। पाप-कर्मो मे लिप्त, भ्रम में पड़े हुए ये लोग कुल की लीक पीटते थे। भूत को तो देव बताते किन्तु "देवजी" का रहस्य नहीं जानते थे। जाम्भोजी को उन पर दया आई, वे उस गांव में गए। लोग उनके सम्मुख तो आए किन्तु अभिवादन नही किया। किसी ने भी उनसे सुपथ की बात नहीं पूछी क्योंकि वे जाम्भोजी को "गहला" समझते थे। जाम्भोजी ने ही उनसे पूछा तुम यहां रहोगे या "जीवारी" के लिए बाहर जाओगे? वे बोले-हम तो भूखों मर रहे हैं, यहां रहेंगे तो और अधिक दुख पाएंगे। बिना अन्न के रहा नहीं जाता, सो विदेश जाकर कुछ समय काटेंगे। जाम्भोजी ने पूछा-'जीवारी' के लिए कितना अन्न चाहिए? उन्होंने उत्तर दिया-यदि सवा मन अन्न रोज मिल जाय, तो हममें से कोई बाहर नहीं जाएगा। जाम्भोजी ने "बाईस के तोल का" सवा मन अन्न प्रतिदिन के हिसाब से मुफ्त देना स्वीकार किया और कहा—तुम दृढ़ निश्चय कर प्रतिज्ञा करो कि पशु, पक्षी आदि जीवों की हत्या नहीं करोगे और मन मे दया-भाव रखोगे। लोगों के मन मे सन्देह हुआ। जाम्भोजी ने दुष्काल समय तक, एक आदमी को एक ऊँट "छाटी" सहित "इकांतरे" ढाई मन अन्न के लिए भेजते रहने का आदेश दिया। वे इस प्रकार अन्न देते रहे। सावन आता देख कर उन लोगों ने खेती के लिए सिंध से 'बीज' मोल लाने की सोची। खिलहरियों के पास एक ही ऊँट था। उन्होंने जाम्भोजी से उस व्यक्ति के द्वारा एक ऊँट और दो ऊँटों पर जितना बीज आ सके, उसके दाम मांगे। जाम्भोजी ने तीसरे दिन गूगल और घी मंगा कर जंगल मे मनसा से एक ऊँट उत्पन्न किया। उसमें गूगल की महक आती थी। कतार में वह ही सरदार था। वे लोग 'बीज' खरीद कर सकुशल सिंध से वापस आ गए। गूगलिया उन्होंने वापस दे दिया जो छूटने पर नहीं दिखाई दिया। आषाढ़ मे वर्षा से दुष्काल दूर हो गया। तब जाम्भोजी के संकेत पर लोगों ने अन्न लेना छोड़ा। उनके उपकारों और अपने बुरे कर्मों को याद कर वे लोग पछताने और क्षमा-याचना करने लगे। सिद्धि-परिचय पाकर वे उनकी ज्ञानवाणी सुनने के लिए आने लगे। इस प्रकार जाम्भोजी ने स्वयं को प्रकट कर ज्ञानोपदेश से[1] मुक्ति-मार्ग दिखाया।

विष्णोई-सम्प्रदाय-प्रवर्तन की पृष्ठभूमि के रूप मे इसका सर्वाधिक महत्त्व है।

१-अंधेर चांदिण हुवो, सूझ्या धरम र पाप।
जाणायो जुगति सूं, सतगुर आपो आप ॥ ८१ ॥

तत्कालीन मरुदेशीय समाज, उसकी मनोवृत्ति और लोगों के तथाकथित धार्मिक विश्वास-मान्यताओं का बड़ा ही नपा-तुला और सटीक वर्णन कवि ने किया है। इसकी पीठिका पर जाम्भोजी की महत्ता का किंचित अनुमान किया जा सकता है। उन्होंने ऐसे समाज के उत्थान के लिए अथक प्रयास किया जो केवल ज्ञानोपदेश से मान नहीं सकता था, वरन् जो अलौकिक सिद्धि-परिचय और चमत्कार-प्रदर्शन द्वारा ही सुपथ पर लाया जा सकता था। यही जाम्भोजी ने किया और इसी कारण स्वयं को इस रूप में प्रकट किया। इसका संकेत कवि ने अन्यत्र भी किया है[1]।

लोगों की मनोवृत्ति के धीरे-धीरे बदलने का सुन्दर मनोवैज्ञानिक वर्णन कवि ने किया है। सर्वप्रथम, वे जाम्भोजी को 'गहला' समझते हैं। ऊँट और दाम मांगने से पूर्व तक उनकी धारणाओं में अंतर नहीं आया। यदि जाम्भोजी ये नहीं देते, तो वे फिर बदल जाते, किन्तु 'पूरब' के साथ अपनी इच्छित चीजों को देखकर उनको अचंभा हुआ। अब उनकी समझ में आया कि ऐसे दातार को 'गहला' कहना अपने गंवारपने का ही परिचय देना है। दुष्काल दूर होने पर अपने कर्मों और जाम्भोजी के उपकारों को याद कर उनको पश्चाताप हुआ जो प्रत्यन्त स्वाभाविक था। उनको सिद्धि-सम्पन्न समझ कर वे उनसे अनेक प्रकार की चीजें मांगने और पाने लगे[2]। यह देख, सुन कर लोग चारों ओर से उनके ज्ञान-श्रवण के लिए भी आने लगे। इसी पीठिका पर सम्प्रदाय-प्रवर्तन हुआ। लोगों की स्वार्थ प्रवृत्ति और जाम्भोजी की दयाशीलता का परिचय कवि ने **'तोऊ न मेल्है अढाई मणो'** अर्द्धाली की पुनरावृत्ति करके दिया है, जिसमें वर्षाकालीन मरुस्थल का भी सुन्दर वर्णन है[3]। लक्षणीय है कि लोग गूगळिये जमा ऊँट वापस देना नहीं चाहते थे, किन्तु रख भी नहीं

१-आयो आप मतेह, जगळि थळि जीवा धणी।
नकरा निरति करेह, दाळदि भजण देवजी ॥ २ ॥-"दूहा वील्हजी का", प्रति २०१।

२-लोका मने अ नेसडो, गहलां एह सुभाव।
पास भंडार बाहरयो, अ न पुजावे काह ?। २२ ॥
पूरब गयो देवजी क पासि। कह्यो सनेसो करि अरदासि।
हेक ऊठ कीता हेक दाम। देव देस्यो तो रहिसी माम ॥ ३८ ॥
जै तू देव न देही ऊठि। तो ए लोक दीपाळ पूठि ॥ ३९ ॥
आयो पूरब दीठो लोय। लोक रह्या अचंभ होय।
एवड दान कर दातार। गहलो कहै से लोग गिंवार ॥ ५४ ॥
पाप कियो पछताणा लोग। पहलू घणां बाध्या क्रम रोग।
अबलि वेहूणा निंद्यो देव। अब लाधो सतगुर को भेव ॥ ७३ ॥
गहरो गहलो कह्यो अजाणि। पाछ गुर सू हुई पछाणि।
भूपा न पहु चायो वरी। सरच्या लोग लुगाई परी ॥ ७४ ॥

३-आणि कौणक जदि घाती ठाय। सरम न करही अ न न जाहि।
गुर नाही वाचा चूकणों। मेल्है नहीं अढाई मणो ॥ ६३ ॥
आयो असाढ अ ति वूठो मेह। पळक्या पाणी वहि गई खेह।
नीलो निराण अ ति हुवो घणो। तोऊ न मेल्है अढाई मणो ॥ ६४ ॥
वगरी अर चदळवो जोय। आण जीम कर रसोय।
हुरी सीनावडी पडिया हाथ। तोऊ न रह पूरब को साथ ॥ ६५ ॥ (शेषांश आगे देखें)

रखते थे[1] । कारण कदाचित् यह था कि यदि वे ऐसा करते तो और धन नहीं ले सकते थे । कवि ने गिलहरियों के पापस शिव से पाने की रक्षा का भी दृश्य एक दूहे में उपस्थित किया है –

> पळियो साथ कियो प्रयाण, पांसै मेल्हया मढी निवाण ।
> पांसै मेल्हया रोही रन, कियो पयाणों मेल्हया बन ॥ ६० ॥

कवि की अन्य कथात्मक रचनाओं की भांति इसमें भी सुन्दर और संक्षिप्त संवाद हैं । कथा के बीच-बीच में दोहों में कवि की द्वारा युक्त निश्छल उक्तियां सहज ही पाठक का आत्म-विश्वास प्राप्त कर लेती हैं[2] ।

(४) कथा पूल्हेजी की[3] यह राग 'मारू' में शेष २५ दोहे-चौपाइयों की रचना है । पूल्होजी ने जाम्भोजी से उनके संसार में प्रकट होने का कारण पूछा । उन्होंने कहा— मैं प्रह्लाद से वचन-बद्ध होने के कारण बारह कोटि जीवों के उद्धारार्थ आया हूं । पूल्होजी के मन में संदेह बना रहा । वे उनकी सिद्धि का परिचय चाहते थे । उनकी प्रार्थना पर जाम्भोजी ने स्वर्ग दिखा कर विश्वास दिलाया[4] । इस पर पूल्होजी के ज्ञान-चक्षु खुल गये, संसार के माया-मोह से वे विरत हो गए[5] । अपनी सब सम्पत्ति उन्होंने 'जाम्भाणी' को, दो कन्याओं का विवाह किया और रिणसीसर गांव में मोक्ष-लाभ किया ।

कथा वर्णन और घटना प्रधान है जिसमें संवाद रूप में विषय को स्पष्ट कि

> धीणो धाप नीला चर । मूं हराऊ मुरट चापर ।
> पोटा छुळ करे चोल्यो घणा । तोऊ न मेल्हे भलाई मणों ॥ ६७ ॥

१–साथी सोह धरि आइया, आंणी किणक विमाहि ।
> गुगळियो मने न बीसरै, रहिण रापिणों न जाय ॥ ६१ ॥

२–वील्ह कहे प्रभवास वीणि, कोए वडो न वेस ।
> किमन चिळत करतो किपो, तिह गुर न आदेस ॥ ४७ ॥
> गुर वाचा पूरी हुई, रह्यो मेल्हाण संतोषि ।
> वील्ह कहे जपो विसन, तूठो देसी मोषि ॥ ७१ ॥
> सागरमणिया एह रतन, कथू न कूड कथन ।
> भाग परापति सपनू, पत्रामणी रतन ॥ ७६ ।

३–प्रति संख्या ६६, ६८ ८१, १०४, १५४, २०१, २५७ ।

४–कुण पुरष तू काम कहि, परगट इणि संसारि ।
> एकळवाइ थळि पड्यो, भगवी धोती धारि ॥ २ ॥
> बार इकवीसा मिल्ये, ज्यों र संमाहो होय ।
> तिह कारणि गुर आवियो, धरम विवाण मजोय ॥ ५ ॥
> देव कहे पूल्हो अवगान । परच बीणि परतीते न मांन ।
> करुं वीनती सतगुर साई । तू आयो बारा क ताईं ॥ ६ ॥
> कोडे तेनीसा सूं प्रत पाळो । पूल्ह कहे मोहि सुरग दिपाळो ॥ ७ ॥
> सुरग न देयूं अपणां नणो । तो न पतीजूं गुर का वणां ।
> सुरग दिपाऊं तर ताईं । सुरग गयो मन फरे नाहीं ॥ ८ ॥

५–ओ संसार काळ का पासा । चर्लण देपि चित रहे उदासा ।
> सुरगां सुप अगम अपारां । भुगत से आणं सुप सारा ॥ १७ ॥

गया है। पूल्होजी जाम्भोजी के सगे चाचा थे। उल्लेखनीय है कि सवत् १५४२ मे सम्प्रदाय प्रवतन होने पर, सव प्रथम पूल्होजी ही उसमे दीक्षित हुए थे। इससे पूव उन्होने जाम्भोजी से उनकी सिद्धि का परिचय चाहा था, जिसका वणन इस कथा मे हुआ है।

(५) कथा द्रोणपुर की[1] राग 'प्रासा' में गेय यह ६३ दोहे-चौपइयों की रचना है। इसमें मोती चमार नामक विष्णोई भक्त को द्रोणपुर के राव बीदा से छुडाये जाने का उल्लेख इस प्रकार है:—

मोती चमार द्रोणपुर मे रहता था। वह पूर्ण रूप से विष्णोई धम का पालन करता था। वहा का राव बीदा जोधावत जाम्भोजी को नही मानता था। उसको जब इस बात का पता चला कि नीच—चमार, उच्च वर्ग के लोगों से छुआछूत का भाव रखता है,[2] तो उसने उसको तत्काल जला मारने की आज्ञा दी। एक दयावान ने चार पहर की मोहलत उसको दिलवाई। अपने एक भक्त पर सकट आया जान कर जाम्भोजी शीघ्र ही द्रोणपुर के निकट एक 'धोरे' पर आए। पता लगने पर बीदा भी वहा पहुचा। उसने मन में सोचा —इस आदमी को सिर तो झुकाऊगा ही नही, ठोकर की लगाऊगा किन्तु जाम्भोजी के पास आते ही उसको सुबुद्धि आ गई। इच्छा होने हुए भी उसने लात नही मारी[3]। वह बोला-'तू तो स्वय को ही देव कहता, मोक्ष की बात बताता और दुनिया को नवाता है। यदि तू सत्य ही देव है, तो वह 'देवपन' आज दिखला'[4]। जाम्भोजी के कहने पर उसने तीन 'परचे'-(१) आको के आम, (२) निबौलियों के नारियल तथा (३) पानी से गाय का दूध, मागे। जाम्भोजी ने ऐसा ही कर दिखाया। बीदे ने सभासदों सहित दूध-पान कर इसका 'मत्र' जानना चाहा तो जाम्भोजी ने कहा—यह भगवदेच्छा पर निभर है। बीदे ने पुन उनके सहस्र शरीर देखने चाहे। इस हेतु लगभग ४० व्यक्तियों को भिन्न-भिन्न स्थानों पर भेजा गया। उन्होंने जाम्भोजी को हवन करते हुए और विभिन्न लोगो को उनके पाव पडते हुए देखा। यह जान कर बीदे के मन म भय उत्पन्न हुआ, क्योंकि उसने जाम्भोजी को न पहचान कर अनेक कुवचन कहे थे। अपने दोषों को स्वीकार कर वह बहुत ही पछताने लगा। जाम्भोजी से विमुख होने के कारण उसके कलक लगा। इस प्रकार, बिना किसी कलह के जाम्भोजी ने मोती भक्त को छुडवाया।

कथा म अलौकिक तत्त्व होते हुए भी मूल मे गुरु की कसौटी और कर्त्तव्य-पालन

१-प्रति सख्या १०, ६५ ६८, ७१, ८१, १५४, २०१,
२०७, २५१। उदाहरण प्रति २०१ से।

२-चाल हुई दीवाण मा, नगरी कु ण आचार।
उतिम ता छाटो लिय, मध्यम नीच चमार ॥ ९ ॥

३-पलक एक हुई सुमति मति आई। मनो कियो परि लात न वाही।
मनसा फेरी वात वीदांमैं। वा* रूप होय वेठो पास ॥ १६ ॥

४-की जोगी कोई सन्यासी। को तापस को तीरथ वासी।
को साध को सिध कहाव। कोई भगत भगवत धियाव ॥ १८ ॥
तू आपोई आपरि देव कहाव। गति परमोध दुनी नवांव।
जै तू आप सनि देव कहाव। सो देवापण आज दिखावै ॥ १९ ॥

का निदर्शन है। कवि का कहना है कि सेवक पर संकट पड़ने पर यदि गुरु से कुछ भी करते न बने तो ऐसे गुरु की सेवा व्यर्थ है --

सेवग न सकट पड़, गुर ता सद न काय।
जिणि गुर न लछण घड़, सेवा निरफळ जाय॥ ३॥

जाम्भोजी ने ऐसे ही एक अवसर पर अपने सेवक मोती मेघवाल का उद्धार किया था। यह कसौटी गुरु में कितने महान् गुणों की अपेक्षा रखती है, यह बताने की आवश्यकता नहीं। साथ ही कवि ने शिष्य के गुणों की ओर भी संकेत कर दिया है गुरु में दृढ़ विश्वास और असीम श्रद्धा। मोती ऐसा ही था --

साध कहै सुणि साधवो, सिंवरो सिरजणहार।
उबार तो उबरां, मरां त मोख दवार॥ १२॥

इसमे आए संवाद तथा कथन-विशेष की पुनरावृत्ति प्रसंगानुकूल है जिससे उनकी प्रभविष्णुता बढ़ गई है। पुनरावृत्तियों में दो प्रमुख हैं -- (१) वीदे की जाम्भोजी को लात मारने का संकल्प जिसे वह अन्त में प्रकट करता है और (२) उसके आदमियों द्वारा देखे गए जाम्भोजी के कार्य-कलापों का और रूप-वर्णन। ज्ञातव्य है कि कवि ने वीदे की मनोभावनाओं में होने वाले शनैः शनैः परिवर्तन के सुन्दर संकेत दिए हैं। वह मनहठी, अहंकारी और वादविवादी था[1] तथा जाम्भोजी के लात मारने की सोच कर चला था पहले 'परचे' से वह आश्वस्त नहीं हुआ। किसी 'अभेदी' व्यक्ति के इस कथन ने कि ऐसा तो गौड़वाजिए भी किया करते हैं,[2] उसके संशय को बढ़ावा दिया। उसने दो 'परचे' और मांगे। पानी से किए दूध की मधुरता और स्वाद जानकर लोभ और स्वार्थवश वह पलट गया, इसका 'मंत्र' जानने के बाद छोड़ने को कहा। जब मंत्र न लिखा जा सका तो सहस्ररूप दिखाने का आग्रह किया और आदमी भेजे। संशय अभी तक उसके मन में बना रहा, क्योंकि जो लोग वापस आए उनको उसने जोर देकर 'झूठ त्याग कर जैसा देखा वैसा बताने को कहा'[3]। समस्त वृत्तान्त सुनकर वह शंकित हुआ और कुछ देर तक तो वस्तुस्थिति को स्वीकार न कर सका, किन्तु समस्त घटनाएँ याद आते ही वह भयभीत हुआ और पश्चाताप करने लगा। जाम्भोजी से अब अपनी मनोभावना छिपाने की बात भी न रही, सो उसने सब कह दी। यह समस्त बात कवि ने अत्यन्त सहज और स्वाभाविक रूप से कही है।

१--ममता माल ज मनि, घणो वाद अहंकार।
विसन चिळन अवतार का, लहै न आळिगार॥ १७॥

२--भेदी कहै देवजी नहीं सोभा, आंव कर गोडिया देव भांभा॥
वीदो कहै सोह भरम तियागो, मन मानै सो परचो मागौ॥ २२॥
देव कहै सोह को मिनष कहावं, नीरडिए नाळेर निपावै।
वीदो कहै सोह को मिनष कहावं, नीरडिए नाळेर निपावै।
एक सभा मां कहै अभेदी, आ तो छ गोडियां री वदी॥ २६॥
वीदो अभेदी र कहिय चीनो। इण परच म्हारो मन न पतीनो॥ २७॥

३--वीदो गर दीवांणि बइठो। कहो भाई थे जिसड़ो दीठो॥ ५१॥
छग्नो भाणि कुड मन मापो। जिमडो दीठो तिसडो दापो॥ ५२॥

बिना "परचे" के तत्कालीन लोग– चाहे वे किसी भी वर्ग के हो, किसी महान् व्यक्ति को ऐसा स्वीकार करने वाले नहीं थे, यह कथा इसका प्रमाण है।

(६) कथा जसलमेर की[1] यह राग "आसा" मे गेय ८७ दोहे–चौपइयों और २० कवित्तो का रचना है। इसमें दिया गया १ कवित्त (सख्या १९)– "प्रथम दया करि भाव आप पर एक गिलोज" वील्होजी के "छप्पय" के अन्तर्गत है। इसमे रावल जतसी द्वारा जाम्भोजी को जसलमेर बुलाये जाने की घटना का वर्णन इस प्रकार है —

रावलजी ने जनसमन्द तालाब की प्रतिष्ठा पर यज्ञ कराने का विचार किया। इस आयोजन की सफलता हेतु उन्होंने जाम्भोजी को बुलाने का निश्चय करके अपन एक आदमी को उनके पास भेजा। उन्होंने जाम्भोजी की यह शर्त स्वीकार की– कि वे पूर्णरूपेण उनकी बात मानेंगे*। तब ३२५ ऊँट सजा कर साथरियों सहित जाम्भोजी चले और वासणपी गाव में आए। पता लगन पर रावलजी ने भेंट सजोई और अपन आदमियो के साथ पैदल वहा आकर उनके पाव लगे। जाम्भोजी ने एक कच्चा घडा रावलजी को भेंट किया। वहा उपस्थित ग्वाल चारण ने कई प्रश्न किये– देवजी के साथ वाले किस जाति और कुल के हैं? इन्होंने माथा क्यो मुडाया है? आदि। इनका यथोचित उत्तर तेजोजी चारण ने दिया। रावलजी न भी तेजोजी की बात की पुष्टि की। सब जतसमन्द पर उतरे। रावलजी के आग्रह पर जाम्भोजी ने उनसे इन चार[2] बातों के पालन करने का वचन मागा –

१–प्रति सख्या ४०, ६५, ८१, १५४, २०१, २०७, ३३०।

* आगे समस्त उदाहरण प्रति सख्या २०१ से हैं जहा ऐसा नही है, वहा सम्बधित प्रति का उल्लेख यथास्थान किया है।

(१) तत समन्द पतीठ की, हरष उपनी मनि।
उजवणो सुकियारथो आवै देव जिगनि॥ ५॥
सीष दिय साई करू, पाप न सके पोहि।
परच करू वरकनि हुव, तो जिग पूरो होय॥ ७॥

(२) देव कहै रावळ पुछावो। मोय आय नही अवर को दावो।
मिलिस्य जोगी न सन्यासी। मिलिस्य तापस तीरथवामी॥ १३॥
मिलिस्य राय घणी ठुकराई। जण परधान घणा छ माही॥
मिलिस्य पढिया पीडत जोयसी। माहरो कहियो करणो होयसी॥ १४॥
आयो सो आप कन रपायो। जण परधान आपरो चलायो।
आपर अकलि सु मति रूडो। कहिसी कह्यो न भाप कूडो॥ १५॥

(३) आसा पूरण दुप हरण, औसर सारण काज।
रावळ मार वीनती, था आया गुर लाज॥ २८॥

(१) दवजी कहै थार ठाकुर आया। नगर नजीक तणोट तणाया॥
सीण सगा रळि मिलण आया। मीठा बाकर भेंट लियाया॥ ७६॥
आज तणोटी दीस ताण्या। माह जीव गु ह विण आण्या।
व मरता मे जोव रपाडो। पहलो वरो सुक्यारथ म्हारो॥ ७७॥

(२) जा जा माडरि छाळी न्याव। तां ता हेज घणो वरि आव।
करि+ बीदोहि परजन मारीजै। ताथै अपज अकारण कीज॥ ७८॥
वेम लग से जोव उबारो। दूजो वरो सुक्यारथ म्हारो॥ ७९॥

+प्रति सख्या ४० में प्रति सख्या २०१ म "सर" पाठ है। (शेषाश आगे देखें)

१–आपके सगे-संबंधी ठाकुरों के तम्बुओं में बंधे बकरे आदि बेगुनाह जीवों को मारने से बचाएँ।

२–'वेम लगन वाले' (प्रजननशील) जीवों की रक्षा करें।

३–आपके राज्य में कोई "बावरी" (भील, नायक) किसी जीव का शिकार न करे।

४–किसी चोरी किए हुए 'जाम्भाणी दाग' वाले पशु के राज्य की सम्पत्ति मान लिए जाने पर, यदि उसका मालिक प्रार्थना करे, तो उसको प्राथमिकता देते हुए पशु वापस दिलवाएँ।

रावलजी ने इनका संकल्प लिया और राज्य में तद्हेतु ढिंढोरा पिटवाया। इस अवसर पर रावलजी ने कन्या का विवाह भी किया। सभी कार्य जाम्भोजी की आज्ञानुसार किए गए। समस्त आयोजनों में किसी वस्तु की कमी नहीं आई। रावलजी ने अपने देश में विष्णोइयों के बसाने की प्रार्थना जाम्भोजी से की। "जमात" में यह बात सुनने पर लखमण और पांडू ने अपनी जन्मभूमि छोड़ कर, यहां के खरीगा गांव में बसना स्वीकार किया। जाम्भोजी ने उनको अपनी अमानत बताते हुए उनके साथ सद्व्यवहार करने को कहा। रावलजी को आशीर्वाद देकर साथियों सहित वे सभराथळ पर आगए।

यह घटना संवत १५७० की है, क्योंकि इसी वर्ष जैतसीजी ने "जैतबंद" का निर्माण करवाया था (देखें– वीरविनोद, पृष्ठ १७६२)। इसका महत्व अनेक दृष्टियों से है। बोलचाल की मरुभाषा में गेय यह प्रबंधात्मक रचना है, जिसमें संवाद और पात्र विशेष के कथन की पुनरावृत्ति के कारण नाटकीयता का पर्याप्त पुट है। ये प्रसंगानुकूल और संक्षिप्त जिनसे समग्र "कथा" अत्यंत रोचक लगती है। संवादों में ये प्रमुख हैं –

(१) रावल और जाम्भोजी के– (क) वासणपी में, (ख) जैतसमंद तालाब' "वर" मांगने के समय तथा (ग) जैसलमेर में विष्णोई बसाने आदि के सम्बन्ध में।

(२) ग्वाल चारण और तेजोजी चारण का। इस अंतिम "संवाद" से विदा

---

(३) जितरी आण तुहार दावी। अतरी बावरी जीव रपावों ॥ ७९ ॥
अतरी माहे जीव उबरिस्य। ता धरम काज घणां ही सरस्य।
अतरी रा ये जीव उबारो। तीजो वरो सुवचारथ म्हारो ॥ ८० ॥
(४) जाहि चोर चोरी करि आवै। थारी सीव मा ढांढो ल्यावै।
नाग दोठ जै छ भामाणो +। चोर जाय हुव ठाकुर बांणो ॥ ८१ ॥
निरति हुव वेठिगर आव। आय परी दीवाणि सुणावै।
उगरि करि न पाछो दिराडो। चौथो वरो सुवचारथ म्हारो ॥ ८२ ॥
+ यह अद्धपंक्ति प्रति संख्या ६० से है।
१–ग च्यारि वरा सतगुर माग्या। सवळा करि न रावळ त्याग्या ॥ ८३ ॥
धनि धनि तू धरमां धणी, पापां अग्न प्रहार।
तोड़ता जीव उबरया। कई लख जीव हजार ॥ ८५ ॥
मरत भागळि वेम री, बाळ विछोड़ अंजि।
छमके टटोरो फिरयो, सुणियो मोह परजि ॥ ८६ ॥
छमके ढंढोरो फिरयो मल्ही मांरा दिराय।
बावरि मत को मारियो, रावळ कह्यो रामाय ॥ ८७ ॥

लोगो की उत्पत्ति, वेश और जाम्भोजी की महत्ता आदि अनेक बातो के सम्बन्ध में प्रामाणिक जानकारी प्राप्त होती है। तत्कालीन सामाजिक मान्यताओं का पता भी लगता है[1]। पात्र विशेष के कथनों में दो प्रमुख हैं, जिनकी पुनरावृत्ति हुई है- (१) जाम्भोजी का कथन जो उनके सेवक ने रावलजी के दरबार में ज्यों का त्यों सुनाया। (२) उसी सेवक द्वारा रावलजी की स्वीकारोक्ति को जाम्भोजी से कहना। दोनो चारणों के सवाल-समय रावलजी की कही हुई बातो से जाम्भोजी के जीवन चरित सम्बन्धी जानकारी भी मिलती है। उदाहरणार्थ रावलजी का यह कथन लें –

मोठ मिलि पालटियें खारा। गुर मिलियें रा ए उपगारा।
गुर पाणी हुतो दूध वियाव।। नीबड़ियां नाळेर निपाव ॥ ६५ ॥

यह राव बीदा वाली घटना से सम्बन्धित प्रसग है। तात्पर्य यह है कि ये घटनाएँ इस प्रसग से पूर्व ही घटित हो चुकी हैं। उल्लेखनीय है कि तजोजी चारण और लखमणजी गौनारा प्रसिद्ध कवि भी थे। इससे उनके गुणों का भी पता चलता है – एक के वाक् चातुर्य, साम्प्रदायिक-महत्त्व और ज्ञान का तथा दूसरे के सम्प्रदाय प्रेम, गुरु भक्ति और आज्ञाकारिता का। दोनों के विषय में इतनी जानकारी भी कम महत्त्व की नहीं है। इसी "कथा' में यह सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक कवित्त है जिसमें ६ राजाओं का उल्लेख है। ये जाम्भोजी के प्रभाव में

१-गुवाळ कहै दवजी र साथ मगाती। कु ण जानि न कु ण नीयाती।
कु ण कुळी माहे उतपना। चारण कहै सु णावो कांना ॥ ५१ ॥
तजो कहै प्रथमे तो जाट कुळी माह उतपना। गुर मिळियो जु हुवा सुग्याना।
पान हुवा पाळटिम्रा परिया। उतिम सगति हू निसतरिया ॥ ५२ ॥
सतपथ मेल्हि न जाही जूवा। कुळ पालटे न नृमळ हूवा ॥ ५३ ॥
गुवाळ कहै जीकारो जाण नन्ही पर कुकर का वाणि।
वतळाया हो हो कहै, नमळ कहि न वषाणि ॥ ५४ ॥
सासो तो सोहटो विक, नहा कचण र मोलि।
जाट म जाटे जाट छ, वारन्ट वना न बोलि ॥ ५५ ॥
आपर अकलि मु आपरौ, गु ण वायके सुजाण।
मायो काय मु डान्यिो एथ कगि हुवो अजाण ॥ ५६ ॥
नेजो क॰ मायो तो निहु अ गळा ऊग नही मु वाळ।
म्हे गुरमुषि मू ट मुडाडियो अळियो म चवि गुवाळ ॥ ५७ ॥
चौपइ मु दरा न्पी आदेस कहीज। माळा देषि राम राम कहीजै।
मुसलमान मनामा लेप। राह मारग का अं ही भेप। ५८ ॥
नीगुर मुगुर की परप लनीन। वानु देषि वदना कीज।
मु डत भप भगत रो वानू, भ्रानु नु वगि कर सुगेयानू ॥ ५६ ॥
मु ड मु डाया पेचर नीद। पळनर की वात न वीद ॥
कोडि निनाणव नरपति राया। गुर मिलियो जा मू ड मु डाया ॥ ६० ॥
गुर क सबदि सुमपर रीधा। कुल पाळटि न सत पथ सीधा ॥
कुळ माहे म्हे हु ना मारण। करता भ्र नरय जुलम भ्र कारण ॥
कुळ पालटि न कीया जूवा। पाप परहरि न चारण हूवा ॥ ६१ ॥
मारण ता चारण हुवा। मन ता मेल्ही मार।
चारा पणि मारा नही। भ्र सतगुर का उपकार ॥ ६२ ॥

थे या उनको गुरु मानते थे –

विस्सो तिष्वर साह, बे परचो परचायो।
महमदखां नागोरि, परचि गुर पाए आयो।
दूदो मेड़तियो राव, आय गुर पाय विलग्गो।
रावळ जसलमेर परचतां सांसो भग्गो।
सातिळ सानमुखि आय, सुचील जिन हुवो सिनानी।
सांग रांण सुणि सीख, जका गुर बही स मानी।
छप राजिंदर के क अमर, आचारे ओळखियो।
वील्ह कहै मांगो पूग्ह, ओह मुक्ति म हाथो दियो ॥ १८ ॥

रावलजी के श्रद्धा और प्रेम भरे उद्गार, उनके हृदय म उत्तरोत्तर विकसित होती हुई दास्यभाव की भक्ति के सुन्दर उदाहरण हैं। एक कवित्त म कवि ने जाम्भोजी की "सहनाणी" और "पारिस" भी बताई है[1]। रावलजी की कन्या के विवाह सम्बन्धी कतिपय छन्दों म जैसलमेर के राजघराने की तत्कालीन रीति, नीति और विवाह–पद्धति का अच्छा परिचय मिलता है। चौथे, "वर" से स्पष्ट है कि पगुमा पर "जाम्भाणी दाग" लगाने की प्रथा इस समय तक बहु प्रचलित हो चुकी थी। अन्यत्र भी वील्होजी ने इसका सकेत किया है[2]। जैसलमेर राज्य म सर्वप्रथम विष्णोई इसी समय बसे थे। जाम्भोजी और विष्णोई सम्प्रदाय के उत्तरोत्तर फलते हुए प्रभाव का पता इससे लगता है। इसम सक्षेप म ऊँटों और उनकी सजावट का भी उल्लेख किया गया है,[3] जो वील्ह कवि-कृत "कथा महमनी' म वर्णित 'मांढो' के वर्णन से तुलनीय है।

(७) कथा ओरडां की[4] यह राग "धासा" म गेय ३२ दोहे–चौपइयों की रच

१–सतगुर पारपि एह, प्रथमि मुखि कड न भाप।
भुर नहो दसू दवार, पांच इद्री वसि राष।
पुच्या तिसना नींद, ताहु र मूळि न च्याव।
प्रति न छिप पाप, पुन छिप गुर आप।
कूपह कु मारग वरजि करि, सुपंह सात करणी कहै।
सहनाण सुगुर तणा सुरता सुणो, प्र मन की प्रगट कहै॥ १७ ॥

२–अन्यत्र भी वील्होजी ने इसका सकेत किया है —
अपणा नाव चोपदा, जोयो गळ पीसि जाय।
वोत्त दिना का बीछड्या दाग पिछाणी आय।
अपणां किया उबारि ल्यो मेटो अगिला पाप।
दरग सू दागेल हुवा मसतगि दीन्ही छाप ॥–छुटक साखियाँ, प्रति २०१।

३–उजळ वागा सु हयेयारा। माता ऊठ र घणा सतारा।
कूची साज न वरगे सुघा। नामि साथ न सत स मुधा ॥ ३५ ॥
स्य सारिषी कर सभाई। वसणे सीरप डोरि वणाई ॥ ३६ ॥
ऊठ सिणगारि किया ज्यों उभा। भोळ साथे सोहाव सोभा ॥ ३७ ॥
ऊठ तीयस और पचीसा। महमा घणी कर तीसा।
भोली भुलरि मुहर छाज। अनत कळा सू आप विराज ॥ ३८ ॥

४–प्रति सख्या ३९ ६५, ७१, ८१, २०१।

है। प्रति सख्या ३६, ६५ और ८१ मे अन्त मे यह दोहा अतिरिक्त है —

अमियां गरुड दवार थो, ज्यों विख निर्विख होय।
विसन जपता पाप ल्यो, बोहडि न करियो कोय ॥ ३३ ॥

इसम सोत (सोतर) गाव के भोरड जाति के रावण और गोयद के बल की चोरी करने पर जाम्भोजी द्वारा छुडवाये जाने का उल्लेख है। चोरी इनका पेशा था। जाम्भोजी से भेंट होने पर ये मु डित होकर विष्णोई पथ में तो आ गए किन्तु मन मे गुरु की परीक्षा न करने के कारण सशय रह गया। सोचा, हम चोरी करगे, यदि पकडे गये तो जाम्भोजी को सच्चा गुरु मानेंगे। योजनानुसार उन्होने एक सफेद रग का बल चुरा लिया। पता लगने पर लोग शीघ्र ही उनके समीप जा पहुचे। अब तो घबरा कर उन्होंने जाम्भोजी से अपने उद्धार की प्राथना की। जाम्भोजी ने सफेद बल को काले वण का कर दिया। विष्णोई जान कर लोगो ने चोट तो नही मारी कितु पकड कर जाम्भोजी के पास झगडा निपटाने हेतु ले गये। उन्होने बल को पुन सफेद कर दिया। इस पर दोनो का अज्ञान दूर हुआ। जाम्भोजी ने उनके पूव जन्म की बात बताते हुए दुष्कम त्याग कर सुकृत करने का उपदेश दिया।

कथा से जाम्भोजी की सिद्धि और महत्ता का परिचय मिलता है जिसका उल्लेख कवि ने प्रथम और अतिम–दो छदो मे किया है[1]। साथ ही इससे उनकी कतिपय विशेष शिक्षाओ का भी पता चलता है। एक उल्लेखनीय बात यह है कि तत्कालीन समाज मे—"मुन्ति–वेश विष्णोइयों" का विशेष सम्मान था। उनके अपराधी होने पर भी लोग साधारणत उनका मान ही रखते थे। इसम रावण और गोयद को विष्णोई जान कर ही उन्होने चोट नहा लगाई थी। सवाद और कथन–विशेष की पुनरावत्ति से 'कथा' में रोचकता और नाटकीयता भी आगई है।

(८) कवत परसग का (प्रति सख्या २०१ मे) यह १३ कवित्तो (छप्पय) की रचना है। इसम यत्र–तत्र छन्दोभग है। रचना म अतिथि–सत्कार की महत्ता बताई गई है। एक बार जाम्भोजी परीक्षा हेतु किसी गाव मे पहुचे और एक घर मे भोजन की प्राथना की। पर्याप्त भोजन तयार होते हुए भी स्त्री ने इन्कार कर दिया। एक दूसरे घर की स्त्री न उनको सादर इच्छानुसार भोजन करवाया। सभराथळ पर जाम्भोजी ने इस स्त्री की सराहना की।

पहले वाली विष्णोइन किसी गाव में आई तो उसने जाम्भोजी के दशनो की इच्छा प्रकट की किन्तु उसको आज्ञा नही मिली। इस पर उसन अपना गुनाह जानना चाहा तो जाम्भोजी न कहलवाया—तुमने असत्य–भाषण किया है और भूखे अतिथि का सत्कार नही किया। क्षमा–प्राथना किए जाने पर उन्होंने कहा—स्वभाव नहीं बदला जा सकता और करनी करना का फल प्रत्येक को भुगतना पडता[2] है। जाम्भोजी की इस बात से पथ की

१–इक सुगर न वदनां मेट अघ अपराध।
मथिम तो उनिम किया, चोरा हु ता साध ॥ १ ॥
साध मगनि घर सतपथ, भाग परापति लाध।
वील्ह कहै धन्य सो गर, चोर भी कीया साध ॥ ३२ ॥
२–पाप कहै ये इम सुणो, रग काळा कदे न रता। (शेषांश आगे देखें)

शोभा थढी[1] । --

इसमे गृहस्थ के लिए दो गुणों-अतिथि-सत्कार और सत्य-भाषण पर बल दिया गया है। साथ ही धर्मपालन मे सामर्थ्यानुसार सतत जागरूकता की आवश्यकता और कर्मफल भोग की अनिवार्यता भी बताई है।

(६) कथा ग्यानचरी[2] - यह १३० दोहे-चौपइयों की मुक्तक रचना है जिसमें ज्ञानाचरण सबधी बातों का वर्णन है। इस वर्णन को मोटे रूप से पाँच शीर्षकों के अन्तर्गत लिया जा सकता है। आदि के १५ छन्दों मे भगवद्-महिमा वर्णन के पश्चात् मूल बात आरम्भ की गई है।

(१) पाप-पुण्य विचार[3] । यह विधि-निषेधात्मक रूप मे किया गया है (छन्द १६-३५
(२) अगति (नरक वास) के कारण[4] । जीव अपने किए कर्म याद करता है जो 'अग के कारण हैं (छन्द ४०-५२)।
(३) नरक-दुख-वर्णन[5] (छन्द ५९-९२)।
(४) स्वर्ग-प्राप्ति के उपाय (छन्द ६६-१०४)[6] ।

साहित्यिक दृष्टि से ज्ञानचरी का उतना महत्त्व नहीं, जितना धार्मिक दृष्टि है "सबदवाणी" के पश्चात् सम्प्रदाय के प्रमुख आचार-विचार, तत्त्वचिंतन और धर्म-निय का आधार यह रचना रही है, इसमे इनका प्रामाणिक विवरण मिलता है। परवर्ती कवि में इसका किसी न किसी रूप मे अनुकरण किया है। उदाहरण के लिए सुरजनजी कृत 'ग्या महातम', 'ग्यान तिलक', और "धरमचरी" को देखा जा सकता है। रचना का प्रमुख उद्दे

कायम कहै 'कळि'कल्म, परा पत चीत वचीता।
भ्रळी न भामाणी तणी, मांडियो विहु का तणा माहे मता।
उण न लिपिया भारी सूप दुप, उण न इधक सुरग सुप म नता।
गु णही होयसी सूकरी, लेहणी पूरी न लहै।
आ लीळ करैसी सुरग मा, गु ण अवगुण ए गुर प्रद्य कहै ॥ ११ ॥
१-सुजस सुणाई सोम, पय ओपम चड इधकाई।
धन्य धन्य म दिय सो धन्य, वीधि सई लहै वडाई।
वळे को चेत जीव, चेतिस्यो चेतणहारो।
वीणा वीगस मन, लपण उजाळ लारो।
वाहिय बीज नीपज निद्ध, वीणि वाह्य रहिय बुसा।
मापि कुसापि दहुवां तिणी, औसर वण सुणिजै असा ॥ १३ ॥
२-प्रति सख्या १५२ (घ), २०१ तथा ३४६।
३-समळि गुगर तणां उपदेस। पाप धर्म का कह नवे स।
मनि अभिमान न आंण प्रय। औगति धगति सभाळै सब ॥ १४ ॥
४-जो गुर कह्यो स मनि करि मेन्हा मनि आपाण।
जिवडा डर करि सांभळी अगनि तणां इहनांण ॥ ३६ ॥
५-दोर तप प्रकारणो, दुप भाळाहळ देह।
जो करतो मनि मोकळे, त फळ पाया एह ॥ ५८ ॥
६-गुर दया करि दाग्व हैमैं न गवि अर्याग।
हीय हरप करि सांभळी, सुरग तणां सहनांण ॥ ९५ ॥

पाप और पुण्य का वर्णन करना है। इनका ज्ञान होना और तदनुसार आचरण करना लोक और परलोक सुधार के लिए परमावश्यक है। कवि ने अन्त मे अत्यन्त सक्षेप मे एक प्रकार से "कथा" का सार दे दिया है[1]। उसने दोनो 'पथ' बता दिए हैं, यह स्वय मनुष्य पर निर्भर है कि वह कौन सी राह अपनाए[2]। रचना मे "गुरुवट"[3] पर चलने तथा झूठ न बोलने का अनेक बार उल्लेख किया गया है। इसमे जाम्भोजी और सम्प्रदाय पर कवि की दृढ़ आस्था का पता चलता है। अन्तिम उल्लेख "सचअखरी विगतावळी" के महत्त्व की ओर सकेत करता है। "कथा" के बीच-बीच मे कई दोहो मे ससार की नश्वरता, जीवन की क्षण-भगुरता आदि की ओर ध्यान आकृष्ट किया गया है[4]। प्रभावाभिव्यक्ति के लिए यह शैली प्रसगानुकूल और उपयुक्त है। स्वय कवि की दृष्टि मे यह एक महत्त्वपूर्ण रचना है जिसका सोल्लास उल्लेख उन्होंने अपनी अन्य कृति—'विसन छत्तीसी" म इस प्रकार किया है —

उदिम कर रे आदमी, उदिम दाळिद जाय।
जीभ विसन को नांव ले, अं निस सामि धियाय।
अं निस सांमि धियाय, ध्यान धरि हरि सू राचौ।
करो किसन की सेव, मेल्हि दे मनसा काचौ।
ग्यान कथा मां सभळो, तीनि लोक को राय।
विसन जपो उदिम करो, पाप पराछित जाय ॥ ४ ॥

(१०) सच अखरी विगतावळी[5] जसा कि शीर्षक से स्पष्ट है (सचअखरी=सत्याक्षरा) इसका वर्ण्य-विषय सही शब्दो की "विगत" देना है। इसम दैनिक व्यवहार और बोलचाल म प्रयुक्त होने वाले अनेक अशुद्ध शब्दो और उक्तियो के साथ उनके सही प्रयोग बनाए हैं। यह ५४ दोहे-चौपइयों की रचना है। नीचे शुद्ध और अशुद्ध प्रयोगो के कुछ उदाहरण दिये जा रहे हैं —

१-ठाकर साकर मान एक। गुर फुरमाई वहै वमेक।
जीवन मर सोई सुप लहै। गुर परसादे वील्ह ऊ कहै ॥ १२७ ॥
पाप ता हरिस्य, करणी करिस्य, कारिज सरिस्य ताह तणा।
पार गिराए वास लहिस्य सांभळियो साधु जणा ॥ १२८ ॥
सामळि प्राणी मुगुर वाणी, साच करि हिरद सही।
गर मुपि जाणी, मति परवाणी ग्यानचरी वील्है कही ॥ १२९ ॥
२-सगते धरम करा दिय, ता धरमा उपरि भाव।
दोयो पथ बताइय, मनि भाव जिह जाह ॥ १३० ॥
३-कुळ की कुळवटि छाडि करि, गुरवट लै चालति।
हावी हांडी परहर विसति विवाणि चडति ॥ ९४ ॥
४-मनवा मरण सभाळ रे, जुग सपनतर जाणि।
निहचै निरवाहो नहा, जीव सहेसी हाणि ॥ ३७ ॥
५-प्रति सख्या ६५ (क), ६८ (फ), ८१ (ग), २०१। प्रथम तीन म कतिपय छन्द त्रुटित है। उदाहरण अन्तिम प्रति से है।

अशुद्ध	शुद्ध
१–पोषी भाल	बाव सु बंग (वायु, पवन)
२–ल किणे बरगायो मेह ?	तू किण थो जणि बूठो मेह ?
कहै–बरगायो उमर्क गाम ।	मेह मही हु तो उण टांव ।
(प्रश्न–तूने मेह कहां बरगाया ?	(प्रश्न–जब मेह बरसा तब तू कहां था ?
उत्तर–कहता है–प्रमुक गांव में बरगाया	उत्तर–मेह म मैं प्रमुक स्थान पर था)
३–पाल्लो बुहो, नाला बुहो	पाणी बुहो ।
(बरसाती नाला बहा) ।	(पानी बहा) ।
४–नदी बुही प्राई	पाणी बुहो प्रायो ।
(नदी बहती प्राई) ।	(पानी बहता प्राया) ।
५–बळद पीयो ।	बळदे पाणी पीयो ।
(बैल पिया) ।	(बैल ने पानी पिया) ।
गाय पीयी ।	गाए पाणी पीयो ।
(गाय पीयी) ।	(गाय ने पानी पिया) ।
६–दो पो पीयो, चौ पो पीयो	दो पो पाणी पीयो, चौ पो पाणी पीयो ।
(प्रादमी पिया, चौपाया पिया) ।	(प्रादमी ने पानी पिया, चौपाए ने पानी पिया) ।
७–प्रगनि, प्रागि	बसदर देव ।
८–वसदर बाल्यो	बसदर जगायो ।
९–खोडा खाड काढ्या	प्रनन काढयो
(खलिहान निकाला) ।	(प्रनाज निकाला) ।
१०–खोडा खाड उपाड्या	खाड उपाडि र काढयो प्रनन
(खलिहान उपाडा) ।	(खलिहान उपाड कर प्रन्न निकाला) ।
११–पथ कित जयसी ?	इण पथ जाईजे किणि गाय ? प्रथवा
भो पथ उ प्रमक गांव जयसी ।	किस गांव को पथ ।
(प्रश्न रास्ता कहां जाएगा ?	(इस रास्ते से किस गांव को जाया जाएगा
उत्तर यह रास्ता प्रमुक गांव जाएगा) ।	प्रथवा (यह) किस गांव का रास्ता है ?) ।
क्योंकि, पथ कितक प्रावै नहीं जाय ।	(रास्ता न कहीं जाता और न प्राता है) ।
१२–मारग बुहो	दोपाया पथे वहै ।
(मार्ग चला)	(प्रादमी मार्ग पर चलता है) ।
	चौपाया पथे वहै
	(चौपाया मार्ग पर चलता है)
१३–पथी कहै–पुळियो पथ	कहै मारग चाल्यो प्रायो ।
(पथिक कहता है–रास्ता चला)	कहता है–(मैं) मार्ग चल कर प्राया हूं ।
१४–पथी कहै–गाव प्रायो	कहै–प्रापण गाए प्रायो

(पथिक कहता है–गाव आया)।	(मैं गांव आया)।
५–गाय बळद चीना	खड चारो चीनू
(गाय वल खाया)।	(चौपाए ने खली या चारा खाया)।
मीढा गाडर बाकर छाळी चीना	
(मिढा, भेड, बकरा, बकरी खाया)।	
साढि ऊठ घोडा घोडी चीनां	
('साड', ऊँट, घोडा, घोडी खाया)।	
चौप चीनू	
(चौपाया खाया)।	
६–हूं जीम्यौ, तू जीम्यौ	मैं जीम्यौ तैं जीम्यौ।
७–रानि थकी कहै–उगो सूर	
(रात्रि के होते यह कहना कि सूय उदय होगया)।	
उग सूर कहै–जे राति	
(सूर्योदय होने पर यह कहना कि रात है)।	
दीस सूर कहै–साभ पई	
(य के दीखते यह कहना कि साभ गई)।	सूरज ओल्है आयो मेर
रर हुवो	(सूय की ओट मे सुमेरु आगया या
अंधेरा होगया)।	सूय सुमेरु की ओट मे आगया)।

दिहुव नें दिहुवो कहै, सभ पई न सभ (दिन होने पर दिन और सध्या पडने पर सध्या कहना चाहिए)।

१८ गाडो गाडी हाक्यो	बळद हाक्या
(गाडा, गाडी को हांका)	(बल को हाका)।
१९–बळद भरया	छाटी छाली
(विणजारा कहता है–बैल भरा)	(छाटी भरी, बोरा भरा)।

–नर न मादी कहै अजाण,
साच झूठ न बोल छाण
(अनजान लोग नर को मादा कहते हैं।
मानी बोले नर कहै,
नर नु मादी कहत।
भेद विना सतगुर तण,

निगरा कूड पडत।
(जिसको मादा बोलना चाहिए,
उसको नर कहते हैं)।

२१–तीतर तीतरी स्याळ र स्याळी,
हिरणी हिरणां कहैं सभाळी।
चिडी चिडो दोय नांव कहै,
परहरि कूड़साच संग रहै।
(तीतर–तीतरी, शृगाल–शृगाली, हरिण–हरिणी, चिड़ा–चिड़ी को उनके लिंग–भेद के अनुसार कहने वाले सत्य बोलते हैं)।

२२–दुवली भस और गाय को 'निवली' या 'अघारी' कहना चाहिए।

२३–धीणो दुही (दुधारू दुहा)। — धीणो मेली दूह्यो दूध ('धीणे' से दूध दुग)

२४–सेवणी रिडै (हाडी, 'कढावणी') सीजती है। — अ न र पांणी रिडै (अन्न या पानी सीजता है)

२५–वणि चुणी (कपास का पौधा चुगा) — चुणए कपास (कपास चुनी)

२६–खेत माहि चौपो पड्यो (खेत मे चौपाया पडा) — खेत माहि पठो वड्यो (खेत मे पटटा घुस गया)।

२७–खाधो खेत (खेत खा गया, जिसमे रेत पडी है)। — खड अर अन चरियो। (खली और अन्न चर गया)।

२८–गाव वूठो (गांव बरसा) — वूठो मेह (मेह बरसा)।

२६–घाणी चूरी (घाणी को चूरा, दला या मसला)। — तिल चूर्या, जो चूरीज सोई कहणा। (तिल चूरा, जो वस्तु चूरी जाए उसी का नाम लेना चाहिए।

३०–आटो पीस्यो (आटा पीसा) — अन पीस्यो (अन्न पीसा)

३१–दाळि दळी (दाल दली) — जो अन चीरयो सोई कहणो (जो अन्न दला जाए, उसी का नाम कहना चाहिए।

३२–जिस वतन म जो वस्तु रहती है, वह उस वस्तु का 'ठाव' (वतन) कहलाता है, सो भूल से वस्तु को वतन कहते हैं। पहले वस्तु का नाम कहना चाहिए, वह जिसमें है, उसको उसका वतन कहना चाहिए।

३-ढांची घडा लादो	लादण लादणां लादो ।
(ढाची, घडा लादो) ।	(पगु पर लादा लादो) ।
३४-खळी खाधी	म न र चारो चीनो
(खलिहान-खा गया)	(मन और चारा खा गया) ।
वाडो चाधो	गौत चरीजे
(बाडा खा गया)	(गौत चरा)
	चारो मी हो
	(चारा खाया)
	(बाड़े म के पेड़ चरा)
३५ घोडा ऊट मोडो	पूठि उपरि माहिये पलाण
(घोडा, ऊट कसो)	(इनकी) पीठ पर 'पलान माडो' ।

केवल विष्णोई साहित्य मे ही नहीं, समूचे मध्ययुगीन राजस्थानी साहित्य मे यह ने ढग की अनोखी रचना है। भाषाशास्त्र के क्षेत्र में निर्विवाद रूप से इसका महत्त्वपूर्ण ान है। कवि ने वडी सूक्ष्म दृष्टि से दनन्दिन लोक-व्यवहार म प्रयुक्त एव प्रचलित बोली र उसके शुद्धाशुद्ध प्रयोगों की परख करते हुए उसे सोदाहरण स्पष्ट किया है। बोलचाल जिन छोटे-मोटे अशुद्ध प्रयोगो की ओर साधारणत किसी का ध्यान नहीं जाता, वील्होजी उहा का ओर ध्यान आकृष्ट कराया है, जिसको पढकर अनपढ और साधारण आदमी अपना बोली पर सतर्कता से विचार करने को बाध्य हो जाता है। इसमे लोक-भाषा लाक्षणिक शक्ति और अर्थ का सहज ग्राह्य और सुदर रहस्योद्घाटन किया गया है। ससे वील्होजी का मरुभाषा के मार्मिक ज्ञान तथा उनकी तल-स्पर्शिनी और व्यापक ष्टि का पता चलता है। लोक मे शुद्ध भाषा प्रयोग और व्यवहार उनका ध्येय है जिसकी ावश्यकता व इस प्रकार सिद्ध करते हैं —मोक्ष प्राप्ति के इच्छुको को गुरुवाणी से ज्ञान ग्रहण करना चाहिए, गुरु ने झूठ त्याग कर सच बोलने को कहा है[1], और जसे विष्णु नाम त्य है वसे ही सतगुरु जो कहते हैं, वह सत्य होने के कारण माननीय होना है[2]। जिसकी पहचान सत्य से है, मोक्ष का अधिकारी भी केवल वही है[3], अत सत्य बोलना चाहिए। जसे व्यापारी वस्तु को तराजू से पूरा तोलता है वसे ही शब्दों को पूरा तोलना चाहिए। कम तोलना और पूरा बताना, झूठ बोलकर सच कहना नहीं चाहिए[4]। प्रस्तुत रचना म कवि ने यही बताया है। इसके अतिरिक्त इसमे तत्कालीन मरुदेशीय समाज की

१-जे जग कर सुरग की आस। गुरवाणी समळ परगास।
फुरमायो साचो बोलणो। कूड बोल्य अवगण घणो ॥ ४ ॥
२-साचो नाव विसन को, सतगुर कह्यो सु साच।
गुर सोई सत वदियो, जीह की अवचळ वाच ॥ १ ॥
३ साच पियारो साम्य दरि, सति साच दीवाणि।
सुरा सभा सो सावर, जिह साच सू पिछाणि ॥ २ ॥
४-ज्यू वोपारी तोलणी, वापर पूरो तोलि।
थोडो दे पूरो कहै, अतरो कूड न बोलि ॥ ४८ ॥

झाँकी के भी दर्शन होते हैं। वील्होजी का भाषा-ज्ञान और बोली-सुधार का यह प्रयास हिंदी के सन्त-भक्ति-साहित्य में विरल है। विष्णोई साहित्यकारों में भी केवल केसोजी ही इसके अपवाद हैं।

(११) साखी[1] कवि की भिन्न-भिन्न राग-रागिनियों में गेय निम्नलिखित छः साखियाँ प्राप्त हुई हैं —

१-आयो मिलो साधो मोमिणों, रळि मळि जम्भ रवांय। १। पंक्ति १२, कणांकी, सुहब।
२-भणों गुणों गुणवतो देव जह के गुणे न लाभ छेव। पंक्ति २२, कणा की, सुहव।
३-बाबो सांभळे ज छ वागड देस, पोहमी पीतमर आवियो। ५ छन्द, छदा की, धनांसी।
४-दोय तरवर इह बाग मां, एक खारो एक मीठ। ५ दोहे।
५-करि कृपण कहिय विसनोई, धरम नेम ताह धुत न होई।
धरम छुह न चाल जुता, धरम हारि के दीन लिगुता। १० चौपई, राग मासा।
६-गुर तारि बाबा जिवड़ो लोभी लबधी लूनो, एणि लून किया बोहतेरा।
पंक्ति १०। कणाकी, राग जगली गौड़ी।

पहली साखी "जम्मे की" (द्रष्टव्य विष्णोई सम्प्रदाय नामक अध्याय) होने से विषय, भाव और भाषा की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है[2]। दूसरी और तीसरी[3] में विविध प्रकार से जम्भ-महिमा, चौथी में चार त्याज्य दूषण और चार ग्रहणीय गुणों का उल्लेख और पाँचवी में धर्मभ्रष्ट विष्णोइयों के पाप-कर्मों का निर्भीकतापूर्वक वर्णन किया गया है।

१-प्रति संख्या २, ४, ६७, ६८, ७६, ९३, ९४, १४१, १४२, १४३, १५१, १५२, १९१, २०१, २१५ २३६, २६३, २९१, ३४८।
२-साच सिदक जमल वोहरा, विसनो विसन जपांय॥ २॥
विसन जप्या सुप सापज जम गजण ना छुटाय। ३।
जा वाह्यो ताही लुण्यो, विण वाह्यो न लुणाय। ४।
लुणो चुणो साधो मोमिणो, सवळ गाठ कजाय। ५।
कजे सवळो वडं चडां, मुय जळ ज्यो रलाय। ६।
वात बीज न बीजियो, पाछ हाथ मळाय। ७।
हाथ मल्यां ता पाछ क्या हुवै, सुकेल सुके जाय। ८।
सुपहा सुरगे नावड्या, कुपहा दोर जांय। ९।
मनसा भोजन मन सवी, हरि दीदार मिलांय। १०।
फुलो हळवी पाटो कुवळी, बीजण इधक पिवांय। ११।
वील्ह कहे गुर माइयो, करणी साच तराय॥ १२॥
३-एक छन्द इस प्रकार है -
मोमिणा मन्य मोटी भास, साचा न सतगुर तारिसी।
देसी अमरापुरि वास, भावगु वणि नीवारिसी।
भावा त गुवणि नीवारिसी, जे मन सुध ध्याइयो।
जीवत मुवा पाक हुवा, ते अमरापुरि पाइयो।
सुध गुर की भांण वहिय्य, तांरा वद हारिसी।
वील्ह जप भास कोज, साचा न सतगुर तारिसी॥ ५॥

छगी म भावभरा द य और आत्मनिवेदन है। यह कवि ने सम्प्रदाय में दीक्षित होने मे पूव मुकाम-मन्दिर पर गाई थी। (द्रष्टव्य–पृष्ठ संख्या ६४१)।

७–आल्हाणी आतम एक, आळोच्वौ मन माहि।
जा जा जुग मां जीवियै, ते दिन दुख मा जाहि॥ १७ दोहे।

इसको साखी 'तिलासणी की' (प्रति सख्या १६१ मे) कहा गया है। इस गाव के विष्णोई पूर्णरूपेण धम पालन करने वाले थे। उस समय खेजडली गाव भाटी गोपालदास का था। वहा के करपो तथा अन्य भाटी खेजडी वृक्षा को काटने लगे। जब इसकी खबर इस गाव के विष्णोइया को मिली तो धम रक्षाथ मरने का उचित अवसर समझ कर वे वहा के पच—भाटी के दरबार मे गये। सुबह स्नान कर उन्होंने मरने के लिए तलवारें निकाल ली। सब प्रथम खावणी, तत्पश्चात मोटो और नेतू नण ने अपने प्राण[1] दिए।

८–पहळ मेळ की माड हुई, सोळा स अठताळ।
तेरा धरमो धरम करै, तीरथ कल्यौ उजाळ॥ ७ छन्द, छदा की, राग सिंघू।

जाम्भोलाव पर सवप्रथम मेले का आरम्भ सवत् १६४८ के चत वदि मे वील्होजी ने किया था। एसे ही एक मेले मे एक ब्राह्मण किसी की "दोवड" चुराकर भागा पर पकड लिया गया। उसको माखरसी राजपूत ने अपने पास रख लिया। इस पर राजपूतो और विष्णोइयों म लडाई होने लगी[2]। चुखनू विष्णोई ने माखरसी को मार डाला। लडाई शान्त कराने के लिए धानू पूनिया विष्णोई ने सबके बीच तलवार से सिर काट कर आत्म-बलिदान किया। यह देख कर राजपूत भाग गए और लडाई बन्द हुई। जाम्भोजी ने "आपो" मारने का कहा था, सो "गुरमुखि" धानू ने स्वय को मार कर ऐसा कर दिखाया। यह घटना सवत् १६६४ के चत वदि १४ को हुई थी।

१–वन मिंधारयो भाटिया, कुबधी कागा जोय।
जीणि उपरि मोटो पड्यो, सुरगि पहुतो सोय। ४।
खजडल करपो वस, भाटी गोपाल दास।
मन न मान करपो देव री, वन री कर विणास॥ ६॥
जमाते आळोचियो, मरणौ इण परि थाय।
इण ओसरि मरिय नहीं, नेको रहै न काय॥ ११॥
पोह फाटी पगडो हुवो, माथे माड्यो न्हाण।
सुरा होय ससा वहै, जित झवकी तरवारि॥ १३॥
पहलि मु हि पीवणि पडी, सत सु घणो करारि।
वामन भगत मोटो पड्यो, गुर सु हेत पियार॥ १४॥
ज उपरि नेतू पनी, चाली जळम सुधारि।
मरणि वडीवान उतर्यो, जिह चडि पु हुता पारि॥ १५॥
जीवण मरण जुरा नहा, नित नवला हाण।
वील्ह कहै गति सामलो, साधा तणा वपाण॥ १७॥

२–एक दोवड दुज हडी, सुप मा सोर उपायो।
नागे चोर पकडि लीयो, मापर जोरि छुडायो।
जोर करि रजपूत हता, चोर वास घातियो।
धरा धूणण न छाडो, सारति मेळो माथियो॥ ३॥

९–करमसि खलणो इणि सासरि, लेखड करि करि कामिय ।
 ओखड़ो में कोल्यो होय, सोई बर पालिय ॥ ५ छप्पय, छन्द की, पागायाहरी ।

यह साखी "रामागढ़ी की" नाम से प्रसिद्ध है । इसमें करमा और गौरां—दो विश्नोई स्त्रियों का खेजड़ों के बदले बलिदान होने का वर्णन है । रामागढ़ी (रेवासड़ा, जोधपुर) में खेजड़ों के काटे जाने पर, वहां के चौहटे में आकर करमां ने अपना सिर दिया । गौरां ने भी उनका अनुसरण किया । जाम्भोजी ने सबदवाणी पर परजीव-उद्धार के लिए अपना बलिदान करने को कहा था सो इन दोनों ने वृक्षों के लिए ऐसा ही किया[1] । यह घटना संवत १६६७ के जेठ बदि २, शनिवार की है । स्त्रियों का धर्म पर धर्म-रक्षार्थ आत्म बलिदान करने का यह अनुपम उदाहरण है । कवि ने प्रवाहपूर्ण शैली में समस्त घटना का भावमय वर्णन किया है ।

१०–"उमाहो"　आयो जांभू बोपे परगत्यो, वील्हपति कियो उजास । २२ दोहे धनाश्री ।

"उमाहो" वील्होजी की सर्वाधिक प्रचलित और हृदयग्राही रचना है जो उन्होंने अपने स्वर्गवास से कुछ पूर्व कही थी (देख-पृ० १४८-४९) । यह भक्त-हृदय की मर्मभरी वाणी है । इसमें कवि जाम्भोजी के गुण, कार्यों और माहात्म्य को आतुरता पूर्वक स्मरण करता हुआ भाव भावोल्लास भरे उद्गार प्रकट करता है । गुरु के महिमामंडित व्यक्तित्व की पृष्ठभूमि पर अपनी अकिंचनता और जीवन की क्षणभंगुरता देख कर वह अत्यन्त दीन और निरीह हो गया है किन्तु अन्य विष्णोइयों की भांति गुरु पर दृढ़ आस्था और नाम-स्मरण उसका सबसे बड़ा सम्बल है । कवि ने हृदय के सहस्रों उमड़ते भावों को मर्मभरे शब्दों में बद्ध करने का प्रयास किया है । इसमें परमतत्त्व से मिलन की उत्कट लालसा, भावानुभूति के निश्छल उद्वेग, जीवन का रहस्योद्घाटन और तत्त्व-प्राप्ति के साथ सर्वत्र अत्यन्त सहज रूप से व्यक्त हुए हैं । ये वील्होजी के समग्र व्यक्तित्व को साकार करते हैं । इस दृष्टि से यह कवि की समस्त रचनाओं में अनुपम कृति है । यह वील्होजी की अन्तिम रचना है । विष्णोई सम्प्रदाय में दीक्षित होते समय उन्होंने गुरु से अपने उद्धार की विनय की थी, जीवन के संध्याकाल में वे "उमाहो" के रूप में गुरु से मिलने की प्रबल कामना करते हैं । इस समय मुकाम मन्दिर के छज्जों पर बैठे कबूतरों को भी वे नहीं भूले । मानव हृदय की ममता और भावों की सरिता मानो बुद्धि और ज्ञान के कगारे तोड़ कर बह निकली हो । अपना 'विष्णोई' जीवन उन्होंने यहीं से–मुकाम से आरम्भ किया था और अब रामड़ावास में

१–वाहि तेग समाहि मामो, हहकारो अतियो
 धन्य तेरो ध्यान करमणि, सीभन्ती साको कियो । ३ ॥
 गुर फुरमाई छ पडाधार, औसर ले सारिय ।
 आपणडो जीव कबूल, प्रजीव उबारिय ।
 उबारिय जीव जीव काजे, राखि सधीरो हियो ।
 रूपा ऊपरि मरण मातो, धीजै ज्यों करमणि कियो ।
 करणी पाळि उजाळि सतपथ, परम जोति उपाइयो ।
 जीव काज जीव फुरम्यो, कियो गुर फुरमाइयो ॥ ४ ॥

अंतिम सांस लेते हुए वे उसी के पास जाना चाहते हैं, जिसकी वहा (मुकाम मे) समाधि है।

स्पष्ट है कि साखिया मुख्यत तीन प्रकार की हैं —१-आत्म-निवेदन परक, २-इतिहासिक, ३-जम्भ-गुणगान विषयक।

(१२) हरजस [1] कवि के निम्नलिखित २१ हरजस प्राप्त हुए हैं —

१-अलाह अलेख निरजण देव, किणि विधि करू जी तुहारो सेव। पक्ति १०, भरू।
२-ओ ससार नदी जळ पूरि, बीच अथग ढिग पलो दूरि। पक्ति ५, भरू।
३-अमली रे भइया अमल चडावो, अपणां अपणा सत बुलावो। पक्ति ५, आसा।
४ दिल अवर मुखि अवर सुणाव, दिल को कपट धणी नू न भावै। पक्ति ४, आसा।
५-अवधू न अभिमान न होई, दुनिया की मानि न रीझ सोई। पक्ति ५, आसा।
६-हरि को आरणियो मांडि रे लुहारा, कूड कपट छाडि गिवारा। पक्ति ६, आसा।
७-दिल दुरमति दुज साध कहाव, ताको माहि अचभो आव। पक्ति ७, आसा।
८-ऐसा मूळ खोजो भल तत चीनू, सतगुर पथ बताय दीन्हो। ५ छद, आसा।
९-गिरधर गाइय जी, पाइय सुरा सगति पार।
अवरण ओळगिय इण परि, पकियं उरवार॥ ६ छद, गवडी।
१०-जन रे तू भरम छाडि भजि केसो। ६ छद, गवडी।
११-हरि का ढिकोळिया ढळो मेरा भाई, असो सींचो वाडी सूकि न जाई।
-पक्ति ५, विलावल।
१२-उनमन सेती राचि मना रे, एक मतो करि पाच जणा रे। पक्ति ४, विलावल।
१३-मुजिया सीवणो सीवीले सवारो, दिन वरतं निस होय अधियारो। पक्ति ५, सोरठ।
१४-अब मैं ग्यान रसि रुचि माणी, जदि गुर की पारिखि जाणी। ५ छद, गवडी।
१५-सतो भाई घरि ही झगडो भारी। ५ छद, गवडी।
१६-गवरी का गीत न गाय समझ मनि बोरी हे।
गवरी न गाळ न देह, झोल की झोरी हे। ६ छद, गवडी।
१७-मोह न कीज रे मानवो, मोह ता हुवै अकाज, म्हारा प्राणिया।
गरब गल्यो गजराज रो, गयो रांवण रो राज, म्हारा प्राणिया। १० छद, गवडी।
१८ राम रहीम बिसन बिसमल्ला, किसन करीम हमारै।
कुकरम जुलम गाय बकरी परि, रूसेल मोसलि तुम्हार॥ ५ छद गवडी।
१९-सतो गुर बताई एक बूटी रे। छद ५, गवडी।
२०-बळि जाव प्रभ की मूरति प बळि जाव।
मेरा बाबा चरण छु वळ बळि जांव। ५ छन्द, मलार।
२१-सतो असा डर डरिये। पक्ति ८, धनाश्री।

हरजस वील्होजी के मुक्त-हृदय के स्वाभाविक उद्गार हैं। इनमे अत्यन्त आत्मीयता व बदि न स्वानुभूति और भावों को सहज रूप से वाणी दी है। उनकी विचारधारा को

[1] प्रति सख्या ४८, २०१, २०७, ३२७।

समग्रता मे, सम्यक् रूपेण संक्षेप म समझने के लिए भी इनका महत्त्व है।

इनमे अनुस्यूत रूपक और प्रतीक–योजना कवि की विशेषता है। ये जनसाधारण दैनंदिन जीवन से सम्बन्धित होने के कारण सहजग्राह्य और प्रभावशाली हैं। अमल, लुहार,[2] ढेंकुली और बाडी,[3] दरजी[4] और बूटी[5] को माध्यम बना कर लि गए हरजस ऐसे ही हैं। कई स्थलो पर बहुत रोचक प्रतीकों द्वारा पचेन्द्रिय, उनके वि और कामक्रोधादि भीतरी शत्रुओं सम्बन्धी सशक्त अभिव्यक्ति कवि ने की है। एक ह जस[6] म स्त्री–पुरुषो के साथ अपने घर म हो रहे निरन्तर झगड का हृदयग्राह्य वर्णन है 'स्त्री निलज्ज, स्वेच्छाचारिणी और व्यभिचारिणी है तथा पांचो पुत्र भिन्न–स्वार्थी है

१–बाडी न नीपना मोलि नही लीया, सतगुर रे सतन कू दीया। २।
पोना पोलि सतन क भाग, त्योह मेरा वीर जितो तनि लाग। ३।
मिळ नही अ मल है चोपा, त्योह मेरा वीर हर सभ धोपा। ४।
वील्हाजी अमल विसन लिव लागी, बोहत दिना की बायड भागी। ५। –हरजस ३

२–क्रम करि कोयला माया जाळी, व म अ गनि मा ले परजाळी। २।
तन करि महरणि सुरति अ फोडा, सास धु वणि करि सहज हथोडा। ३।
पाणी प्रेम घट सांचि विचारा, सबद सांडसी पकडि पसारा। ४।
घण करि ग्यान मन कु धारा, वारत वारत होय निसतारा। ५।
वील्हाजी भल कारीगर सोई, धाट पड खोटा नही होई। ६। –हरजस ६।

३–काया कूप चित चांच बणाई, सुरति करि नेजु जीभ्या थाई। २।
हरि नाव नीर सुरसरी धारा, सहज पाणती सुरति के धारा। ३।
सीचत सीचत जब रति आई, फूली फळी बाडी विसन सहाई। ४।
वील्हाजी विसन कणक जौवारा, लु णि चु णि हरिजण उतरे पारा। ५। –हरजस १

४–सत करि कपडो गज गुर साथी, ग्यांन कतरणी कुरपो नै राखी। २।
तपता वीति जतन सू रखिया, छोडि दे पेसवो पाचि ले बखिया। ३।
सुरति करि सूई ध्यान धरि धागा, साहिबजी को नांव ले सीविले बागा। ४।
वील्हाजी बागो विसन मन भाणो, लागै मैल न होय पुराणो। ५। –हरजस १३

५–बू टी परचि गाठि ग्रह बाधी, जम भव वेदनि तूटी ॥ टेक ॥
जाहर रोग सदा अ गि रहता, बोहत होती तपनाई।
या बू टी रस घापि र पीया, जीणि बोहडी संताप न पाई ॥ २ ॥
बोहत रोग तोड्या इणि बू टी, बोह तन मठ रहाई रे।
मजू अ नत कू गुण करता है, बू टी पुटि न जाई रे ॥ ३ ॥
धनि ओह गुर माच गुर कू धनि, जीणि बू टी सरस बताई रे ॥
या बू टी जां सता साधी, अ गि भई सितळाई रे। ४।
अ मर जडी अपरपर बू टी, कटक हाथि न आई रे ॥
वील्ह कहै रही साधां प, जीनि तिमना तपति बुझाई रे। ५। –हरजस ११।

६–राति दिवस मोहि उठि उठि लाग, पाच छोटा एक नारी ॥ टेक ॥
पांचू भोजन जूजवा चाहैं पाचू पाच सवादी।
निळजी नारी कह्यौ न मांन, अवरति आप मुरादी ॥ २ ॥
किया उपाय पोषण क ताई, तपति कदे न सूता।
लोकी लाज मर जां मात, बोहळि बार विगूता ॥ ३ ॥
आप घर छाडि सेण घरि न रहे, पर घरि क्यों सचि पाइय ?
घर को टाबर कह्यो न मांन, औरे के समझाइय ॥ ४ ॥
(शेषांश आगे देख)

जिन वाता से लोक लाज मरता है, वे ही घर मे हो रही हैं। स्त्री दुमति की और पुत्र पन्चेन्द्रिय और उनके विषयो के प्रतीक हैं। इसी प्रकार स्वग-पथ को अवरुद्ध करने वाली पाँच स्त्रियो-मीरां, कहरा, मानकी, सेरा और मोहनी का रोचक उल्लेख कवि ने किया[1] है। सारे ससार को इन डाइनो ने दबोचा है जिनसे सावधान रहना चाहिए। ये क्रमश काम, क्रोध, मद, लोभ और मोह की प्रतीक हैं। अन्यत्र "गवरी" को काम-प्रतीक मानकर उसको घर मे न रखने की सलाह[2] दी है।

हरजसो मे कवि ने श्रेष्ठतर जीवनोपलब्धि और मुक्ति हेतु स्व और पर को भली-भाति समझन, जाचने और पहचानने तथा विश्वस्त, अनुभूत और सत्य-पथ ग्रहण करने का निष्ठापूवक उल्लेख किया है।

(१३) बिसन छत्तीसी। (प्रति सख्या ३८, २०१) -इसमे वर्णमाला के ३६ अक्षरो पर क्रमानुसार ३७ फुटकर कु डलियाँ हैं। ३६ अक्षर ये हैं—अ, आ, इ, उ, ए,=५। क से य वग तक (ञ) को छोडकर) = २८। स, ष और ह = ३। कुल ३६। अंतिम छन्द मे जाम्भोजा से मुक्ति-कामना है। ऐसी रचनाओ के अन्त मे एकाध छन्दो में गुरु-स्तुति,

---

दुरमति दारी करू दुहागणि, झूठा थाप थपेडै।
बील्ह कहै सोई गुर मेरा, घर को न्याय नवेडै ॥ ५ ॥ —हरजस १५।

१-एक मीरां दूजी मानकी, दोयौ वहुण विकार।
घट घट भीतरि साचरी, मुंठो सोह संसार ॥ २ ॥
मु ठा राणा राजवी, लीया अपणी एरि।
मु ठा बाभण वाणिया, ततषण लिया घगेरि ॥ ३ ॥
अ ण जाण्या जोगी मुस्या, लीया पेड पगेडि।
सन्यासी सर पर मुस्या, लीया झाडि झभेडि ॥ ४ ॥
मु ठा भगत बमेष वीणि, जा कुछि भाई दाय।
नाग निरति कै नाचणा, सेरी पठी भाय ॥ ५ ॥
सेरी लाधी मानकी, मीरा मोहण साथि।
नीकछु था से उबरया, जा कुछि आई हाथि ॥ ६ ॥
पिडत मु ठा प्रगटा, गीळि करि पाया पेटि।
रूडा सीनानी मोडिया, अ पणि लिया लपेटि। ७।
तापस हाठा बन न, उत पणि पोहती जाय।
भन विहू णा सह मुस्या, डाकणि बठी पाय ॥ ८ ॥
मारा मोहण मानकी, चोथी कहरा माहि।
रुषो पथ सुरग को, दोर नै घीसाहि ॥ ६ ॥
नीकछु क धरि पसि क, जरणा ताक बणाय।
बील्ह कहै से उबरया, आपो रह्या छिपाय ॥ १० ॥ —हरजस १७।

२-मोडण चोळी कावळी, माहे थूक विकार।
परहरि हाड हिंडोळणो, करि माळा को हार ॥ ३ ॥
मूळ गु माव अ न को, देव न भाव दाय।
ज आ गवरी घरि रहै, घर की सत मति पति सा जाय ॥ ५ ॥
बील्ह कहै सु णि वावळी, करि कार्यम थापांण।
बिसन जप्या सुप सापज, चूके आवाजांण ॥ ६ ॥ —हरजस १६।

भगवद्महिमा आदि की गई मिलती है। प्रत्येक कुंडली की अंतिम पंक्ति में "विसन जपो ससारि" की पुनरावृत्ति हुई है जो मूल विषय-विष्णुजप को स्मरण कराती है। इनमें प्रधानतः दो प्रकार से समस्त कथन किए गए हैं —

(१) एक ही छंद में कई बातों का उल्लेख करके[1] तथा

(२) एक छंद में एक बात का उल्लेख करके[2] ।

इससे यह भली भांति स्पष्ट है कि वील्होजी नाम-जप को मुक्ति का प्रमुख हेतु मानते[3] हैं।

(१४) छपइया (छप्पय) वील्होजी के कुल ४५ छप्पय प्राप्त हुए हैं। हस्तलिखित प्रतियों में "छपइया" नाम से ये पृथक् रचना के रूप में लिपिबद्ध मिलते हैं। मुक्तक छन्दों में इनकी बहुत प्रसिद्धि हुई है, इस कारण विभिन्न लिपिकारों ने अपनी अपनी रुचि के अनुकूल कम-बेश छंद चयन कर लिखे हैं[4] ।

इनमें आत्मोल्लास का भावपूर्ण प्रयास है। ये कवि के अनुभव, ज्ञान और चिंतन-मनन के परिचायक हैं। उन्होंने पूर्ण अधिकार और आत्म-विश्वास से अपनी बातें कही हैं। इनके मूल में सत्य है, चाहे वह अनुभव, तथ्योद्घाटन, वृत्त्युक्तियनि, नीति, धर्म या समाज सम्बन्धी-किसी भी प्रकार का हो। इस कारण ये सहज-ग्राह्य और प्रभावशाली हैं। भाषा सरल और प्रवाहपूर्ण है। इन कारणों से ये अनायास ही लोक प्रचलित हो गए। अनेक तो कहावतों की भांति आज भी यथावसर कहे जाते हैं और "बरस सात ससारि, बाळ सीता निरहारी" छप्पय को तो प्रतिदिन हवन के पश्चात् पूजा-समाप्ति स्वरूप बोलना सम्प्रदाय

१—कका क्रिया न छांडिय, कुकरम कळह नीवारि।
विसन भगति विणि आदमी, कूण पहुतो पारि।
कूण पहुतो पारि, कुपह मेल्हि सुपह जे आवो।
परमानंद सु प्रीति करि, नांव निज देपि धीमावो।
सुपह दिपाळ सांम्यजी कुपह राह सम मेटि।
विसन जपो ससारि, कका क्रिया न मेटि ॥ ६ ॥

२—नना नन्या परहरी, पर नद्या न करेह।
सौभ नहीं ससार मां, पळते पत्र गहि लेह।
पळते पत्र गहि लेह, ग्रस देषो नर सोई।
और पाप कनफो, निन्न नफो न कोई।
एतो चालो जांणि, छाडो मन ही मन नद्या।
विसन जपो ससारि, ननां परहरि नद्या ॥ १० ॥ —'न' अर्थात् छ।

३—डडा डर करि चालिय, डाहा होय सुजांण।
विसन नांव विल्ष्यो रही, कुंवर न मळिसी मांण।
कुंवर न मळिसी मांण, तांण संतान न चाल।
धा मन राषो ठांय, गोठि बुरी की मांहे।
साभ सुरग सुष वास, गुर परमाई वानी।
वीसन जपो ससारि, डडा डर करि वासी ॥ १७ ॥

४—प्रति सख्या १५, ३८, ४३, ४७, १७८, २०१, २०१, २०८, २११ २१० २१२, २६०, २६७ ३१२ ३१६, ३६६।

आवश्यक नियम है। छप्पयों का वर्ण्य-विषय प्रधानत निम्नलिखित है —

१-कर्त्तव्याकर्त्तव्य-निरूपण, २-विषय-विशेष के गुण, लक्षण, परिभाषा या तत्त्व न तथा ३-जाम्भोजी के जीवन-प्रसग, काय और माहात्म्य-कथन। इनको सामान्यत प्रकार से व्यक्त किया गया है —

-प्रसिद्ध और लोक-प्रचलित प्रसगोल्लेख के साथ, गुण-अवगुण-विशेष का कथन[1]।

-जो परस्पर विरोधी या विपरीत स्वभाव, गुण या विषय का पृथक्-पृथक् छन्दों मे वर्णन। पाप-पुण्य, सुगुरु-कुगुरु, बसने-न बसने योग्य गाव आदि पर रचे छन्द ऐसे है। इनमे कभी-कभी विधि-निषेधात्मक रूप मे शब्द-विशेष की पुनरावृत्ति करते हुए विषय-विशेष स्पष्ट किया गया मिलता है, जसे-जोग और पाखण्ड[2]।

-ऊच-नीच, अच्छी-बुरी चीजा के गुण-कार्यों के उदाहरण सहित अपना कथन, जसे-विचार तथा गुरु-महत्ता[3] वर्णन।

-प्रश्नोत्तर रूप में कथ्य-विशेष का स्पष्टीकरण, जसे अलख-पुरुष-पूजा विधि[4]।

-असतरी तणा गुमानि, दोप लापण न दीयो।
चीत व चीत गुमानि, भीषणा ऊपरि कीयो।
चलण कटाय चौरगी, कोपि कूप मा राल्यो।
साध सुदरसण सेठ, पकडि सूळी दिस चाल्यो।
नर देवा साधा सिधा, दोस दुनि दीना घणा।
वील्ह न कीज और तो, पाचू वसि करि आपणा॥ ४३॥

-जोग नहा पाषड, कोप काया मा वस।
जोग नहीं पाषड जीव बोह बोधि तरस।
जोग नही पाषड, वीर जपि गाव जळावे।
जोग नही पाषड, कूड कथि दुनी डुलाव।
जोग पथ जाण नहीं, पाप करतो न डर।
दान सिको करग छुरी, करम कसाई को कर॥ ३१॥
ज जरणा तो जोग, जोग जे जीवत मरिय।
जीव दया तो जोग, जोग जो सति मापीज।
सहज सील तो जोग, जोग जो तिसना वार।
पच वसि तो जोग, जोग जो कलोभ निवार।
तज मांन अभेवान, ग्यान ध्यान रातो रहे।
जोग तणा आरभ अ ह, विसन भगत वील्हो कहै॥ ३२॥

३ अ तर थळी सुमेर, नाडी अर मानसरोवर।
अ तरो हस अर काग अ तरो तुरगम अर पर।
अ तरो पायक अर पतिसाह अ तरो तारा अर सिसिहरि।
अ तरो आक अर अ ब, अ तरो चदण अर छाछरि।
काव कबीर हीर अ तर, अह निस जिसी पटतरो।
अवर गुरा अर भ्रम गुर, सूर अ धेर अ तरो॥ ३९॥

४ मूर नही भगवत न, भाय भोजन जिमाइय।
तिस नहा अलोकनाथ न, भाण उदक पाइयै।
वधाहो नहीं आदि पुरिस, आण पगरण उढाइयै।
पोढ नहीं पारब्रह्म, पथरि पालिगो पोढाइय।

(शेषांश आगे देखें)

५–दो परस्पर विपरीत और विरोधी स्वभाव, गुण या विषय का एक ही छन्द में साथ-साथ उल्लेख, जैसे सुगुरु–कुगुरु का¹ ।

जाम्भोजी के गुण-गान सन्दर्भ में तो कवि अपनी बात ललकार के साथ कहता है² । बारबार समझाने पर भी न समझने वाले और अज्ञानान्धकार में पड़े हुए लोगों के कार्यों को देखकर कवि कभी फटकार बताता है, कभी आक्रोश और कभी उन "बापड़ों" पर अफसोस प्रकट करता है । उल्लेखनीय है कि वील्होजी अखाद्य और अपेय वस्तुओं का नाम तक लेना भी उचित नहीं समझते और उनको "बुधनास"³ (भाग) "कुमल" (मद्य) आदि संज्ञा से अभिहित करते हैं ।

(१५) दूहा मन अपरा, "अवतार का" प्रति संख्या २०१ में फोलियो १८ पर वील्होजी के 'खमावची' राग में गेय २६ सोरठिये दोहे लिपिबद्ध मिलतेहैं । प्रत्येक सोरठे के अन्त में आया 'देवजी' शब्द जाम्भोजी का पर्याय है । इनमें जाम्भोजी के गुण, लोकोपकारक, उद्धारक-कार्य और महिमा का अत्यन्त श्रद्धा–भक्ति पूर्ण सारगर्भित और रस–स्निग्ध वर्णन

निराकार निरधन नह, वरतण दे वरताइय ।
वील्ह कहै इण पुरिष रो, किणि विधि भलो मनाइय ? ३४ ॥
भगत नै भोजन दियो, जाणि भगवत न भायो ।
जण न जळ दियो, जाणि जगदीस न पायो ।
अतीत न पगरण दियो, जाणि आदि पुरिष न उढायो ।
सत न सुष दियो, जाणि साहिब न सुहायो ।
भाद्र भाण न मेटिय, वायक लोपि न जाइय ।
वील्ह कहै इण पुरिष रो, इणि विधि भलो मनाइय ॥ ३५ ॥

१–सुगर ध्यायां सुष होय, कुगर ध्याया दुष पायस ।
सुगर भेद क्रम छेद, कुगर भेद पाप कमायस ।
सुगर सगि सुष रंग, कुगर सगि साधि विगोवै ।
सुगर उतारै पारि । कुगर बूडै अर बोवै ।
सुगर सेव लाभै सुरग, कुगर दुष दोर तणो ।
वील्ह कहै एक वीनती, सुगर कुगर अंतर घणो ॥ ११ ॥

२–काय केवाणि प्रहरो वारि रास्यप क जावो ?
अंब वाढि जड उपणो, आक एरड काय वाहो ?
उपणि नागरवल, काय विष क्यारी सिंचावो ?
छोडि सूध मारग, असर उभड काय धावो ?
प्रगटे सूर पगडो हुवो, पथ लाय मूला घु वों ।
क्रम महागुर मेल्हि कर, काय दोसगरां भूवा नुवों ? ॥ २८ ॥

३–(क) जनम विणास्यो जेह, जें बुधनास ज पीयो ।
मीज विसन को नाव, घोष करि कदे न लीयो ।
जीवां उपरि जाणि, दया करि कदे न दीठो ।
भीतरि भेद्यो पाप, ग्यान नहि लाग मीठो ।
आप सुवारथ मनमुषी, कीया कुबधी पापडा ।
वील्ह कहै भवसागरां, वह्या जाहि रे बापडा ॥ १९ ॥

(ख) थाहि कमल पीव बुधिनास, कुचल चाल चालें असी ।
वील्ह कहै रे भाइयो, थां दीहों किंव साभिसी ॥ २४ ॥

मिलता है। रक कवि को इस जीवन मे तो "रत्न" मिल गया, आगे के लिए वह मुक्ति की प्राथना करता है। गुरु-महिमा से अभिभूत कवि उन लोगो पर बलिहारी है, जिन्होने जाम्भोजी के दर्शन किए तथा वे लोग पुन्यार्थी हैं जो गुरु-कथन पर चलते हैं।

दोहो से कवि के प्रौढ ज्ञान और अनुभव तथा भक्त-हृदय का पता चलता है। भाषा निखरी हुई और प्रवाहपूर्ण है। कतिपय छन्द नीचे दिए गये हैं[1] ।

(१६) छुटक साखी (दोहे) प्रति सख्या २०१ मे आरम्भ के फोलियो १६-१७ पर "लीखतु छुटक साखी" शीर्षक के अन्तर्गत वील्होजी के १३ फुटकर दोहे लिपिबद्ध किए गये मिलते हैं। इनका उल्लेख इस प्रति मे आगे फोलियो २७ से आरम्भ होने वाले सूची-पत्र मे लिपिकार ने नही किया है। शीर्षक से स्पष्ट है कि वील्होजी के अन्यथा छूटे हुए दोहे यहां लिखे गए हैं।

इनमे गुरु-महिमा, उनसे प्राथना, भक्तोद्धार, चारण-भाटो के काय, नीति-कथन, तृपा आदि विभिन्न विषयो का सीधा-सादा वर्णन किया गया है[2] ।

१-रहिया रोगीळाह, वोह्ळी विया वियापिया।
वैदनि वीचरियाह, तू दारू मिलियो देवजी ॥ ४ ॥
पघ विणि थरहरताह, बेडी बोह जळ डूपता।
जळ जोप पडियाह, कर गह काढया देवजी ॥ ५ ॥
पन्थिया नही पुराण, सुर पूछि सीख्यौ नही।
अमरापुर अहनाण, तें दापविया देवजी ॥ ७ ॥
चौरासी चवताह, जूणि भ्रुवता जुग गयो।
तो विण ताह जीवाह, दुप न भागो देवजी ॥ १४ ॥
थळ सीरि थिर मडेह, तत तेल वाती अ भ।
तीक्म तिरलोकेह, दीपग तू ही देवजी ॥ २१ ॥
काया कळ क विनाह, मोत बिना मडळि रहण।
पायो पुर तीयाह दांन तुहारा देवजी ॥ २२ ॥
वळप्या कोडि विल्क, लीला ही लाभ नही।
मो राकड रतन, दियो दया करि देवजी ॥ ११ ॥
तारण तू ही ताह जा जाण्यौ जीवा धणी।
सुप सारो सुरगाह, दीय दया करि देवजी ॥ २३ ॥
तारण तिहु लोकाह, लप चौवरासी सारव।
हू बळिहारी ताह, जाह सनमुषि दीठो देवजी ॥ २० ॥
प्रथमी पावडह, भ्रुय उपरि भ्रु विया घणा।
मुकियारथा जकेह, तो दिस दीन्हा देवजी ॥ १८ ॥
२-तीन दोहे ये हैं —
डाग ठहको कडि हयो, नीणा उपरि हथ।
वील्ह वुढापो आवियौ, गयो ज धीगड सथ ॥ ११ ॥
न को माग दूघ घी, न को चौपड चाहि।
वील्ह कहैं वीप समै, चौपड अन ही माहि ॥ १२ ॥
जुनु वर पुराण रिण, मरत वियावर गाम।
आगि वळत पोन्हड, जो नीवळ स लाम ॥ १३ ॥

महत्त्व और मूल्यांकन

वील्होजी का व्यक्तित्व बहुमुखी, महान् और प्रभावशाली था। अनेक दृष्टियों से उनका महत्त्व है। सम्प्रदाय म उन्होने नव-जीवन का सचार किया, स्वस्थ-चेतना, चिन्तन शक्ति दी और प्रत्येक प्रकार से उसको व्यापक, सुदृढ और ठोस धरातल प्रदान किया। समाज मे सदाचरण, उदात्त गुण और नतिकता के प्रति आस्था उत्पन्न की, जीवन, उसके उद्देश्य और जगत को समझने-समझान का विवेक, तदनुमार कार्य करनकी प्रेरणा तथा सहज जीवन-यापन का सदेश दिया। निर्भीकता, सत्य और व्यावहारिकता उनकी वाणी के गुण हैं। साहित्य के माध्यम से वे जिस पयस्विनी के उत्स बने उसका प्रवाह आज भी चल है। लोगों की बोली के शुद्धाशुद्ध प्रयोग और पहचान के क्षेत्र मे उनका प्रयास प्रप्रतिम है। तत्कालीन मरुदेशीय-समाज के सम्यक ज्ञान के लिए उनकी रचनाएँ बहुमूल्य सामग्री प्रस्तुत करती हैं। इनमे आए अनेक उल्लेख इतिहास की विस्मृत धरोहर है। उनका साहित्य व शब्दावली सास्कृतिक अध्ययन के लिए परम उपादेय है।

अपने युग के वे विशाल और उच्च ज्योति-स्तम्भ थे। अतीत और आगत को उन्हो प्रकाश-किरण दी, धु धले अतीत को स्पष्ट किया, आगत को मार्ग-दर्शन कराया और वर्तमान को झिलमिल आभा से आलोकित किया।

उनकी समस्त साहित्य-साधना के मूल मे लोक-कल्याण और आत्मोत्थान का हार्दिक गौण प्रयास है। उन्होने अनुभूत सत्य को हृदय-रस से सिंचित वाणी दी, उनके विचार सीधे-सादे और सवग्राह्य हैं। यही कारण है कि वे व्यावहारिक हैं और उनका प्रभाव गहरा और व्यापक है।

वील्होजी मोक्ष-प्राप्ति मानव का चरम लक्ष्य मानते हैं। इसके लिए प्रधान उपाय और सम्बल विष्णु नाम-स्मरण है। तात्त्विक दृष्टि से प्रभु के अनेक नाम-रूपो में कोई अतर नही है। एक हरजस म इसका स्पष्टीकरण करते हुए नाम-स्मरण को ही वे सबसे बड़ी हरि-सेवा बताते हैं[1]। "विसन-छत्तीसी" का प्रमुख विषय ही विष्णुनाम-जप का महत्त्व देना है। विष्णु और जाम्भोजी एक ही हैं। बिना जप के तो मानव-जीवन ही व्यर्थ है[2]।

१-अलाह सोई जो उमति उपाय दम दर पोल सोय य पुन्याय ॥ १ ॥
लप चोवरासी रोट्ट परवर, सोई करीम बाबा एती कर ॥ २ ॥
विसन कहू जाको विसतार विसन सोई सिरज्यो ससार ॥ ३ ॥
गोम्यद सो ब्रह्म डा गहै, सोई ज सामी जुगि जुगि रहै ॥ ४ ॥
गोरप सो आंन गम की कहै, महादेव सो पर मन की लहै ॥ ५ ॥
सिध सोई जो साझ मती, नाथ सोई बाबो त्रभुवण पती ॥ ६ ॥
मिध सोई जो साझ मती, नाथ सोई जिणि नाव मू करी ॥ ७ ॥
जोगी सो जिणि जरणा जरी, भगति सोई जिणि भाव मू करी ॥ ७ ॥
आप मुस मुस न मोराण महमद वहिय स मुसिलमाण ॥ ८ ॥
जपे एक भेप जूजूवा, सिघ साघ पवबर हूवा ॥ ९ ॥
परपर का नाव अनत वाल्हाजी सिवरि सोई भगवत ॥ १० ॥-हरजस १।

२-किसो दया जिणि धम, ग्यान कामो चतराई।
किसो दिसो विणि तप, दान विणि किसो वडाई।

(शेषांश अगले पृष्ठ पर)

इसका दूसरा उपाय सुकृत करना है जिसका उल्लेख अनेक प्रकार से बारबार उन्होंने किया है[1]। इससे लोक-परलोक दोनों सुधरते हैं। कमफल-भोग अनिवाय है, यह भोगते हुए किसी का दोष नही दना चाहिए[2] और जो सुकृत करने वाले हैं, उनको साहस दिलाना चाहिए[3]। ससार म अनेक प्रलोभन हैं, किन्तु प्रेम तो उसी से करना चाहिए, जो यहा सदा रहे। नश्वर चीजो से कसा[4] प्रेम ? धम के नाम पर बहुत पाखण्ड प्रचलित था, अत. वील्होजी न लोगो को इस ओर से सावधान किया। ससार की वास्तविकता का उल्लेख करत हुए उन्होंने स्सम फल भ्रम को अनेक विधि से[5] बताया। धम-ठगो से अध्यात्म-पथ पथिक को सावधान किया[6] और पथ-भ्रष्ट करने वालो से सतक रहने को

किमी साध विणि गाठ, जाप विणि किसौ जमारौ।
किसौ अमर विणि वास, मरण जाह किसौ पसारौ।
किसौ सुप सुरगा विना, जा जा जम जोवे जिसौ।
वील्हाजी केवळ क्रम विणि, अवर जप सो जन किसौ ।। ७ ।।—छपइया।

१–धरम किया सुप होय, लाछ लिछमी धन पाव।
धरम उतिम कुळ अवतर, जळम दाळिद नही आव।
धरम सु मानि महत, रूप ओपम इधकारी।
धरम जीव जुगि वालहो, ग्यान सू प्रीति पियारी।
ससार जुगति आग मुगति, लाभ घणौ छ दहु परि।
वील्ह कहै आळस म करि, जो गुर गह्यौ स धरम करि ।। १ ।।—छपइया।

२–किया क्रम करूरि, भोगवता भारी हुवा।
मन माहरा म भूरि, दोस न दीज देवजी ।। १७ ।।—दूहा।

३–धरमी कर धरम, सती न साहस दीज।
मन रायोज माय, मुष्यौ सुवचन बोलीज।
वापाणीज विसन, आस उतिम की कीज।
परप पात सुपात, दान दयाईज दीज।
जा जा विमन न भावई, मासो कुपरि न कीजियै।
वारह कहै न विरचिय, धरमे धको न दीजियै ।। ३३ ।।—छपइया।

४–राता सू राना मन मेरा, फिरि फिरि दुप सह्यौ बोहतेरा ।। २ ।।
रहता सू रहिय लिव लाई, जात ओ तन विणस्य न जाई ।। ३ ।।
उनमन राता पुहता सोई, वील्ह कहै वळि आवण न होई ।। ४ ।।—हरजस १२।

५–भरम उपाय पाहण गुर थरप, साध सेवा नही जाणी।
नरजीव आग सरजीव मार, बूडि गया विणि पाणी ।। २ ।।
भरम उपाय तीरथ कू चाल, अठसठि घरि ही बताया।
मूल लोग कर न वायक, भटकत कहू न पाया ।। ३ ।।
मूनी नारि भींति कू पूज, ले ले माग लगाव।
भोग विनास स्वाद रस जाण, ढिग ऊभो विललाव ।। ४ ।।
भूत भऊत वीर जग जोगणि, छाडि भरम तस देवा।
पार गिराय तो पुहचस प्यारे, कर विसन की सेवा ।। ५ ।।
वील्हाजी भरम मुकद नर भूले, कहो वीस समभाव।
छाडि भरम तजि होय निभरमा तो हरि चरण आवै ।। ६ ।।—हरजस। १०।

६–बगि सभा मा ग्यान विचार, भीतरि लपण विलो का धार ।। २ ।।
बाहरि सेत भीतरि मसि वरणां, कहा भयौ तेर हाथि सिवरणां ।। ३ ।।

(शेषांश आगे देखें)

यहा[1]। आत्मा के कारण[2] शरीर "रतन" है, अत आत्म-ज्ञान प्राप्ति ही सबसे बड़ा है। यह जानबूझ कर भी यदि कोई कूएँ मे पडे तो वह बुद्धिमानी की बात नहा[3]। तीस सत्य-कथा पर वील्होजी का विशेष आग्रह है। परमतत्त्व की उपलब्धि सत्य स ही सम्भव है

इसके लिए गुरु का होना आवश्यक है जिसकी पहचान अनेक जगह बताई गई है कवि के अनुसार जाम्भोजी ही "महागुरु" हैं, विष्णु हैं। साम्प्रदायिक मान्यता के अति रिक्त भी उन्होंने इस सम्बन्ध में कई और तर्क दिए हैं। उनके "सबदा" की सच्चाई का अनु भव वील्होजी ने दिल मे किया है,[4] उसके दिल की "डिगिमिगि" जाम्भोजी के कारण हो गई है[5]। दूसरे, तत्कालीन मरुदेशीय-समाज म हिंदू धर्म और मुसलमानी मजहब दोनो म बाह्य दिखावा मात्र रह गया था, किन्तु विष्णोई सम्प्रदाय जन-साधारण क लि

डोरिय मिरघ ज्यौं दोह रचाव, वरन देपि बपडो मिरघ ठगाव ॥ ४ ॥
पीवण सरप ज्यौं फूळ करि पीव, बुग ज्यौं ध्यान अवर क दीव ॥ ५ ॥
पर धन प्रीति लगी जड भागी, जाणि मुस ध्यान बिलाई लागी ॥ ६ ॥
धरम ठगा का एही इहनाणा। वील्ह कहै मैं देपि डराणा ॥ ७ ॥-हरजस ७।

१-तिह कुसगी को सग नीवारि, जाह नाव विसन को न भाव।
तिह कुसगी को सग नीवारि, भूत भूतणी धियाव।
तिह कुसगी को सग नीवारि, सील सावितो न चल।
तिह कुसगी को सग नीवारि, धम ध्यावता नै पलै।
सुगर सुमारग मेल्हि क, साध सगति हू टळि रहै।
तिह कुसगी को सग न कीजिय, वील्हाजी सुपह ता कुपह गहै ॥ ४१ ॥-छपइया

२-थथा थिर करि जीवडो, दह दिस डिगण न दे मन।
इस कया मा पाहणो, ताथ तन रतन।
ताथ तन रतन, ई पिंड पडिसी काई।
सुकरत पहली सचि, पछ पछतायस भाई।
साच सही ससार मा, कुप अवपळ न भाषी।
विसन जपो ससारि थथा जीव थिर करि रापि ॥ २१ ॥-विसन छतीसी।

३-लाभ इम्रत पीरि, जाणि क जहर न पीज।
मेल्हि सजण की गोठि, पिसण सू गोठि न कीज।
लाभ सुध्य मेकाणि, टार वेछ्ड न चढिय।
मेल्हि गोप सुप सज, देषता कूप न पडिय।
तार सुगुर तरिय भ जळ, सुपह सुमारग अडिय।
वील्ह कहै जी पारिपू, कुगर कुमारग बूडिय ॥ ३६ ॥ -'छपइया'।

४-कज कथणी कानेह, गु ण गाया सुणिया घणाह।
सचि पायो सबदेह, दिलमो भीतरी देवजी ॥ ८ ॥-'दूहा'

५-सतगुर सोई असत न भाप, सवद गरू का साचा।
छद न मद न सम विवरजत, नीत नीरोतरि वाचा ॥ २ ॥
मेरा गुर सदा सतोषी सहजै लीणा, जाती तिसना आसा।
पुवणा पाणी जे बसि कीया, तवा न भेड़ें पासा।
मेरा गुर केवळ ग्यांनी ब्र मगियानी, माया मोह न कीया।
जागत जोगी नीद न सूता, वासा भोमि न लीया ॥ ४ ॥
उ ध कु वळ जोगि सु धा कीया, मति म तरि गति जाणी।
वील्ह कहै पूरा गुर पाया, मन की डिगिमिगि भागी ॥ ५ ॥-हरजस १४।

ऋजु राजमाग के समान था। कवि ने सगव अपने सम्प्रदाय और उसके प्रवतक की महत्ता का सोदाहरण उल्लेख किया है[1]। जाम्भोजी ने जीव को चौरासी लाख योनियो मे भटकने मे बचाया[2]। जिसने उनकी शरण-ग्रहण की उसका उद्धार हो गया, उन्होने ही नाम-स्मरण को पाप-मोचन का उपाय बताया था[3]।

कवि की सभी रचनाओ मे प्रकारान्तर से उपयुक्त विचारो की यत्र-तत्र भावपूर्ण अभिव्यक्ति मिलती है। वील्होजी की ६ रचनाएँ (कथा औतारपात, कथा गुगळिय की, कथा पूगेजा की, कथा दू णपुर की, कथा जसलमेर की तथा कथा भोरडा की) जाम्भोजी के चरिताख्यान हैं और शेष सभी मुक्तक हैं। "कथा ग्यान चरी" और "कथा घडावध" मे नाम "कथा" अवश्य है, किन्तु यहा "कथा" का आशय एतद्विषयक चर्चा से ही लेना चाहिए। अलौकिक तत्त्वा का समावेश प्राय सभी रचनाओ म है।

चरिताख्यान राजस्थानी साहित्य की आख्यान-काव्य-परम्परा की महत्त्वपूण कडिया। ये वणन प्रधान, सक्षिप्त, गेय और अभिनेय भी हैं। भाषा बोलचाल की और प्रवाहपूर्ण। लोक प्रचलित घरेलू शब्दावली उनकी विशेषता है। आख्यान काव्य के सभी तत्त्व इनम ठु रूप से विद्यमान हैं। इनम कवि का ध्यान सवत्र मूलकथा और उससे अविभाज्य रूप से न्बधित उल्लखा पर ही रहता है, इतर वणनो या घटनाओ मे नही। एकान्विति इनका ण है। कवि इनम किसी प्रकार की भूमिका न बाघ कर सीधे ही मूलकथन आरम्भ करता। कथा म आए विभिन्न चित्रण, कथा प्रवाह के आवश्यक अ ग बनकर आए हैं। किसी भी कार से अनावश्यक कथा विस्तार, अन्तकथा या धुर प्रसग नही ह। शब्दावली नपी-तुली है, सका प्रयोग प्रसगानुकूल और प्रभावोत्पादक है। जहा शब्दो और वाक्यो की पुनरावत्ति ; वहा व काव्य सौष्ठव म वद्धि ही करते हैं। यह गुण कम कवियो म मिलता है।

इनम वर्णित सवाद और कथन विशेष की पुनरावृत्ति भाव सौ दय और सहज जीवन ी अभिव्यक्ति होने के कारण अनायास ही ध्यान आकृष्ट करते हैं। पढने पर ऐसा प्रतीत होता है, मानो वास्तविक जीवन सजीव हो गया हो।

मनोदशा परिवतन के भी बडे भव्य चित्रण कवि ने किए हैं। इसके सामूहिक-

१-बाभण वांच वेद पुराणा, काजी किताब कुराणा।
पथर थरप मसीति पुजाव हळति दहु नही जाणा ॥ २ ।
हादू हरि कहि हारि न मान, तुरक तावसी लीणा।
मेरी कहै हमारी जाण, दोऊ लडि बीडि पीणा ॥ ३ ॥
हादू फीरि फीरि तीरथ घोक, मुसिलमान मदीना।
अलाह निरजण मन दिल भीतरि, अ तरि डेरा दीन्हा ॥ ४ ॥
हींदू क मनि पूरब मान, पछम मुसिलमाना।
बीच बीच वील्हजी को सामी, सब दिल माहि समाना ॥ ५ ॥-हरजस १८।
२-चौरासी चवताह जूगि मु वता जुग गयो।
तो विण ताह जोवाह दुख न भागो देवजी ॥ १४ ॥-'दूहा'।
३-सामि तुहारी साव, ओट लई ता उवरया।
पापां पाल्ण नाव, ओ दानि तुहारो देवजी ॥ २५ ॥-'दूहा'।

मनोवृत्ति और पात्र मनोवृत्ति, दोनों के उदाहरण मिलते हैं। पहली श्रेणी के लिए "कथा औतारपात" और "कथा गुगलिय" की द्रष्टव्य हैं। पात्र प्रधानत दो प्रकार के हैं- एक वे जिनकी मनोभावनाओं मे परिवतन और चरित विकास होता है तथा दूसरे वे जिनमे ऐसा न होकर उनके कतिपय गुणों का उद्घाटन किया गया मिलता है। पहले के अन्तगत राव दीग (कथा दू णपुर की) और दूसरे म रावल जतसी (कथा जसलमेर की) की गणना की जा सकती है।

चरिताख्यान और एकोद्देश्यीय घटना प्रधान (कवत परसग का तथा "सडाए" की साखियाँ) दोनो प्रकार की रचनाएँ किसी न किसी रूप म जाम्भोजी और सम्प्रदाय से सम्ब न्धित हैं। इनसे दो बातो का पता चलता है- एक तो जाम्भोजी के व्यापक प्रभाव, सम्प्रदाय और उसके प्रचार प्रसार का तथा दूसरे, लोगो को सुपथ पर लाने और सम्प्रदाय की उन्नति हेतु किए गए विभिन्न प्रयासो और कार्यों का।

मुक्तक रचनाओ (हरजस, साखी, दोहा, छप्पय आदि) म कवि ने अपनी भावानुभूति का अत्यन्त, हृदयग्राही और प्रभावोत्पादक वणन किया है। उपमा, रूपक और विविध अप्रस्तुत योजना के माध्यम से हृदय की अनेक भावनाओ को वाणी दी है। इनम कवि जितना खुल सका है उतना कथापरक रचनाओं म नही क्योकि वहा इसका न तो अवकाश था और न ही प्रसग। फिर भी उनमे एकाध स्थलो पर उसके भावुक भक्त-हृदय के उद्गार मुखरित हो गए हैं। कथा जसलमेर की म रावल जतसी का आत्म निवेदन ऐसा ही है।

समष्टिरूप से वील्हाजी की रचनाओ मे अनेक बातो की ओर ध्यान दिया गया मिलता है, जिनम कुछ ये हैं -(१) मानवीय भावनाओं का परिष्कार और उसको पशुवृत्ति से ऊ चा उठाने का प्रयास, (२) लोक को नतिक और शुद्धाचरण की भूमि पर खड़ा कर अध्यात्म की ओर उन्मुख करना। नीति-कथन इनकी स्वाभाविक परिणति है। जाम्भोजी के जीवन, कार्यों और महिमा का अनेक विध उल्लेख इसीलिए वह करता है। (३) जन-जीवन के विभिन्न पहलुओ पर दृष्टिपात और अपने ढग से समाधान। इसके सम्यकरूपेण निरूपण के लिए कवि को कई प्रकार से सामाजिक वणन करना पडा है। कही वह मूल वक्तव्य और प्रभाव के लिए सीधा ही किया गया है (कथा गुगलिय की, कथा औतारपात), कहीं वह अनायास हो गया है और कही कहीं ध्वनित है। प्राय सभी रचनाओं म समाज चित्रण किसी न किसी रूप म मिलता है। यह अत्यन्त व्यापक, बहुमुखी और वविध्यपूर्ण है। इनमें लोगो के रहन-सहन, चाल-चलन, आचार विचार-व्यवहार, विश्वास मान्यता, भावना रीति-नीति, पूजा-पद्धति, धम-सम्प्रदाय, जीवन-यापन के साधनों, तौर-तरीकों आदि के मनोरम वणन मिलते हैं। जीवन-वविध्य के जीवन्त चित्रण होने के नाते ऐसे उल्लेख न केवल साहित्यिक दृष्टि से ही महत्वपूर्ण हैं अपितु सास्कृतिक दृष्टि से भी अत्यन्त मूल्यवान हैं। इनसे स्पष्ट है कि वील्होजी की दृष्टि जीवन के प्रत्येक पहलू पर गई थी। इनम उनकी स्पष्ट वादिता, सत्य के प्रति अटल आस्था और निर्भीकता का पदे-पदे पता चलता है।

उनका साहित्य जाम्भोजी, उनकी विचारधारा, विष्णोई सम्प्रदाय तथा मरुदेश

ज सम्बन्धी अनेकानेक बातो की प्रामाणिक जानकारी का आधार है। "सच अपरी तावळी" तथा "क्या औतार पात" के आरम्भ मे कवि के निवेदन से पता चलता है कि ी भी प्रकार का असत्य भाषण न उनको रुचिकर था न सह्य । जिस रूप मे सत्य मिला को उसी रूप मे उचित शब्दों द्वारा कह देना उनको इष्ट था। इसी कारण वर्ण्य विषय प्रामाणिकता की दृष्टि से उनके साहित्य का महत्त्व सर्वोपरि है। वस्तुत वील्होजी चाई और प्रामाणिकता के स्वय स्रोत थे।

अत्यन्त सहज रूप से वे आत्म और पर-दर्शन कराना चाहते हैं। उनके साहित्य मे और समष्टि के कल्याण की व्यापक और उदार मनोवृत्ति का परिचय मिलता । स्वय सिद्ध योगी थे, किन्तु योग-चर्चा उन्होंने नही की और जो भी की,[1] वह उनकी । अनुभूत साधना का दिग्दर्शन ही कराती है। गृहस्थ के लिए वे हठयोग नही, नाम करने को कहते हैं। हठयोग के नाम पर प्रचलित पाखण्ड को लक्ष्य करके भी उन्होने ो चर्चा को ठीक नही समझा। उनके अनुसार, सिर लेना वडी बात नही, सिर देना बात है। रावळ जतसी जाम्भोजी से वर मागते हुए यही कहते हैं— 'मैं स्वय डरू ु किसी को डराऊ नहीं'[2] । अन्यत्र भी कवि ने यही कहा है (हरजस सख्या १)। बलिदान का भाव आत्मविस्तार का कारण है। यह उदात्त गुण का उद्भावक और क है। वील्होजी ने यही सिखाया और ऐसे बलिदानो का सोल्लास वर्णन किया। डाणे" का घटनाओ वाली साखियाँ इसका सम्यक् परिचय देती हैं। कहना न होगा कि देन वाले जाम्भोजी की किसी न किसी बात पर ही ऐसा कर रहे थे, जिसकी पुर्नशिक्षा होजी ने दी थी। आत्मविश्वास के ऐसे उदाहरण ढूढने से ही मिलेंगे।

मरुभाषा के भाषाशास्त्रीय, विशेषत लोगो की बोली के अध्ययन के लिए वील्होजी नाम चिर-स्मरणीय रहगा। केवल "सच अपरी विगतावळी' ही नही, उनकी समस्त दावली इस सम्बन्ध म महत्त्वपूर्ण है। उल्लेखनीय है कि समाज सुधार, मनोवृत्ति परिष्कार,

---

-घर नीसाण अ नीक धुनि उपज, सुज आवध विण वीण वाज ।
ताळ सुर नाद सुर पंच सुर समळो, गिगन बीणा घरहर मेघ गाज ॥ २ ॥
सानिध्य पाइय को न दुपाइय, आप पर आतमा जाणि रहिय ।
वरजिय वाद हकार तजि तामसी एक ही एक दोय कु ण कहिय ॥ ३ ॥
एक मन जाचिय, रूप बीण राचिय, पोहम प्रमळा पखो वास लीज ।
मुन मा सोभिय अकळ पथ पोजिय, अगम अतीत सू प्रीति कीज ।
मनण नीन्दिय अवर चष सोभिय, कठण नीया कहो कु ण कहिय ।
अलाह अलेष किम लपिय वील्हजी, सबद सू सुरति लिव लाय रहिय ॥ ५ ॥
–हरजस ८ ।

२-रावळ सार एक वीनवी, साईं एक असी सु णिज ।
कळिजुग मा जे जीव, मुकति ताह नू न कहीजै ।
सा क्यों म्हानू होय, म्हे पापी अपराधी ।
दरसण थाहरो दीठ, थाह निधि मोटी लाधी ।
मागू छू जू ण मिरघ री, हवान मत घातो कही—
पड चूकि न अ मसरि पाणी पियों, बीहू पणि बीहाडू नही ॥ १५ ॥

अध्यात्म-सन्देश और चेतावनी तो अनेक सन्त भक्तों ने दी है परन्तु इनके अतिरिक्त बोला-सुधार का सोदाहरण प्रयास केवल वील्होजी ने ही किया।

राजस्थानी साहित्य और संस्कृति को वील्होजी की अभूतपूर्व देन है। उनकी रचनाएं बहुत लोकप्रसिद्ध हुई। अनेक समकालीन और परवर्ती कवियों ने न केवल उनसे प्रेरणा ग्रहण की, बल्कि उनके आधार पर अथवा उनको समाविष्ट करते हुए अपनी रचनाएं भी लिखी। अनेक मुक्तक रचनाएं तो लोक प्रसिद्धि के कारण श्रद्धालुओं द्वारा अन्य कवियों के नाम से भी प्रचारित कर दी गई। इसका एक उदाहरण पर्याप्त होगा। इनका एक हरजस (संख्या १५) "सतो भाई घर ही झगडो भारी", सुप्रसिद्ध ग्रंथ संगीत रागकल्पद्रुम[1] में किंचित परिवर्तित रूप में कबीर के नाम से मिलता है। परम्परा, काव्य रूप, भाषा-शैली, विचारधारा आदि की दृष्टि से वील्होजी ने राजस्थानी साहित्य में अपने ढंग से योग दिया।

५६ दसु धीदास (विक्रम १७ वीं शताब्दी)

प्रति संख्या २०१ में "केसवजी के सवइये" (फोलियो १९७-१९९ पर) नीरस अन्तर्गत केसोजी के अतिरिक्त गोपाल, मान, किसोर आदि कवियों के कुल ४० छन्द लिपिबद्ध मिलते हैं, जिनमें एक सवैया दसु धीदास का भी है। यह छन्द किंचित प्रतीत होता है।

इसमें श्रद्धा-भक्ति पूर्वक कवि ने जाम्भोजी का महिमा-गान किया है —

जसे भवि सायर मां सबद रतन काढे, तसे तिहु लोक ही मा पथ ही चलाया है
जसे काळी नाग नायी जळ उरथ घाट कियौ, भगत क तारिव कू देह धरि पाया है
चालत की छांह नाही, नींद भूख ब्यापै नांहीं सबद सुनाया है
कहत दसु धीदास सुचील सीनात सति, कचन सी काया ताहू कळम बनाया है।२

दसु धीदास वील्होजी के सात प्रमुख शिष्यों में से एक थे (देखें-परिशिष्ट में 'शिष्य परम्परा')। मोटे रूप से इनका समय सत्रहवीं शताब्दी है।

५७ आनन्द (अनुमानतः विक्रम १७वीं शताब्दी)

इनके विषय में विशेष ज्ञात नहीं है। रचनाओं में आए उल्लेखों और शैली से इन का विष्णोई होना ध्वनित है। इनकी ये रचनाएँ उपलब्ध हैं —

१—कथत गोविन्द का-१० कवित। (प्रति संख्या २०१, फोलियो ५४१-४४)।
२—कथत करु वां पडवा का महाभारथ का-१० कवित्त। (वही, फोलियो १६१-६३)।

१—कृष्णानन्द रागसागर विरचित, खण्ड २, पृष्ठ ४६५।

३-फुटकर छन्द-१ सवया, १ दोहा (प्रति सख्या ३८७)।

प्रथम रचना मे बगाल के राजा गोपीचन्द के जोग लेने का वर्णन है। एक समय राजा को प्यासा जानकर राणी ने उसको पानी पिलाया। पानी पीते देख, पिता के समान ही उसकी सुन्दर देह को नश्वर जान कर माता मणावती के आसू बहने लगे। राजा के छे पर माता ने यह कारण बताया और अमरता प्राप्ति हेतु जालधरनाथ को गुरु बनाने कहा। राजा ने पहले तो तक किया किन्तु अन्त मे उसने सवस्व त्याग कर "जोग" या[1]। ध्यातव्य है कि इसम 'मणावती' के रोने का कारण अन्य ऐसी रचनाओ से भिन्न। एतद् विषयक रचनाओ मे इसका विशेष स्थान है।

दूसरी म महाभारत क्षेत्र मे भगवान श्री कृष्ण द्वारा टिटिहरी पक्षी के अ डा की रक्षा ए जाने का वर्णन है। युद्ध से पूव भगवान ने टिटिहरी को अ डे लेकर उड जाने को कहा न्तु उसन उनकी शरण-ग्रहण कर ऐसा नही किया। कौरवो और पाण्डवो मे भयकर द्ध हुआ जिसम अनक योद्धा मारे गए। प्रभु ने एक ढाल से अ डों को ढाँप कर सुरक्षित या[2]। भगवद्महिमा का बहुत सुन्दर वर्णन इसमे किया गया है।

दोनो रचनाओ म लघु सवाद और वर्णन विशेष ध्यान आकृष्ट करते हैं। ये भाव—

१-चौकस गोपीचद एक दिन पठो इ दरि।
सामा सोळ सहस, सरस सोभति सु दरि।
त्रपावत प्रिय जाणि, आणि पाणी जळ पाव।
जातो दीस कठि, कवळ नाळी जिम जाव।
तिणि समै देषि मीणावती, मात मनि लागी डरण।
असी देह तात वरणमणा, आसू पाति लागी करण॥ २॥
चौकस पूछ गोपीचद, मन मा कु वण दुष माता।
हू वटो ताहरो, त्यिण सत्रे सुष दाता।
मात कहै सति वात सु णो राजा दुष म्हारो।
मैं देख्या सम और, सरूप मनोहर थारो।
या काया कचनी, सदा सुन्दरी जो रहती।
जा जी वु हता साम्य, दुष ले क्लेस न सहती।
न रहै अनि ससार मा, माटी जाय माटी रळ।
माता कहै मणावती, आसू इ णि कारजि ढळ॥ ५॥
२-पारा इ डा ऊपरि थट, वरडकि ज्यों वगतर कट।
द ज्यों दाट दडग, टोप रगावळि थट।
ग जाव रषिय षड, गुड ज्यौं सूर गरक।
चमकि तुरिया पुर चाळ, सभे चाळ सूर मळक।
प पाग नर पळहळ, सूरा वल्य साम्हा सहै।
तिण वार त्रिकम राप्या तके, हरि राष सेई रहै॥ ६॥
भडा नरा उरि भाजि, उरि उरि मता उछटे।
धीक एक उरि धीक, वरत वोहरता वट।
लोप वोथ बग लोथ, काटि कुटि विकट करता।
रुड मुड न पग रपा, रुदर मिनष पव करता।
आन मुष करता अनत, जोण अ णियाळा भाला सह्या।
रिण मभि राय राप्या रूडा, हरि राप्या सेई रह्या॥ ७॥

पूरए और निराकरण हैं। दूसरी रचना म युद्ध की भीषणता का सजीव चित्रण है[1]।

फुटकर छन्दो म भक्त के गुणो का उल्लेख है[2]। सवए की भाषा पिंगल है और शेष सबकी राजस्थानी। समष्टि रूप म कवि का भावुक भगवद्-भक्त होना प्रमाणित होता है।

५८, कवि - अज्ञात (अनुमानत विक्रम १७ वीं शताब्दी)

साखी —सतजुग सतपथ प्रगटयो, साहिब तण सहाय।
आदू देवां बांणवां, ऊ ही चाली जाय ॥ १ ॥–प्रति २०१, साखी ६६।

६० दोहों की इस साखी म बीकानेर के अनेक विष्णोई स्त्री-पुरुषों का कारणवश स्वेच्छा से प्राण त्यागने का वर्णन है।

साहिबदास और कल्याणमल द्वारा धोखे से दड लिए जाने पर करनू और दौलत प्राण दिए, फिर रायसिंह के रुपए मांगने पर कूदसू मे हरपाल, वाली, धरमगिग, पुल्ह, क मणि आदि अनेक विष्णोई स्त्री-पुरुषो ने 'खडाणा' किया। कुछ समय पश्चात जसव और मेघे के कहने पर राय रायसिंह ने उनको कर उगाहने का काम सौंप दिया। नाथे प 'धूंवे' का कर लगाने के बदले पीथू ने अपने प्राण दिए। पश्चात् चोरों ने जाजाणी बक की चोरी की, जिनको छुड़ाने के लिए रूडो, दामो और बहुत से विष्णोइयो ने अपने प्रा त्यागे।

ठाकुरों ने मुकाम-मन्दिर के गिरे हुए कलश को पुन वहा पर चढाने नही दिया तब आसो, कान्हो, वरसिंह, गोयद, गोपाल आदि ने अजमेर म बादशाह के पास जाने क विचार किया। आगे सूरसिंह का डेरा था। डेरे मे से निकलते देख कर उसने उनको बुल लिया। राजा के साथ तीन मजिल तक तो वे दक्षिण की ओर चले किन्तु बाद म सा छोड कर अजमेर पहु चे। वहा से उपयु क्त विषय का परवाना लिखा लाए। तब जागळ पारवा ऊन्तासर आदि स्थानो से अनेक स्त्री-पुरुष एकत्र होकर मुकाम आए और 'खडाणा' किया। फलस्वरूप कारीगर पुन कलश चढा कर ही उठे। यह घटना सवत १६७३ के मार्ग

१–की लोक मभि कुरखेत, मडळीक मरद मडाणा।
धूवा धूकळ धोर सूर, सळवळे सपाणा।
घमट घाव गहगट घट, फिर गीवर गज थाणा।
विढ सांवत सूर विकट आवध इ द मैं समाणा।
गुडड गज थाटा गयद, थाण जके हसती थया।
आप उवारया से उवरया, मुकतिनाथ कीवी मया ॥ ५ ॥

२–सील सतोष सुबुध सुलखण, धीर गभीर मिल जुग च्यारे।
धरम दया निरलोभ निरासिक निरभ भक्ति अराधन हार।
करम कर मु कर प्रभु अरपण ही फल चाह न बुध विचारे।
स्वात की ग्यांन अनद मन, सोई भक्त सदा भगवतहि प्यारे ॥ १ ॥

नक्षत्र म शुक्ल पक्ष की एकादशी को हुई थी[1] । कवि ने महीने का उल्लेख नहीं किया है।

इसम वरिणत विभिन्न घटनाओं का समय लगभग संवत् १६०० से १६७३ तक है। उल्लिखित कल्याणमल, राय रायसिंह और सूरसिंह बीकानेर के शासक रहे हैं[2] । रायसिंह कल्याणमल के दूसरे पुत्र थे। इसमे रायसिंहजी के किला बनवाने का भी उल्लेख है[3] । यह सवन १६५० में पूरा हुआ था[4] । साखी से ध्वनित होता है कि रुपयो की विशेष आवश्यकता इसके लिए थी। "खडाणे" सम्बन्धी साखियो मे इसका महत्त्वपूर्ण स्थान है। इससे विश्णोइयों की सम्पन्नता, धर्म-पालन मे दृढ़ता और तद् हेतु निस्संकोच प्राण देने का पता चलता है। साथ ही तत्कालीन राजकीय शिथिलताओं, आवश्यकताओं, और आपसी ईर्ष्या-द्वेष के संकेत भी मिलते हैं। कवि ने यत्र-तत्र इनका प्रभावपूर्ण उल्लेख किया है[5] ।

५६ नानिग (नानिगदास) (अनुमानत विक्रम १७ वीं शताब्दी)

रचनाएँ— १-साखी • जीवड़ा जो धन्य महूरति धन्य सुवेळां, गुर जांभेसर आयो[6] ॥१॥
२-नीसाणी सुलतानी बलक बखारे दा, हो सुलतानी बलक बखारे दा ॥

–प्रति ४०६ ।

१६ पंक्तियो की 'कणा की' प्रस्तुत साखी में जाम्भोजी का महिमा-गान और ... र क किसी रामदास का वनहेडा में विश्णोई धर्म-पालनार्थ सोत्साह अपने सिर देने ... उल्लेख है। कतिपय पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं[7] ।

१-... हाडिये मेळा करि, होतासण होम्यां।
... तिथि ग्यारसि तेहोतर, मोमिण पेल किया ॥ ५९ ॥
सुकळ पखि आदरा नखत, मोमिण मुकति गया ।
... पारा किया माहि जा, बाहर करि बावा ॥ ६० ॥ ६६ ॥

२-ओझा बीकानेर राज्य का इतिहास, प्रथम खण्ड, पृष्ठ १३६-२२८, सन् १९३९ ।

३-... आस पियासो राजवी, लीयो कोट चिणाय ।
दमड़ा या विसनोइयां, ज्यौल्या सूत फिराय ॥ १७ ॥

४-ओझा बीकानेर राज्य का इतिहास, प्रथम खण्ड, पृष्ठ १७९, सन् १९३९ ।

५-कळि काठा कुरलोभिया, घाल्या हाथ सवाहि ।
कागळ उपरि लिपि लिया, घु बी नाये रै लाय ॥ १४ ॥
बाडो ज कीज जतन नै, पालण नै हरियाव ।
बाग चर जे पेत न, करणों क्योंई न जाय ॥ १५ ॥
हरियावां न राजवां, पेत न्यो मुकळाय ।
करस ग हरियाव चरि गया, हाथ गया घूडी माहि ॥ १६ ॥

६-प्रति सख्या ६८, १५२, २०१, २१५ तथा २६३ ।

७-जीवना जी दोय पथ निरमळ दिल दिल दायम विषम पथ चलायो ॥ २ ॥
जीवना जी पतडा पापी दोर आपस्यैं, आयो विसन म ध्यायो ॥ ३ ॥
जीवना जो धामति करि करि नासनि करिस्य, जां सिरि गुह लिपायो ॥ ४ ॥
जीवन वा नागोर सूं रामदास चढियो, धन्य मनहेडै आयो ॥ ७ ॥
जीवना जी काडा तग गरदनि माही, सीस उतारि मुख धायो ॥ ८ ॥ (शेषांश आगे देखें)

मीसाली कुछ पाठभेद से ग्रसूजी कविया के नाम से भी प्रचलित है किन्तु उनकी रचना नहीं है। इसमें बसरा-बुखारा के सुलतान सम्बन्धी वर्णन है। भाषा पर किंचित् पंजाबी प्रभाव है[१]। (इस सम्बन्ध में पृष्ठ २११, ५८१ भी देखें)।

६० लालोजी (विक्रम १७ वीं शताब्दी)

साखी – 'आंवलो',–हूं बलिहारी सापां मोमिणां आरी छ अबचळ बाच।
विसन सगाई ने करो, काज सरं सह साच ॥ १ ॥ टेक।–प्रति २०१।

ये वील्होजी के सात शिष्यों में एक थे (द्रष्टव्य–परिशिष्ट में 'साधु-परम्परा') सुरजनदासजी पूनिया ने एक गीत में 'सुग्यान' लालोजी के ज्योतिष-ज्ञान की प्रशंसा की है,[२] जिससे अनुमान होता है कि ये सम्भवतः जाति के ब्राह्मण विष्णोई थे।

'राग सुहब' में गेय लालोजी ने २८ दोहों की इस साखी में एक लघु-कथा के द्वारा पाण्डवों के गुणों का दिग्दर्शन कराया है। बीच में ८ छंद (संख्या १० १२, १४, १६, १८, २०, २३ और २५) मरुभाषा मिश्रित अशुद्ध संस्कृत 'श्लोक' (श्लोक) हैं। 'श्लोक' एक प्रकार से दोहा ही है। पाण्डवों को कष्ट देने के लिए कौरवों ने दुर्वासा को आम की एक गुठली 'अहार' (भून) कर दी। ऋषि ने पाण्डवों के पास जाकर कहा–मुझे इस गुठली से उत्पन्न आम के रस से भोजन करवाओ अन्यथा शाप दूंगा। इस पर युधिष्ठिर, अर्जुन, सहदेव, नकुल, द्रौपदी तथा कुन्ती–प्रत्येक ने बारी-बारी से स्नान कर आम के बदले अपने पुण्यकर्म समर्पित किए। इससे गुठली से उत्पन्न आम वृक्ष से पका आम प्राप्त हुआ जिसके रस से ऋषि को मनोवांछित भोजन कराया गया।

जीवला जी सुरगे कांमणि पडी उडीक, रांमदास वाय वधायो ॥ १३ ॥
जीवला जी देव विसन म्हे सेवग तेरा, जिण सुरगा माघ बतायो ॥ १५ ॥
जीवला जी गुर परसादे नानिग बोल, मीठो दीन सुणायो ॥ १६ ॥

दीन (धर्म) को मीठा समसदीन और अमियादीन ने भी बताया है —
ओह महारस समसदीन बोलें, मीठो दीन सनेहा ॥ ११ ॥–समसदीन।
दीन मीठो मेवो, जुग करि देयो पारी ॥ १ ॥–अमियादीन।

१–दासी सूति परी विभूती चावक चोट चकारे दा।
वातसाह न जाव दीयो है यो ही हवाल तुहारे दा ॥ १ ॥
धिन है चेरी सतगुर मेरी मेटण दुप ससारे दा।
यो तन पासा मल मल पहरता च्यार टाक चौतारे दा ॥
अब ता बोझ उठावण लागा गूदड सेर अठारे दा ॥ २ ॥
पहला जीमता चीज निराला ताता तुरत तुहारे दा।
अब तो टूका पावण लागा वासी साझ सवारे दा ॥ ३ ॥
पहलु चढता गढ दल बादल नव लप तुरी नगारे दा।
इतना तज करि लई फकीरी धिन आकीद विचारे दा ॥ ४ ॥
पीर पकवर अमर अवलीया सिध पुरप दी रणी दा।
नानिगदास जप वरागी साचा फकर अपारे दा ॥ ५ ॥ ३ ॥ –प्रति ४०६।

२–नीण छर निपालित नेतो, जोनेग लाल सुपात जिसो ॥ ३ ॥

रचना का उद्देश्य पाण्डवों के सत्कर्मों और गुणों का परिचय कराना तथा अव्यक्त रूप से पाठकों को उनके अपनाने का सकेत और प्रेरणा देना है। आरम्भ मे उत्पन्न पाठक की कौतुहल-वृत्ति शन शनै पाण्डवो के गुण-प्राबल्य के साथ, उनके प्रति श्रद्धा मे परिणत हो जाती है। इससे प्रत्येक के विशिष्ट गुणो का भी पता चलता है। कतिपय पद द्रष्टव्य हैं[1]।

६१ गोपाल (विक्रम १७ वीं शताब्दी)

इनके विषय म विशेष कुछ पता नही चलता, अनुमानत ये केसोदासजी गोदारा के समकालीन रहे होंगे। प्रति सख्या २०१ मे विभिन्न स्थानो पर (फोलियो–१५५, १८१, १८८, १९७, २००) इनके १२ फुटकर छद (१ सवया, ४ कवित्त और ७ कुंडलियां) उपलब्ध हैं।

आत्मोद्धार-निमित्त एक सवए में कवि का निवेदन जाम्भोजी के प्रति ध्वनित[2] है। "कुंडली" का कथन और शब्दावली भी यही द्योतित करती है[3]।

१–मावलि बीज उगारियो, दुरभा रिष हाथि दिवाय।
ले दुरमा रिष चालियो, करवा रळी कराय ॥ ३ ॥
नाव दहूठळ धरम सुत, तू पडवा को राय।
ध्याना हू दूरि पथेसरो, मन वछ्या मोहि जिमाय ॥ ५ ॥
भूचौ आव उपाय क, अब रस हुव रसोय।
नहा तर सराप ज देविस्यों, इणि विधि जीमण होय ॥ ७ ॥
मुय विणि बीज न उगव, रुति विणि नाही मेह।
किणि विधि आदो उपज, वयो सत राय देव ॥ ९ ॥ (द्रौपदी का कथन)
आशो रोप्यो पाचे पाडवे, पालिक क दरबारि।
पोष पड लो आज सोवनी हीडला के सुचियारि ॥ २७ ॥
साधा मनि आणद हुवो, गाफिला मनि अणराय।
वीनवनी लालो कहे, आवगुव णि चुकाय ॥ २८ ॥
२–गोपाल कहे प्रतिपाळ सुणो, मो पूनी के पून विसारियो जी।
मैं आप अलेप की ओट गही, अरि हू करि आदे उवारियो जी।
गिरज्या री लाज मवारियो काज, अपणी जण जारि उधारियो जी।
मय की लाज नीवाजि निरजण, मारि क बोहडि न मारियो जी।
वान की पति करो गति गोम्यद, ऋतव लार न जाइयो जी।
मो कपटा के काज सर हरे ठीक असी म्हराइयो जी ॥ गोपाल० ॥
तुलनीय—केसोदास गोदारा की साखी —
(क) हरि चरणे लागौ रहू, जे सुणी वात वमेप।
प्रग वाने की वहो, साम्य रापौ टेक ॥–साखी, सख्या ५ ॥
(ख) हरि हिसाव न पूजिय, विडद वाने को वही ॥–साखी, सख्या ६ ॥
३–ता साहिब क यादि करि, जिणि मेदनी उपाई।
जिणि सिरजी हित परीति, दुनी जिणि धध लाई।
अधर धरयौ असमाण, अचळ करि धरती रापी।
सिरया पाणी पुवण, चद सूरज दोय सापी।
सिरया परवत मेर, वणी अठार भार। (शेषांश आगे देखें)

कवितों में त्रिया-लक्षण वर्णित है। इनमें तीन छन्दों में फूहड़[1] और एक में सुशील[2] स्त्री के लक्षणों का बड़ा खरा और स्पष्ट उल्लेख है।

कुंडलियों में नीति-कथन,[3] मृत्यु की अनिवार्यता, हरिनाम-स्मरण, तथा यौवन के बीतने और वृद्धावस्था का वर्णन है[4]।

कवि ने व्यावहारिक जगत से सम्बन्धित बातों को सहज भाव से लोक-प्रचलित उपमाओं के माध्यम से कहा है। इनमें उसका अनुभव और लोक-ज्ञान प्रकट होता है। जिन

नवसै नदिया नीर, सिरज्या जिणि सागर खार।
सत्य करि साम्य धियाइय, अयो पालण लछवर।
कह गुणीयण गोपाल, ता साहिब कू यादि करि ॥ ५ ॥-तुलनीय-सब० ५१।

१-क-सूवर सो सो स्याळ, भसि सी नाका भीणी।
जिसो पाडे को पूंछ, असी कवरि की वीणी।
वतळाई बोलै नहीं, लपण लोतरा विहूणी।
झमकि न लागै काम, वुड कातण न पूणी।
कह्यौ न मान कंत को, सिर तो फडको करि ढिलो।
गोपाळ कहै नारी नही, घर मा ऊ नथ गोधिलो ॥ ८३ ॥

ख-गोपाळ नारि ठिठकारि, जास मनि घणा मुवेरा।
हाढ घर घर बारि, करै गाव मा फेरा।
हाढि ढूंढि घरि आय, धणी हरि कदे न ध्याव।
बडक बोल बढक्ती, बोलती कही न सुहाव।
काणि न करई कही की, भली छाडि साही बुरी।
गोपाळ कहै सुणियो नरा, सूवर वहू क सुंदरी ॥ ८९ ॥

२-सा सुंदरी गोपाळ आप ता उठ सवारी।
करि दातण दान सिनान, दे अ गण बुहारी।
मक सगळा सिणगार, जुगति सू साम्य धियावै।
बोले मधरी बाणि बोलती सभा सुहाव।
कहि न मेट कंत को, न झप आळ जजाल।
आ लषण जाणिय, सा सुन्दरि गोपाळ ॥ ८४ ॥

३-परहरि गाव कुगांव, जास मा बसै कुठाकर।
परहरि सीण कुसीण, कहै पाछलो आपर।
परहरि ताकी प्रीति, कियो उपगार न जाणै।
परहरि मीत कुमीत, आप ही आप वर्षाण।
परहरि नारि कुनारि, कत क कह्यौ न चाल।
परहरि पिंडत सोय धरम करतै नू पाल।
परहरि मन्यो गु मांन गुर गुर चेल मु मळा मता।
कहै गुणीयण गोपाळ, जग ऊगरि परहरि मता ॥ ७ ॥

४-गई नैण की जोति, गया डसण झलकता।
गयो नाक को नूर, गया वदन विगसता।
महर गया कुमळाय, देह त नर पसट्या।
गयो महाबळ तेज, गयो जोवन चोह ट्या।
परहरी काया चलण डोग्या, और जरय लिये बुरा।
कहि गुणीयण गोपाळ, जोवन जात यह बुरा ॥ २ ॥

बातों का अनुभव जन साधारण प्राय करता है, उनका प्रभावशाली और रोचक वर्णन कवि ने किया है।

६२ हरियो (हरिराम) (अनुमानत विक्रम १७ वीं शताब्दी)

ये मारवाड के विश्नोई साधु थे। हस्तलिखित प्रतियों में लिपिबद्ध रचनाओं के आधार पर इनका जीवन-काल उपर्युक्त माना जा सकता है, रचनाकाल संवत १६५० के आसपास रहा होगा। इनकी राग 'जैतश्री' मे गेय ४१ दोहों की 'गोपीचन्द की साखी' मिलती है[1]।

'साखी' मे माता की प्रेरणा से राजा गोपीचन्द के "जोग" लेने का वर्णन है। एक बार राजा स्नान के लिए उद्यत हुए। उस समय उनकी माता मयनावती महल पर खडी हुई थी। वह उनको देख कर रोने लगी। अकस्मात् बूँद देखकर राजा ने ऊपर देखा और माता से रोने का कारण पूछा। वह बोली—तुम्हारे पिता की देह भी ऐसी ही थी जो नष्ट हो गई। राजा ने देह को अमर बनाने का उपाय पूछा, तो माता ने उत्तर दिया मे जाने और देह अमर बनाने को कहा। राजा ने पहले तो आनाकानी की किन्तु बाद म हाथ में भिक्षा-पात्र लेकर वन चले और पात्र को 'खीर खाड' से भरकर 'जोग' लेने के लिए गोरखनाथ के पास गए। गोरख ने उनको अग मे भभूत लगाकर अपने ही घर से पहले भिक्षा लाने को कहा। इस हेतु गोपीचन्द धौलागिरी आए। पाटमदे रानी सज-धज कर सम्मुख आइ तो उन्होंने उसको 'माता' कह कर संबोधित किया। रानी ने घर म ही जोगी बनकर रहने की प्रार्थना की किन्तु सब व्यर्थ। रमते हुए गोपीचन्द परमनगर म आए और धूना रमा कर बैठ गए। सभी लोग उनके दर्शनार्थ आने लगे। वहा की राणी उनकी सगी बहन थी। वह भी उनसे मिलने के लिए आई और बोली—मयनावती तो मेरी माँ है, और तू गोपीचन्द मेरा भाई है। उसने भाई से घर चलने का अनुरोध किया। वे बोले—मैं गोपीचन्द तो अब भिखारी हूँ। 'जामणिजाई' बहन के विछोह का दुख बहुत बडा है, किन्तु फिर यहा मत आना। वे इसी प्रकार जगलों और "देस-दिसावर" मे घूमते-फिरते रहे। भरथरी के पूछने पर उन्होंने अपने पूर्व वैभव की बातें संक्षेप म बताई। "हरिया" की 'साखी' है कि राज्य छोड कर राजा ने "जोगूटा" लिया और अलख पुरुष से "लौ" लगा कर वह अमर हुआ। उदाहरणस्वरूप कतिपय छन्द नीचे दिए जाते हैं[2]।

१-प्रति संख्या १४२, १६१, २०१, २०७।

२-नां दप आपर माता कहियौ, मा कहियौ कोई नारी।
माता मणावती सुपह बतायौ, अमर कियौ ससारी ॥ २८ ॥
मरियौ मरियौ असडी माता, जीणि अो कुवर बिमार्‌यौ।
हूवो दुनिया दरसणि आवै, क्यो नारी नह निवारयौ ॥ २९ ॥
गेह रोह म्हारी बाई बहणा, माता दोस न दीणा।
माता मणावती घणा ब्रस जीवो, मुपि बोलो इम्रत बीणां ॥ ३० ॥ (पर्याद्य आगे देखें)

कवि की लोक-प्रसिद्धि का कारण उसकी रचना-'साखी' है। यह बोलचाल की प्रभावपूर्ण भाषा मे रचित, भावपूर्ण सवादात्मक गेय लघु कृति है जिसमें सवत्र घरेलू वातावरण की छाप है। रचना मे माता-पुत्र (२-९), गोपीचन्द-राणी (१५-२२) परमनगर में दर्शक-स्त्री और गोपीचन्द (२६-३०), बहन-भाई (३२-३५) तथा भरथरी-गोपीचन्द (३७-३६) सवाद नपे-तुले शब्दों मे, प्रसगानुकूल और नाटकीयता से ओतप्रोत हैं। साखी मे माता, पत्नी, बहन और जिज्ञासु लोगो के विभिन्न कथन और प्रश्नों से मानव और उसके जीवन के विविध पहलुओ पर सम्यक् प्रकाश पडता है। सुख-दुख भरे जीवन की अनेक झाँकियो के मूल मे अमरत्व-प्राप्ति का सदेश निहित है। इसका सामूहिक प्रभाव लोक-मानस के शोधन और आत्म-विस्तार की क्षमता रखता है। बहन और भाई का सवाद तो अत्यन्त ही करुणा-पूरित है।

इसके अनुसार "जोगियो" का स्थान उत्तर दिशा मे था, वही गोपीचन्द को गोरखनाथ मिले थे। निष्कपत सत्रहवी शताब्दी-पूर्वार्द्ध मे राजस्थान मे गोरख उत्तर के मार्ग जाते थे। लोग घर के झगडा के कारण भी "जोग" लेते थे, यह भी इसमे स्पष्ट है।

यह साखी गोपीचन्द-विषयक परवर्ती काव्यों की प्रमुख आधार रही है। उल्लेखनीय है कि सुप्रसिद्ध गोपीचन्द[1] काव्य मे इसको निपुणतापूर्वक समाविष्ट किया गया है तथा इसमे आए उल्लेखों को कल्पना द्वारा सभावित रूप देकर उसम घटनाओ और वर्णन का वर्द्धन किया गया मिलता है, जो पाठालोचन के विद्यार्थी के लिए अध्ययन का रोचक विषय है।

६३ दुरगदास (अनुमानत विक्रम सवत १६००-१६८०)

ये बीकानेर राज्य के निवासी थे। इनके निम्नलिखित दो हरजस मिलते हैं[2] -

क- विसन नांव भजन विनां अनेक वार हारयो॥ १ ॥ टेक ॥-५ छन्द, राग विहाग।

माता मणावती माय भणीज, तू गोपीचद भाई (जी)
मरि मरि जाऊ थारी सुरत न, बहण मिलण न आई ॥ ३२ ॥
गोपीचद ज्यौं हित करि मिळियो, भाई भुजा पसारी।
रोह रोह हे म्हारी जांमणि जाई हम गोपीचद भिखियारी ॥ ३३ ॥
सीप दीय गोपीचन्द राजा, मिळिया बहण र भाई।
जांमणि जाय को दुख दोरो, बहनड वळ न भाई ॥ ३४ ॥
गोपीचन्द जी बोले ज बोया, उथि उथि आसू आया।
हेकर सौं घरि चाल म्हारा वीर, बहनड सवद सुनाया ॥ ३५ ॥
सीष दियो सासति करि मांनी, बहनड बात विचारी।
तम तो भए गढपति राजा, हम भए भिखियारी ॥ ३६ ॥
राज तजि जोग्र टो लीयौ, अलप पुरिष लिव लाई।
अमर हुवो गोपीचद राजा, हरिय सादि मु णाई ॥ ४१ ॥

१-गोपीचद सम्पादक-श्री मनोहर शर्मा, राजस्थान साहित्य समिति, बिसाऊ(राजस्थान)।
२-प्रति सख्या ४८, २०१, २२७।

स-सोई सता तारण साम्यजी, पहलाद उबारण हार ॥ १ ॥ टेक ॥–८ छन्द, राग ग्वडी।

पहले म विभिन्न भक्तों के प्रति भगवान की कृपा तथा दूसरे मे भगवान के अनेक "प्रवाड़ों" का उल्लेख है। प्रकारान्तर से दोना ही कथनो के द्वारा कवि भगवद्–महिमा गान ही करता है। उदाहरण स्वरूप पहला हरजस नीचे दिया जाता है[1]।

प्रति सख्या ४८ म इसमे तीन छन्द और अधिक हैं जिनमे इसी भाति अन्य पौराणिक भक्तों का वर्णन है। इसके एक छन्द म जाम्भोजी से सम्बन्धित बादशाह सिकन्दर लोदी और हासिम-कासिम दर्जियो (द्रष्टव्य-जाम्भोजी का जीवन–वृत्त) का उल्लेख है।

गजराज के जद फध काटे, नाव लियो तेरो।
दिलीपती कू दियो परचो, सु सुजिया को बेरो ॥ ४ ॥

हरजसा म जाम्भोजी से सम्बन्धित कतिपय प्रसग लक्षनीय हैं। ऊपर "मोतिय" का नाम स्मरण और राव बीका से सम्बन्धित घटना का परिचायक है। इसी प्रकार दूसरे हरजस के ये कथन भी —

१ नौवाई मां राखिया, मु जारी सुत दोय।
ऊपरि पावक प्रजल्यो, साम्य उबारया सोय ॥ २ ॥
२-साच सील सतसग रह्यो, नगरि बीकाणै जाय।
खड्ग उभारयो त्रियां न, हाथ गह्यो रुधराय ॥ ३ ॥
३-पुरबिया पथ चालतां, राणों मार्ग दाण।
सीन तणी सुळसावणी, रांणी झाली नै सहनाण ॥ ६ ॥
४ भगवत भगता तारणै, गुर धारयो भगवों वेख।
कमधज राजा कारण, वरस अठारा देख ॥ ७ ॥

इनम प्रथम दो के विषय मे अन्यत्र किसी प्रकार की जानकारी नही मिलती। तीसरा राणा सागा और झाली राणी से सम्बन्धित बहु-प्रचलित कथन है। चौथे मे राव जोधाजी का सकेत है जिनको जाम्भोजी ने १८ वर्ष की आयु, सवत १५२६ में बरीमाळ नगाडा दिया था। (द्रष्टव्य-जाम्भोजी का जीवन-वृत्त) इस सदर्भ में इसी हरजस का कृष्ण-'प्रवाडे' सम्बन्धी यह छन्द भी द्रष्टव्य है, जिससे कवि के अनुसार भगवान और जाम्भोजी का अभेद सिद्ध होता है —

लाख मडप क्यों जल, सांम्य करै जो सार।
सत्या राखी द्रोपती, दुसासण री वार ॥ ४ ॥

1-हिरणा कू जब भार परी, बधक आय घेरयो।
दान हू वा लाज राखी, बल अन फेरयो ॥ २ ॥
भगता की लाज काजे चीर हू बढायो।
मोतिय की भगति कीनी हू णपुरे आयो ॥ ३ ॥
नामदे मन भगति कीनी, नाव ल्ले तेरो।
भक्त वछळ भगति कारणि, देहर वळ फेरयो ॥ ४ ॥
मम मन अनेक तारे, कृ ण साभा गाऊ।
दुरगदास की अरदासि है, विमन दरस पाऊ ॥ ५ ॥-प्रति २२७ से।

अन्य पौराणिक और प्राचीन भक्तों के साथ उसी धरातल पर जाम्भाणी भक्तों के तथा भगवान् के विभिन्न कृत्यों के साथ उसी श्रद्धा-भक्ति से जाम्भोजी के कार्यों के उल्लेख अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। ये जाम्भोजी और विष्णोई सम्प्रदाय की चतुर्दिक फैलती हुई कीर्ति, प्रभाव और प्रतिष्ठि के निसंदिग्ध प्रमाण हैं। कहना न होगा कि सम्प्रदाय को सजीवित रखने में ऐसी रचनाओं का बहुत बड़ा योग है।

कवि की एक और विशेषता यह है कि वह प्रत्येक हरजस के अन्त में उसके वर्ण्य-विषय का सार रूप में उल्लेख कर देता है। इस सम्बन्ध में दूसरे हरजस का अन्तिम छन्द देखा जा सकता है —

केता प्रवाड़ा तं किया, गुर कहँत न पाऊं सार।
सुरग कहे दीदार द्यो, गुर तूठां लाभे पार॥ ८॥

६४ किसोर (अनुमानत विक्रम संवत १६३०-१७३०)

प्रति संख्या १५२ और २०७ में मेहोजी की रामायण में यत्र-तत्र केसोदास गोदारा, सुरजनदास पूनिया, किसोर तथा अज्ञात कवियों के फुटकर छन्द भी लिपिबद्ध मिलते हैं। नाम वाले सभी कवि विष्णोई हैं, अतः अज्ञात कवि कृत कवित्त और गीत भी विष्णोई कवियों की रचना होनी चाहिए। विष्णोई-राम-काव्य-कृति में अन्य विष्णोई कवियों के एतद् विषयक छन्दों को विष्णोई लिपिकारों द्वारा सम्मिलित किया जाना सहज सम्भव है। प्रति संख्या २०१ में फोलियो १७७-१७९ पर "सवइया फुटगर" के अन्तर्गत राम-चरित के विभिन्न प्रसंगों से सम्बन्धित १९ छन्द मिलते हैं, जिनमें उल्लिखित ज्ञात कवियों के साथ अज्ञात कवियों के ६ कवित्त तथा ४ गीत भी सम्मिलित हैं। इस प्रति में पृथक रूप से आरम्भ करके दी गई कवित्त, गीतों की छन्द संख्या तथा ४ गीतों में से एक[1] को रामायण के अन्त में (प्रति संख्या १५२, २०७) देने से अनुमान होता है कि ये कवित्त एवं गीत दो भिन्न कवियों की रचनाएँ हैं।

इन १९ "सवइयों" में आरम्भ के तीन छन्द किसोर कवि के होने चाहिएँ, क्योंकि तीसरे[2] में उसका नामोल्लेख है।

१-लंक रे कांगरे वांदरा लू बिया, कीमती कोट नैं हाथ कीयो।
तीसरी पोळि सू रोळि मातीहरी, लायणे चोट सू कोट लीयो॥ १॥
दल राघवरा घेरि सिरि आणिया, असर रा आकरा वार सारी।
देवरा अंमरा ग्राम ज्यों उलट्या, लायणो लोपियो सग सारी॥ २॥
चादणी चौक मां चत्रभुज औसर्‌यो, हदळां चदळा रंग रातो।
हुकळा बुकळा चालिया वाहळा, महपति आवला बुध मातो॥ ३॥

२-राणीजी कहत राण, पीव क्यों न छाडो आण,
सारका क्वार एक धामक पठाया है।
गुनी तो गुनेस सा कव तो है सारद सा,
देवो राजा रूप एक अंस सा भूप आया है।　　　　(शेषांश आगे है

ये तीनों (किशोर और दो अज्ञात) कवि मोटे रूप से केसोदासजी गोदारा (संवत् १६३०-१७३६) के समकालीन होने चाहिएँ। आगे इनके विषय में क्रमशः लिखा जा रहा है।

किशोर के उपर्युक्त तीनों छन्दों में रावण द्वारा सीता-हरण और उससे जटायु का द्व, हनुमान का अशोक-वन विध्वंस तथा रावण को दी गई मन्दोदरी की "सीख" का वर्णन है।

प्रति संख्या २०१ में फोलियो १९७-२०० पर "केसवजी के सवइये" के अन्तर्गत ईश्वर कवियों के छन्दों में इस कवि के भी चार "सवए" हैं,[1] जिनमें मनार की स्वरता, हरिगुणगान[2] और जम्म-महिमा[3] का वर्णन है।

इनमें कवि की हरिभक्ति-भावना सहज रूप से मुखरित हुई है। प्रायः सभी छन्दों में निर्निरोध के कारण छन्दोभंग है। इनकी भाषा मरुप्रदेश में प्रचलित पिंगल है। स्वतन्त्र रूप में कवि की कोई रचना प्राप्त नहीं है।

६५ कवि - अज्ञात (विक्रम १७ वीं शताब्दी) गीत-४।

गीतों में राम की सेना और लंका-युद्ध[4] का चित्ताकर्षक जीवन्त वर्णन किया गया

बाका पूठि वा पहार सी, लंगूर घोरी धारती,
मान भर्यो समर पाँड आप ही उपाया है।
कहत किसोर लंक सारी पड्यो सोर,
दुरति उपाड्यो वाग देप ही दिपाया है ॥ ३ ॥

1-प्रति संख्या ४० में भी इनमें से जाम्भोजी के जन्म-सम्बन्धी एक छन्द है।

2-नार नूं सिंगारि पोरि हीर चीर पहर कहा, मोतियो जराव रे।
कामनी कुंगन की भावनी के मुंह देपि कहा भूलो बावरे।
धुव के स धोल हर हत्व न लाव वार भोस का सा मोती अंसी तरी भाव रे।
कहत किसोर और छोडि धुंध फुंधवाव गोंम्यदं गुन गाव रे ॥ २५ ॥-प्रति २०१।

3-गोम्यंद कूं नवाऊ सीस, बिसन बिसोवा बीस,
दवाला के वारवे कूं, आयो गुर राय रे।
पडक की माळ जाळ छोडिया सभ जंजाल,
भज तजि गुर मजी घणी पूरो ध्याव रे।
हरिख न भ्रमचार, मन तन छाड मार,
गोम्यद कूं गाव रे।
कहत किसोर और जरव न कीज जोर,
जिनि गुन ऊबरे, साईं गुन गाव रे ॥ -प्रति २०१।

4-लंका रा बाहर श्रीरामजी आविया, नाळि गोळा सर वाण वाहे।
कपि प्रकार लखण राघव चढ्या, पेट पुरसाण करि पौळि ढाहे ॥ १ ॥
पाडि वा नीसरयो घम्भीर चौहट, रांम रा वागिया रोळ वाव।
देख वरण बोगता भोगता, जोगणी जग भी वरिग भावें ॥ २ ॥
सबर मगर घुंदर साविडो, सीस दसांरितो रिण सारी।
हारूओ माम न दरर बीजळी, उपड्यो माम दीव कुंण कारी ॥ ३ ॥

है।¹ मन्दोदरी के मुख से रावण को समझाने के लिए राम की सेना का यह वर्णन भी विशेष प्रभावशाली है — ।

पदम अढार रीछ रिण वांदर इळा किळय बळ बदळ बहे जाडो।
अनत अबीह असर सिर उठियो, अरडियो आप हुय कु ण आडो ॥ १ ॥
सळवळे सेळ जिम भाद्रव बीजळी, धरहर मेर जिम इ द्र गाजे।
लापणो कोपियो लक गढ पालट, धड़हड़ कोट ज्यों धु स वाज ॥ २ ॥
लांघियो समद नै सेन याम उतरी, फरहर फौज जिम धरणी धूज।
इळा असमांण विच इ द सो ओधड़्यो, चीस चिघाड पाहाड गू जे ॥ ३ ॥
सांम्यजो सामियो साथ सोह सूरियो, फेरयो वधर्या धरि भेद दीज।
कहै मदोयरी छाडि रढ रायणां, जानकी देह गढ लक लीज ॥ ४ ॥—प्रति २०१ से।

निखरी हुई भाषा में सहज प्रवाह और प्रसगानुकूल ध्वन्यात्मक शब्द-योजना के कारण एतद्विषयक गीतों में इनका विशेष महत्त्व है।

६६ कवि - अज्ञात (विक्रम १७ वीं शताब्दी) कवित्त।

६ कवित्तों में हनुमानजी, उनकी वीरता और अशोक बाग-विध्वस तथा लका में रामदल, उसके प्रभाव और युद्ध का प्रवाहपूर्ण वर्णन किया गया है। उदाहरण के लिए माली के कथन और रावण-मन्दोदरी के सवाद स्वरूप निम्नलिखित छन्द द्रष्टव्य हैं¹। छन्दोभग इसमें भी यत्र-तत्र है। इनकी उपमाएँ तो बहुत ही सुन्दर हैं।

१–क–छाटो घणो छछट पुरिप पुरिषा फुरताळो।
जुगति जोवता जवान, अबीह जिसो मनि बाळो।
लावो घणो लगूर, कांया न कथ भुचगो।
दीसतो विकट विट रूप दिस चचळ चतरगो।
भिळ जो भिळ वाडी भिळ, कूक जी कूक माळी कहै।
घरि न छाज राम घरणि जिण र इसो भीछ बाहर वहै ॥–प्रति सख्या १५२, २०७।
ख–मछ हुव ममत, प्राणी को पार न लभ।
पड हुव परचड, गरगभ जळ गभ।
जोरि हुव भू भार, मल ज्यों जुड अपाड।
दुग दुणागिर थरहर, जा एक एक न पाड।
घर धूजी तर कपिया अरि सू जाय अरियण अड।
राण कहै राणी सु णो, एम कोट यो धडहडे।
आप चड उगरीम, साथि सुगरीम सजोए।
कोपि कोपि तर होय, जोरि लका दिस जोए।
लील निपट करि जोरि, सेन ले चढ्यो अपरती।
हणवत हाक हकारि, धीर नही मल धरती।
पायक पदम अठार सू, चाल करे लछमण चढ्यो।
राण सु णो राणी कहै, एम कोट यो धडहडै ॥

६७ काळू : (अनुमानित सवत् १६६७–१७३०)

राजा भरथरी से सम्बन्धित इनकी दो साखियाँ मिलती हैं —

१–सुणि राजा रांणी, कहे, वेगा महलि पधारो।
जिणि जोगी भरमाइया, ताकूं सग निवारो ॥ टेक[1] ॥

राग 'रामगिरी' मे गेय यह १७ छन्दो की रचना है।

२–सोदागर सोड मिल्या, जोण लोक वटाऊ रे।
दीठा वनफळ देखि करि, हम भए वाट वटाऊ रे[2] ॥१॥

२१ छन्दो की यह साखी राग 'जतश्री' और 'मलार मे गेय है, बीच मे दो 'श्लोक'[3] हैं, जो एक प्रकार से दोहे ही हैं।

प्रथम साखी भरथरी और उसकी राणियों के सवाद रूप मे है। राजा के जोग लेने पर राणियाँ अनक तक, दुखाभिव्यक्ति और अनुनय–विनय से उसको वापिस महल में चलने की प्रार्थना करती हैं। भरथरी निममता पूर्वक उनकी बातो का उत्तर देते हुए अपने निश्चय पर हा दृढ़ रहता है, उस पर कोई प्रभाव नहीं पडता। भाग्य-विडम्बना से, भिन्न–भिन्न बन्धनों में बधे, एक दूसरे के सामान्य मार्ग के सर्वथा प्रतिकूल, भोग और जोग के पथिक–राणी और राजा की आशा–आकांक्षाओं और उद्देश्य का दोनो के सवाद मे मार्मिक चित्रण कवि ने किया है। घरेलू वातावरण की पीठिका पर बोलचाल की भाषा में रचित यह साखी नाटकीय गुणों से सुशोभित है। इसकी समग्रता में एक विवशता मिश्रित करुणा–पूरित भाव पाठक के मन में उद्बुद्ध होता है। उल्लेखनीय है कि राणी के तर्क का उत्तर न बन पड़ने पर राजा अन्त में भाग्यवाद का ही सहारा लेता है। राणी की, बोल तीखे होते हुए भी

१–प्रति सख्या ७८, २०१, २७६, २७७। प्रति सख्या २०१ मे इसके कुल ७ छन्द लिपिबद्ध हैं, जिनमें से यह एक छन्द उपयुक्त १७ मे नहीं है —
मवगा छोडि काचळी, भींते छोड्यो लेवो।
राज तज्यो राजा भरथरी, भाव सो देहो ॥ ७ ॥
इस प्रति के शेष छहो छन्दो मे भी व्यतिक्रम है।

२–प्रति सख्या २०१। इसमे उल्लिखित दोनो साखियो को एक साखी माना गया है। दोनों की पृथक्–पृथक् छन्द-सख्या न देकर क्रमश एक साथ ही दी गई है, किन्तु विभिन्न राग-निर्देश और किंचित विषय-भिन्नता के कारण ये दो मानी जानी चाहिएँ। पहली साखी अन्य प्रतियो में पृथक् रूप से लिपिबद्ध है ही। सम्भवत भरथरी से सम्बन्धित और एक ही कवि की कृति होने के कारण ऐसा किया गया है। दूसरी साखी के छन्दों में भी व्यतिक्रम लगता है। इस कारण, पाठ–परम्परा की दृष्टि से भी कवि का उपयुक्त समय अनुमित होता है।

३–कुचीन कथा कुचील पथ, रूखा ठाढा भोजन।
वरस वरस निरदई मेहा, भरथरी भए निहचल ॥ १॥
वन वाघ गुफा सरप, पर्वत ते सिला निगमग।
वरसि रे निरदई मेहा, भरथरी भने निहचल ॥ २ ॥

विवशता इनमें स्पष्ट है। साखी नीचे उद्धृत की जाती है[1]।

दूसरी मे राजा के जोगी बनकर जाने, मार्ग में उसको भय लोगों और राजा विक्रमादित्य के समझाने, अन्त में उस पर आई विभिन्न आपत्तियों तथा उसका दृढ़ता-पूर्वक वीरता कर जन्म सुधारने का भावभरा वर्णन है[2]।

एतद् विषयक राजस्थानी काव्य-परम्परा में कवि की दोनों लघु-कृतियां अनेक दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण हैं। गोपीचन्द नामक प्रकाशित काव्य मे (राजस्थान साहित्य समिति, बिसाऊ, राजस्थान) हरिराम की साखी की भांति काळू की रचनाओं को भी प्रकारान्तर से सन्निविष्ट किया गया लगता है।

१-कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं :—

राज पाट घोडा तज्या, छाडी सब माया।
महल तज्या राजा भरथरी, भसमी चित लाया॥ १॥
पान फूल रांण्या तज्या, सोळे सिणगारा।
अबला भूरै नाथजी, कछु करो विचारा॥ २॥
हम जगळ वासा किया, अब क्या परमोधो।
राजकवर कळि मे घणा, नीका करि सोधो॥ ३॥
हीरा वरागर घणा, तिय भोग विलासा॥
किहिं कारण राजा भरथरी तुम भये उदासा॥ ४॥
रांणीं भूर सात स, सब कर विलापा।
हथलेवा री गुनहैगार, कोई पूरबलो पापा॥ ५॥
भोळे भुगती कामणी, अब करो सबूरी।
हमें समझाया नाथजी, अब किया हजूरी॥ ६॥
पहली जोगी क्यूं न भया अब भया बटाऊ।
परणि पाप काहे लिया, विधि वोई नाऊ॥ ७॥
मति झूरो हे कामणी, मति करो अदोहा।
लिषणहार यूं हा लिष्या, हम तुम इहै बिछोहा॥ ८॥
जननी जण न वार वार, थिर रहै न काया।
जा कारण हे कामणी हम भुगता नहीं माया॥ ९॥

२-कतिपय छन्द इस प्रकार हैं —

राज तज्यो वनवासियो, मन त छाडी मेरा रे।
सबद सुणे सुणि सरवणा, राजा वीर विक्रमाजित आया रे॥ ६॥
जळणीं नीर निवाण ज्यों, भल भल मोती छूटा रे।
वीर कर छ वीनती, राजा चलो अपूठा रे॥ ७॥
इण परि बोल राजा भरथरी, हरि का नाव पियारा रे।
न हू काहू का बधवा, न को वीर हमारा रे॥ ८॥
जळणी जळम न वीसर, अछ धार चुंधाई रे।
भीड पड जदि बाहड जामणि जायां माई रे॥ ९॥
साच सबद काळू कहै, अछ ग्यान विचारी रे।
जोगी हुवो राजा भरथरी, हरि भज जळम सुधारी रे॥ २१॥

६८ केसोदासजी गोदारा (विक्रम संवत १६३०-१७३६)

जीवनवृत्त : केसोजी नोखा (बीकानेर) के पास माढिया गाव के गोदारा जाति के थे और कुमारावस्था म ही वैराग्य-भाव से वील्होजी के शिष्य होकर साधु बन गए थे। वील्होजी के सात प्रमुख शिष्यों मे इनकी तथा सुरजनजी की ही सर्वाधिक मान्यता हुई। अवस्था मे ये सुरजनजी से बडे बताए जाते हैं, इस कारण इनका जन्म संवत् १६३० के आसपास अनुमित है। संवत् १७३६ मे माढिया गाव मे ही इनका स्वर्गवास हुआ। परमानन्दजी वणियाळ ने इनका देहान्त संवत १७३५ मे होना लिखा है,[1] जो तत्कालीन मारवाड मे प्रचलित सावन बदि १ से गिने जाने वाले संवत्[2] के अनुसार दिया गया प्रतीत होता है। पचाग के अनुसार यह संवत १७३६ होगा। केसोजी ने 'कथा अघलेखा की' संवत १७३६ के चैत सुदि १४ को बीकानेर म पूर्ण की थी[3]। स्पष्ट है कि उनका स्वर्गवास इस तिथि के पश्चात ही किसी समय हुआ होगा।

वील्होजी के आदेश से केसोजी ने विश्नोई सम्प्रदाय और समाज के सर्वांगीण विकास हेतु दो महान् कार्य किए-एक तो विभिन्न साथरियो और स्थानो की सुव्यवस्था और दूसरा पंचायत-संगठन सम्बन्धी। इनका उल्लेख अन्यत्र कर आए हैं (देखें-पृष्ठ ४४०-४४१)। साहित्य-निर्माण के अतिरिक्त केसोजी के ये कार्य युगान्तरकारी थे। इससे समाज म उनकी कीर्ति चिरस्थायी हो गई।

ये अनुभव-ज्ञानी, बहुश्रुत परम-सिद्ध और गायन-विद्या मे अत्यन्त निपुण थे। भ्रमणशील साधु होने से ये एक स्थान पर जम कर अधिक समय तक कभी नही रहे। इन योजनाओं को कार्य रूप मे परिणत करने के कारण भी ऐसा सम्भव नही हो सका। इनके शिष्यों म, लिपिबद्ध रूप मे केवल दो की ही परम्परा मिलती है, और वह भी पूर्ण नही है (द्रष्टव्य परिशिष्ट में-'साधु-परम्परा')।

'भक्तमाळ' में आलमजी के साथ इनको कथा-कीर्तन बखान-गान करने वालों मे प्रमुख गिनाया है। सुरजनजी ने इनको 'कथा-काव्य' का विशेष कवि बताया है —'केसो कथा अरथ न करमू, तप सूजो आलमू तांति'। हीरानंद के 'हिंडोलणो' मे अन्य विश्नोई सन्तों के साथ इनका नामोल्लेख है। साहबरामजी ने प्रसंगवश "जम्भसार" (प्रति संख्या ११) के २३ वें प्रकरण म सुरजनजी के ठीक बाद केसोजी की कथा भी दी है। इससे केसोजी के उल्लिखित गुणों की पुष्टि के संकेत मिलते हैं,[4] साथ ही कतिपय नवीन बातो

१- संमत १७३५ माढीय गाम केसोजी पुज्या"- 'साका', प्रति २०१, फोलियो ५४६ ४७।
२-आसोपा मारवाड का मूल इतिहास, पृष्ठ २२४-२२५, पादटिप्पणी, जोधपुर।
३ सतरा स सम छतीसो, जुग मा सुण साध जगीसो।
सम रूपा नपत उचारी, गढ बीकानेर विचारी ॥१३६॥
चत चांदण पख चवीज, तिथि चवदसि ग्यान गिणीज।
गिणि गुर परसादे गाई, केस कही कथा सुणाई ॥१३८॥
-प्रति २०१, फोलियो २६०।
४-अब केसव की कथा बखानौं, केसव तो केसव सम जानौं।
कसवे भक्त मर्ए प्रिय जमा, जस मिले तेहि कहा अचमा ॥ (शेषांश आगे देखें)

का भी पता चलता है, जिनका सारांश इस प्रकार है :—

'एक बार ये रामड़ावास मे गए। वहां इनके दर्शनार्थ जोधपुर के महाराजा जसवत सिंहजी भी आए। उनके अनुरोध से कवि के प्रार्थना करने पर वर्षा हुई। महाराजा ने ६०० बीघा धरती "डोली" मे दी और सातै गुनाह माफ किए। इन्होने अनेक स्थानों पर भ्रमण किया, बहुत से राजा, खान और सुलतानो को 'परचाया" तथा रामड़ावास मे आकर विवाह किया जिससे इनके ३ बेटियाँ और २ बेटे हुए'—जम्भसार, प्रकरण २३, पत्र ३१-३२।

साहबरामजी के इस कथन की जांच का कोई साधन हमारे पास नहीं है। इससे उनकी सिद्धि, व्यापक प्रभाव और विस्तृत भ्रमण की पुष्टि अवश्य होती है। उनके विवाह और सतति की बात सर्वथा गलत और निराधार है। वर्तमान मे, सर्वत्र उनका आजीवन ब्रह्मचारी और साधु रहना ही प्रसिद्ध है। गोदारो तथा साधुओ मे ऐसी किसी भी प्रकार की बात प्रचलित नही है और न ही ऐसा कोई उल्लेख गोदारों के भाटों की बहियो में है।

रचनाएं —केसोजी की निम्नलिखित रचनाएँ प्राप्त हुई हैं —

१-साखियाँ—१९।

२-हरजस—१३।

३-कवित्त—८१ (इनमे कुछ कु डलियाँ, दोहे, डिंगल गीत और सवए भी सम्मिलित हैं)।

४-सवए—२७।

५-चन्द्रायणा-८५ और ४ दोहे।

६-दूहा—११६।

७-स्तुति अवतार की-१३ सोरठे।

८-दस अवतार का छन्द—११ (१० छन्द, १ कवित्त)।

९-कथा बाळलीला—६१ दोहे-चौपई।

१०-कथा ऊद अतली की—७७ दोहे-चौपई (रचनाकाल-सवत १७०६)।

११-कथा सस जोखाणी की—१४४ दोहे-चौपई।

१२-कथा मेड़तै की—१७२ दोहे-चौपई (रचनाकाल-सवत १७०६)।

१३-कथा चित्तौड की—१६८ दोहे-चौपई।

१४-कथा इसकदर की—२१५ दोहे-चौपई।

१५-कथा जतो तळाव की—८० दोहे-चौपई (रचनाकाल-सवत १७११)।

१६-कथा विगतावळी—३७४ दोहे-चौपई (रचनाकाल-सवत १७१५)।

१७-कथा लोहापागळ की-१८१ दोहे-चौपई (रचनाकाल-सवत १७३०)।

१८-पहळाद चिरत-५९६ छन्द।

१९-कथा भींव दुसासणी—६६ छन्द।

२०-कथा सुरगारोहणी—२१७ छन्द।

गाय गाय केई जन तरेऊ, जनम मरन मिट कारज सरेऊ।
गान विद्या केसव बहु करे सुन सुन जीव हजारां तरे॥

-कथा बहसोवनी—५५० छन्द ।
-कथा अघलेला की—१३६ छन्द (रचनाकाल-संवत् १७३६) ।

इनका विवेचन क्रमशः आगे किया गया है ।

(१) साखियां[1] • केसोजी की निम्नलिखित १९ साखियाँ पाई जाती हैं —

-जीव क काज जमल जाइय, कीज गुर फुरमाई । पवित १२, कणा की, राग सुहव ।
-रे मन मरा म करि मुकेरा, काया ढळली काची । ४ छन्द, छदा की ।
ओह निज तीरथ ताळवो, देह सही सति साम्य को । ४ छन्द, छदा की ।
-आपि लियो अवतार, साम्य सभरथळि आवियो । ५ छन्द, छंदा की, राग धनासी ।
-साधो सिवरो सिजणहार, पारब्रम पहली नऊ । ५ छन्द, छदा की, राग धनासी ।
६-सिवरो सिरजणहार, ज्ञाभेसर जीवा धणी । ४ छन्द, छदा की, राग धनासी ।
७ जिवडा जपि जगदीस, ज्ञाभेसर जीवा धणी । ४ छन्द, छदा की, राग धनासी ।
८-सिलह पछिम र देसि, हींवर तुरी सिलाहिसी । ४ छन्द, छदा की, राग धनासी ।
९-कळिजुगि क्रिसन पधारियो, सता करण सभाळ । ४ छन्द, छदा की ।
१०-सिवरो सिवरो सिरजणहार, कळिजुगि कायम राजा आवियो । ४ छन्द, छदा की, मारू ।
११-सिवरो सिवरो ज्ञाभेसर देव, क ळिजुगि कायम राजा आवियो । ५ छन्द, छदा की, मारू ।
१२-सति सतगुर जी साहिब सिरजण हार । पवित-१२, कणा की, राग हसो ।
१३-जा दिन सत मिल मेरा जी हो, वाज सुरगि वधाई । ४ छन्द, छदा की, राग सोरठि ।
१४ बूचो बार कोडि सू कियो वकुठे वास । १५ दोहे ।
१५-देव दया करि दाखव, पापां करण प्रछेद । २८ दोहे-चौपई ।
१६-मेळो करि मोटा धणी, गिणि तेतीसू ग्यान ।
दरसण दीज देवजी, विसन विछोहो भानि । टेक । २७ दोहे, राग सिंधु ।
१७-हटवाड हळचो मडयो, असरे दोन्हीं आण ॥ ४ दोहे, १० छन्द, राग सिंधु ।
१८ जुगि जाग्यो ज्ञांभेसर राजा, कळिजुग कायम आयो । ४ छन्द, छदा की ।
१९-रे मन रगी करि सुकरत सगी, साव सुचील बतायो । ७ छन्द, छदा की, राग सुहव ।

मोटे रूप से इन साखियों का वर्ण्य-विषय इस प्रकार है —

(क) जम्भ महिमा और स्वर्ग सुख वर्णन (साखी संख्या १, ४, ५, ६, ७, ९, १०, ११ १२, १३, १८) । इनमे अनेक प्रकार से "सृजनहार" जाम्भोजी का महिमा-गान, उनके यहाँ आने का प्रयोजन, कार्य, ज्ञानोपदेश तथा जीवन की क्षणभंगुरता और आत्मोद्धार की प्रार्थना करते हुए उनकी "फुरमाणी" पर चलने एव नाम-स्मरण करने का अनुरोध है । ऐसा करने से जीव को उसका चरम प्राप्तव्य-मोक्ष प्राप्त हो सकेगा जिसकी ओर आकर्षित करने के लिए स्वर्ग-सुख का लुभावना वर्णन कवि ने किया है । दो छन्द नीचे दिए जाते हैं[2] ।

[1] प्रति संख्या ६७, ९३, १४१; १४३, १७८; २०१, २१३, २२१, २२३, २३३, २३६, २३७, २६३, २८०, २८९, २९१, ३२१ ।

[2] स्वर्ग सोहै तु वर सुरतांण, किरिया करि सुरगे गया ।
प ति मोमिणां की पुगी आस, मोट गुर क्रोवी मया ।

(ख) मुकाम-माहात्म्य (साखी संख्या ३) "साषी मुकाम के महातम की" (-प्रति संख्या १६३) – इसमें मुकाम मन्दिर का वर्णन है। इसकी महिमा इस कारण है कि यहां सबसे बड़े देव जाम्भोजी की देह समाधिस्थ है। साखी का अन्तिम छन्द उदाहरण स्वरूप द्रष्टव्य है[1]।

(ग) मन को तत्त्वप्राप्ति के हेतु समझाना (साखी संख्या २, १९)। इन साखियों में दो बातों की ओर प्रेरित किया गया है। एक में घट में ही "अलख पुरुष" से 'लौ' लगाने और 'त्रिकुटी-तीर्थ' में "अमीरस" पीने का वर्णन है[2]। दूसरी में सतगुरु के बताए "सुकरत" का उल्लेख करते हुए उनके पालन पर बार-बार[3] जोर दिया है। कवि ने इनके द्वारा "पार पहुंचने" का मार्ग बताया है।

मया कीधी साम्य सतगुर, सुरा सरस सप सही।
वरस बारहांणी विरहणी, पुरिष अठार की वही।
जहा भोगव सजोग सरसा, जांस र रग सुहांवणां।
सुरग पहुंता मिट सासो, साध सन्त सुहावणा॥ ३॥
मुहि मुहि मेळि सुजांण, कवरा क मनि कांमणी।
वाळी काया थ इधक उजास,जाणि वादळ वळक दांवणी।
दावणी वादळ वळक, सर रग ताहू सणा।
नौरग नेवर पहरि नारी, कर मोसर अति घणा।
नाटक कुजर पहरि नारी, सरस सुदरि सोहणी।
सुर सुधरि तन चीप चचळ, महलि कांमणी मोहणी॥ ४॥ –साखी ११।

१–कळी विराज कागरा, सोभा मुगट वखाणिय।
रूपावळि रळि आव णी, साम सही सति जाणिय।
जाणिय जा साम सतगुर, पात जग जा पपणा।
इडो त मुकटि मुकाम सोहै, देव दरग देपणा।
कळस सीरि अमूळ सोहै, भात हरि मेळी मिळी।
देषि सोभा कहै केसो, कांगरा सोहै कळी॥ ४॥ –साखी ३, प्रति २०१।

२–रे मन मेरा न करि मुकेरा, काया ढळनी काची।
निरति सुरति लिव लाय पियारा, सबद अनाहद राची।
तन मां तीरथ न्हाय त्रवीणी, गिगन गुफा करि डेरा।
गुर प्रसाद रही मन उनमन, ऊ समझी मन मेरा॥ १॥
रे मन हसा परहरि परससा, सांसो सोग न कीजे।
त्रकटी तीरथ मनवा काछ, महा अमीरस पीजे।
वडपण माण वडाई मेटो, वडपण गाल्यो वसा।
अंतरि ध्यान उलटि धुनि धरियै, करि हरि सू हित हसा॥ २॥

३–रे मन राजा न करि अकाजा, काया गढ छ काचो।
झूठी वातं कहै मत काई, सबकि र बोली साचो।
सुकरत साथि करो क्यों सबळौ जब लग पिंजर साजा।
भवसागर मा भूळि न भूली, मूढ मुगध मन राजा॥ २॥
रे मन भोळा तजि लाभ हिलोळा, डीभ किय दुष पावो।
एकाएकी रहो निरतर, सहजि समाधि लगावौ।
सतगुर सिवरया सासो भाज, लाभै सुरग हिंडोळा।
भजन किया भोवसागर तरिय, भेद सुणी मन भोळा॥ ३॥

(घ) बलिदान की– "खड़ाणे की साखियाँ" (साखी सख्या १४, १५, १६, १७) इन साखियों मे विभिन्न कारणा से विष्णोई लोगा के बलिदान होने की घटनाओ का प्रभावशाली वर्णन है।

(१) साखी १४ – बूचा एचरा मेडता परगने के पोलावास गाँव का रहने वाला था। इस गाव से तीन कोस दक्षिण की ओर स्थित राजोद गाव के मेडतिया ठाकुर ने पोलावास के जगल से होली जलाने के लिए खेजडी वृक्ष कटवा लिए। इसकी खबर होने पर आसपास के विष्णोई राजोद मे एकत्र हुए। प्रतिवाद स्वरूप बूचोजी ने अपने प्राण देने का सकल्प किया और रतनोजी से कहकर तलवार से अपना सिर कटवाया। यह घटना सवत १७०० के चैत वदि तीज को हुई थी[1]। रचना के प्रारम्भ म कवि ने पोलावास के वन और वृक्षो सम्बन्धी विष्णोइयो की आन का सुन्दर वर्णन किया है। कतिपय पक्तियाँ नीचे दी गई हैं[2]।

(२) साखी १५ – इसमे "गगापार के"– कालपी और अन्य स्थानो के १४ विष्णोई स्त्री पुरुषो का जाम्भोळाव पर स्वर्ग प्राप्ति की आशा से स्वेच्छा से अपने सिर कटवाने का उल्लेख किया है। इनके नाम क्रमश इस प्रकार हैं – फूलवो, मिठिया, रूपो, षडगो, प्रेमा, भगिया, खेमो, भावती, रमलो, नारायण, सुखो, परमू, दुरगो और खोजो। उनके कहने पर राऊ ने तलवार से उनके सिर काटे थे। यह "मरणा" सवत १७१० के जेठ वदि ११ को हुआ था। कतिपय छन्द द्रष्टव्य हैं[3]।

१-हसत सपत बो तीज दिन, होळी मगळचारि।
करि सुकरम सुरगे गयो, केसो कहै विचारि ॥ १५ ॥
इसमे यद्यपि सवत नही दिया गया है तथापि १७०० ही प्रसिद्ध है। स्वामी ब्रह्मानन्दजी का भी ऐसा ही कथन है – देखें– "साखी-सग्रह प्रकाश", पृष्ठ ७२-७६, प्रथम सस्करण, ११ अक्टूबर सन १९१४।

२-मेड्ताटी मा मानिय, परगट पोलावास।
जिण नगरी विसनोइ वस, रूपा तणो निवास ॥ २ ॥
सर पर नांवा सुहावणा तर रहिया घर छाय।
वन विगताळा रापिया, मेडतावाटी मझारि ॥ ३ ॥
जाहा दीठो जा कह्यो, वनरावन उणहारि।
प्रम गऊ देवजी षेजडी, तुळछी अै ततसारि ॥ ४ ॥
राख विसनोई षेजडी, जै चाल्ै गुर राह।
राय रपाव तो रहै, का पण पाळ पतिसाह ॥ ५ ॥

३-दुर्जल क मिठिया षडी, माड्यो कध करारि।
राऊ षडग समाहियो, तनि बूही तरवारि ॥ १० ॥
सतरा स दसहोतर, तिथि ग्यारसि वदि जेठ।
वड तीरथि मरणों हुवो, पूगी माय सहेट ॥ २७ ॥
वागड मनवज काळपी, सवळी सार रीति।
राप सिन्ग तळाव सू घट नहो परतीति ॥ २ ॥

(शेषांश आगे देखें)

(३) साखी १६ – (*'साखी खडाणे की'– प्रति सख्या २२१*) – इसम सवन १५६३ के मागशीप वदि नवमी को लालासर मे जाम्भोजी के वकुण्ठवास का समाचार जान कर अपने प्राण त्यागने वाले अनेक विष्णोई भक्ता का नामोल्लख किया गया है[1] ।

(४) साखी १७ – इसम कापरडा के मेले मे सवत् १७०० के चत सुदि ११, मगनवार के दिन घवा गाव के विष्णोई रामू खोड के "दाण" के बदले बलिदान होने का वणन है। (विशेष द्रष्टव्य– "रामू खोड", कवि सख्या ७२)।

(ड) कल्कि अवतार – एक साखी (सख्या ८) मे इसका सुन्दर वर्णन किया गया है, जिसके उदाहरण स्वरूप एक छन्द देखा जा सकता है[2] ।

अनेक कारणो से केसोजी की साखियाँ महत्त्वपूर्ण हैं, जिनकी चर्चा ऊपर की गई है।

(२) हरजस[3] केसोजी के १३ हरजस प्राप्त हैं, जिनमे आठवा "जांगडो" है। इनकी "टेक" की पक्तियाँ नीचे दी जाती हैं –

१–असा ध्यान हरजी सू धरै, गग जमन विच आसण कर।

–५ छन्द, *राग विलावल (भरू मी,*

२–सोदागर सोदो कर भाई, इणि सोद भाई मूलि न आई॥

–५ छन्द, राग विलावल (भैरू मी,

३–खांने जाद खुदाय का तखय बदा तेरा।

खळ मेटो करि खालिस, अघ मोचो मेरा ॥१॥ ७ छन्द, राग विलावल।

सहर वस सोह काळपी, पोजो नाव कहाय।
देव दयाव सोपव, तीरथ परसण जाय॥ ३॥
कळो काळ काया तज, जह का एह आचार।
सिर दीहू केसो कहै, सुरगि गया सुविचार॥ २८॥

१–जळ विण मर ज माछळा, सारस मर स नेह।
हरि पायो हरिजण मर, दुनी तियाग देह॥ ४॥
ज्यों र पपिहो बूद विण, बाळक पयो ज माय।
तो विण जग जीवा धणी, धारा साधा असी विहाय॥ ५॥
बाळ विरध तरणी तरळ, काया तज कितान।
कुण जाणे कितना पढया, गोम्यद करिसी ग्यान॥ २३॥

२–दुल दुल चढिसी देव, जुध करिसी जीवा धणी।
चीण म चोण कटक, फोजा फरवरिसी घणी।
फरवर फौजा धरणि धूज, धममाण उपरि थरहर।
पुवण सू परवत डोल छतर निकळक सिर धर।
पाच सात नव बार कोडि तेतीसू मिल।
तियारो तिणि वार सजिसी, साम्य चढिसी दुलदुल॥ ३॥

३–हरजस सख्या १ स ११ तक प्रति सख्या २०१ म तथा सख्या ११ के अतिरिक्त सब प्रति ४८, २२७ म पाए जाते हैं। इन प्रतियों के अतिरिक्त कुछ हरजस प्रति सख्या ६०, ६७, १७० और ३०३ म भी पाए जाते हैं।

४-निस वासरि निज नाव भजो मन मेरा रे । ८ छन्द, राग गवडी ।
५-तजिय अवर जजाळ, म्रभ जस गाइयै । ६ छन्द, राग गवडी ।
६-साच पियारो साम्य नैं, सिंवरो सिरजणहार ।
ज्यूँ सिंवरय सांसो मिट, आवागुवण निवारि ॥८ छन्द, राग मलार ।
७-ए रसना हरि रस न ल । २५ पक्ति, राग मलार ।
८-जागडो तीरथ वडो कियो कळि आकम, जण तारण झामेसर जाणि ।
झाभोळाय गयां रुग झडिय, पोह लहिय पारखु पिछाणि ॥ १ ॥
-६ दोहले, राग हसो ।
६-दान दुनी माहे वडो, विधि सु सुणौं वमेकि ।
करता ज्यों जपिय करन दान तणा फळ देखि ॥ १ ॥ ११ छद, राग सुहब ।
१०-आरति तेरी हो, प्रभु चिंता मेटो मेरी हो ॥ ५ छद, राग मारू ।
-दीय तळ अंधेरा, ग्यांन कथ वोहतेरा ॥ ६ छन्द, राग गवडी ।
-रे मन मोह मोटी खोडि । पक्ति ४, राग केदारो ।
-इस विथ विसन जपीज सतो, ताय जुगि जुगि जीज । ४ छन्द, राग धनाश्री ।

हरजस अध्यात्म विषयक और आत्मपरक हैं । इनमे हरिभक्ति, नाम स्मरण, इन्द्रिय-पयो स विरक्ति,[1] भीतर बाहर के विकार और प्रदर्शन त्याग (सख्या ४, ५, ७, १२), तम-निवेदन एव आत्मोद्धार के लिए प्रार्थना (३, १०), दान (६), सत्य-महिमा ६), सुकृत करने (२), कथनी को करनी मे बदलन (११), घट के भीतर परमतत्त्व को प्त करने, जीवमुक्ति पाने (१, १३) तथा जाम्भोळाव की महिमा[2] का प्रभावोत्पादक

१-पाप न करि र प्राणिया, देपि अधारि राति ।
सूर सवारो उगिसी, पति पडिसी परभाति ॥ २ ॥
वन गयद सुप लाडतो, अचगळ पेली आळि ।
काम कया ठाम्यो नही, आकम सह्यो कुपाळ ॥ ३ ॥
भुवग पतालयो नीसर, साभळि राग इलाप ।
घरि घरि हन्डायो गोडिय, पड्यो पिटार साप ॥ ४ ॥
कुवळ कळी अर केतकी, अवर सुगधो सीर ।
भुलि भुलि भुवर रस वासना अळियळ तज सरीर ॥ ५ ॥
जिभ्या रस मछळी मुवी, मयो न कीवी माठि ।
जाळ पड्यो जळ विछड्यो, मछ विकाणो हाटि ॥ ६ ॥
तन मन म प तेज करि देय रग सुरग ।
नह नजरि क कारणे, पावकि पड पतग ॥ ७ ॥
केसो तसकर तनि वस, वसि वमि कर विराव ।
पाचू पकड प्राणियो पोहच पार गिराव ॥ ८ ॥ -हरजस ४, प्रति २०१ ।
२-गहमह मेळ हुई गुर वायक, सर काठ सोहैं सुघट ।
ववमु तुरी अर ऊठ अटअर नर नारी मिळिया निपट ॥ २ ॥
वाना भाय हुवा सह भेळा, चळ चोळा वर मगळ चार ।
तट तीरथि इम सोभै सुदरि, तरणी तीज रम तिह वार ॥ ३ ॥
तरगम तीर तरवारि कटारी करि क लास जोध क्वाण ।
ढळक ढाल मळहळे भाला, फूलरि भीलता फिर जवान ॥ ४ ॥ (नेपाय आगे देखें)

भावना व्यक्त जाती है[1] । पत्नी के रूखे उत्तर पर भगत म उसको मनाने पर ही सन्तो करना पड़ता है[2] ।

(ङ) 'ममती-तोकी का झूला' में मरीमची पुरुष और उसकी स्त्री का सवा' जिसमें उसकी दशा का यथातथ्य एवं सजीव वर्णन किया गया है[3] ।

(च) 'त्रिया-लक्षण' में गुणहीन और गुणवती स्त्रियों के लक्षणों का व वर्णन है[4] ।

तू गांव पो गाव म, मोरो तू ता जीव मुनि ।
मरल दीय मोळभो, तू पाल्यो सू रती पीगी ॥ ४८ ॥
प्रथम पाव तो एह, भाव करि भगत पाजीनू ।
दूजा पाव तो एह, भरच उपारो दीजू ।
तीजा पाव तो एह, ताजाय गिवांलि टरंजू ।
चौथा पाव तो एह, होम करि जिवा जगीनू ।
पगी विष्णी पांगळो, कहि गावे करो करि घनू ।
सदि कहे रे सू वदा गाडी ही रंग्यों भळू ॥ ४९ ॥
१–म करि माया सू मोह और मगळा सू तोडो ।
म्हारो जांगे सागो जोय, जैल विष सदम जोरो ।
मडव घरे म र न भव्यो, मन पांगी तन रव्यो ।
दही घृत विग करि गिण्यो, दूध दोर ही घव्यो ।
भूख दुख दोर दुवट, दुवि रहियो तन ही मरो ।
सू म कहे माया गुणी, मत मोनू भगड़ो करो ॥ ५४ ॥
२–सू व सिपारो एकलो हाथ ता गयो ज हारो ।
यार यार पांय पिळपिळे, माथि विण परो मधीरो ।
घर मगळे पावर पवो, रुढ मा माहें रोव ।
सघ रही मुह परि, सूव सनमुखो न जोव ।
निरधारो रहियो निघ्र, विरचि दिया सघ येकलो ।
सघ कहे सालच न करि सूव निधारो एकलो ॥ ५५ ॥
३–कामणि पूछे कत ताम नायो ताकता ।
तुगी वरती ताम, जाम आयो भाकता ।
आधि नहीं उघाड़ै व्यांत करि गात पु माथ ।
सर कठ नाही साद, वाव भूकणी वजाव ।
मुख भणणाटो माथिया वर मुहड पांणी वहै ।
सास उघाडो सू पिया, भेष पाघ कामणि कहै ॥ ६५ ॥
गयो गात गळ मास मास भगी गुण गोयो ।
गई प्रीति पदमणी, मुख पूणी वडि रोयो ।
गयो सील सतोष, गयो ईमाण अरथी ।
गई सादि पारेप, अति रह्यो दालिद्र सथि ।
उडि गय होर उदिम लियो तेणि भांण छूटी भपा ।
जिणि काजि राजि पीया जहर, गळळी संगि एता गया ॥ ६८ ॥
४–मुध जका मति हीण लपण लोतरा विहूणी ।
कद न फिरता गही, फिर अलवू बोणी ।
हाथ न लेई हालती, चालती लावण धीस ।
(श्राय पहील) जाइय, नारि सदि भीणे दीस ।   (शेषांश आगे देखें)

(४) 'सवए' विभिन्न प्रतियों में यत्र-तत्र लिपिबद्ध केसोजी के २७ 'सवैए' मिलते हैं[1]। प्राय सभी म पंक्तियों की घट-बढ, व्यतिक्रम, यति-भंग, वर्ण या शब्द-त्रुटि आदि किसी न किसी रूप म विद्यमान हैं। ये मुख्यत निम्नलिखित तीन विषयों पर लिखे गए हैं –

क-आध्यात्मिक इनमें हरिमहिमा और नाम-स्मरण, जरा-काल-प्रबलता, सासारिक-माया-मोह की असारता, करणीय कृत्य, आत्मनिवदन,[2] नीति आदि का वर्णन करते हुए भावभरी चेतावनी दी गई है[3]।

ख-जाम्भाजी की बाललीला का विविध प्रकार से ७ छन्दों में श्रद्धा-भक्ति युक्त चित्रण किया गया है, जिनमें यह छन्द तो बहुत ही प्रसिद्ध है। होम-समाप्ति पर इसको बोलना आवश्यक समझा जाता है —

प्रगटे जद रूप निरजन(हो) जाभेसर नाव कहावन कू ।
भगवां कपडा करि जाप जप, सभरथळ जाग जगावन कू ।
गुर ग्यान हो ध्यान को ध्यान धरैं, बहु लोकन कू समझावन कू ।
धरणी उर जध पाव न धरहू, बळ हू बळ हू इन पावन कू ॥ ८ ॥
—प्रति १९४ से।

ग-४ छन्दों म लका-दहन और युद्ध का सजीव और प्रवाहपूर्ण वर्णन किया गया है[4]।

सन्त सपाणी सा तया, पवरि पयो ऊमी पिल।
कहि केसौ सुविचारि नर, मदसूदन रूठ मिल ॥ ७८ ॥
सुक्ळीणी सुंदरि जका, आप ता रहै ज ओल्है।
वीण सु ण्यां सुप ऊपज, मधर भीणा सुर बोल।
सभा चातरि सुजाण, चालती मु नियर मोहै।
सोन जिसी सी लाकि, मभि सालू मा सोहै।
वीळक्ळत दीस वदन, आय अहळा खूजका।
कहि केसौ सुविचारि मन, सुक्ळीणी सु दरि तका ॥ ८१ ॥

1-प्रति सख्या ४०, १९४, २०१, २०७, २३०।

2-चातग मास चउ निस वासरि, तूही तूही तू जपना।
पानी बिनि प्यास मिट को कसे, धान बिना कसे धपना।
उरि म तरि भीतरि आच जर, भगवत बिना भीतरि तपना।
हरजी हरजी हरि वेर हजार, कहो एक बार केसवा अपना ॥ २४ ॥

3-देह धको कुछ न्हेह भया रे, देह मिटी तू भी मरि है।
देह की पेह भई क भई, परी क परी पल मा परि है।
तरी धोध घटी पिंड हू घटि है, फु न मोह गर्यो जिवरो गरि है।
तरो मास को वाम अरयो हिचकी, जीव अर्यो जिभिया अरि है।
पील्ग छाडि धर्यो धरती, केसौदास मन तब क्या करि है ? ॥ १२ ॥

4-चको हो रावन राय, पूछ रे पळीतो लाय,
पूत क सहाय भड, राय जोव जागी है।
कूंपियो पुवग पाय, जारियो महलि जाय
दयि सभा डरो साह, (इत उत) भागी है।
नारि तो कहै विचारि, पीव की तो भई हारि
जानकी क काजि राजि, कून लका दागी है। (शेषांश आगे देखें)

(५) पञ्चायणा (-प्रति संख्या २०१) 'पञ्चायणो ग्रन्थ' के अन्तर्गत ८५ चान्द्रायण और ४ दोहे हैं। इसमें विविध प्रकार से मनुष्य को मुक्ति-प्राप्ति की ओर उन्मुख करने का प्रयास है। प्रारम्भिक छन्द में ही इसका आभास कवि ने दिया है[1]।

'ग्रन्थ' में मुख्य रूप से निम्नलिखित विषयों पर छन्द-रचना की गई है जो पृथक प्रतीत होते हुए भी मूल मन्तव्य के स्पष्टीकरण की दृष्टि से एक-दूसरे से सम्बन्धित है।

क-मानव अवस्था -जीव के गर्भवास और जन्म-समय से आरम्भ करके बीस साल की की आयु[2] से उत्तरोत्तर प्रत्येक दशक की अवस्था का सौ साल[3] तक क्रमपूर्ण वर्णन किया गया है और इस प्रकार नाश की ओर जाती हुई जीवन-सांझ का उल्लेख करते हुए गुरु और नाम-स्मरण करने का अनुरोध किया है।

ख-जाम्भोजी रत्नों का व्यापार करने-मोक्षमार्ग बताने आए थे। अतः उनके उपदेश पालन करना चाहिए। इसी प्रसंग में कवि ने जाम्भोळाव-माहात्म्य कथन करते यहाँ पर आने वाले श्रद्धालु भक्तों का सुन्दर चित्रण किया है।

ग-संसार की नश्वरता, मृत्यु की अनिवार्यता और प्रबलता तथा दिन पर दिन खोए

कवि कहै केसोदास, अवरे भयो उजास,
लायगो सुण्यो तिलोक, लखा लाय लागी है॥ ६ ॥-प्रति २०१ से।

१-सुणियो संत सुजाण जुगति आ जीव की।
पापी न प्रतीति न भाव पीव की।
चरण अकासे ओड रसातळि सीस रे।
जहा अरज जगदीस विसोवा रे॥ १ ॥

२-वीस वरस कै वेस मिल्यो मनि मांण रे।
मगर पचीसी मांहि क जोध जवान रे।
सका कर न सोच जिसो मन सीह रे।
कहि केसो तिण हांगि क लोपी लीह रे॥ ६ ॥
तीस वरस तिसना हुई, धन कै कारणि धाय।
पूत कळत कामणि तणा पासी पहरी पाय॥ ७ ॥

३-निव वरस लिज नाव कहावै डोकरो।
छोटा टेक पाव जिसो मनि छोकरो।
महळो मन्यो विसारि उरे आछर्‌यो।
कहि केसो तज सेझ क सोव साथरो॥ १७ ॥
सौ वरसे टकराय सभा हूं टाळियो।
रंड अळीणी ठोड तहा लै राळियो।
महि मंडळ मा मीच कहैं नर काह रे।
कहि केसो उन मोत क वद व्याह रे॥ १८ ॥
सुद्यो थकै सभाळि निरंजण नांव रे।
निस पहुचली आय न सूझ गाव रे।
नीया अतव हीण बाहत नर भूरि है।
हरि हा, केसो पिसण घणा पथ मांहि क पिंडो दूर है॥ ५० ॥

आयु का[1] अनेक प्रकार से अत्यन्त प्रभावोत्पादक वर्णन कवि ने किया है। संसार के माया-मोह में भ्रमित न होकर अवसर रहते जीव को चेतना चाहिए[2]।

घ-इन प्रयासों का सविस्तर वर्णन अमावस्या से प्रारम्भ करके महीने की प्रत्येक तिथि पर क्रमशः प्रासंगिक छन्दों की रचना द्वारा किया है। इनमें प्रमुख करणीय-अकरणीय कार्यों का उल्लेख है। सुदि और वदि पर लिखे दो छन्द द्रष्टव्य हैं[3]।

चान्द्रायण छन्द को भावाभिव्यक्ति का माध्यम बनाना केसोजी की विशेषता है।

(६) दूहा प्रति संख्या २०१ में 'दूहा' शीर्षक के अन्तर्गत प्राप्त ११६ दोहों में निम्नलिखित तीन विषय वर्णित हैं, जिसकी पुष्टि इनके बीच में दिए गए शीर्षकों और उनके साथ पुनः आरम्भ की गई छन्दसंख्या-क्रम से भी होती है।

क-दूहा "राग सभावची" में शेष आरम्भ के ४१ सोरठों को "जाम्भजी का दूहा" कहा जा सकता है क्योंकि प्रत्येक सोरठे के अन्त में इस शब्द का प्रयोग है, जो जाम्भोजी के लिए प्रयुक्त किया गया है। इनमें जम्भावतार-समय, स्थान, उनकी शारीरिक विशिष्टता, गुण, आने का प्रयोजन और विभिन्न कार्यों का भक्ति-भाव भरा वर्णन है। तत्कालीन मरुदेशीय लोक-चित्रण की पृष्ठभूमि पर जाम्भोजी के कार्यों का महत्त्व स्पष्टता से उभर कर सामने आया है। जाम्भोजी के प्रति असीम श्रद्धा के साथ अनाचार-घकार में पड़े, आचार-विचार हीन, कुकर्मों में रत केवल वेशभूषा प्रदर्शित करने वाले लोगों के प्रति कवि का कहीं हलका रोष और कहीं दया-दुख प्रकट हुआ है। सवेदना स्वरूप वह उनको क्षमा करने की प्रार्थना ही करता है। उदाहरणस्वरूप कतिपय छन्द द्रष्टव्य हैं[4]।

१-करि साहिब कू यादि कया ही घात है।
दिन दिन तूटै आव दिहाडा जात है।
नीरण न सूझ माथ जवर जदि आवसी।
हरि हा काया छोडि क जीव जब जावसी॥ ५०॥

२-पथीयो हुव परदेस भूले जन बावरे।
औसर चेति अपत धणी रिस धाव रे।
तर मसतग उपरि मौत क केसौ काळ रे।
सिर उपरे सतान उबगी ताळ रे॥ ४२॥

३-(क) तु वि नारायण नाव नीधु नर नेह करो।
तेरो धणौ गयो परवार क तू भी जयहै मरो।
काया थकी कमाय, पछ पछतायस्य।
हरि हा, बाध्यौ जम क साथि जमपुरि जायस्य॥ ६४॥

(ख) तु य तितप्रत ल्यौ नाव निरजण को जपो।
हुय परतर तजि पोट घालेक सू घपो।
पर्वो पवारी पेह क जीवत होय रह्यौ।
हरि हां, डावौ डाडो छोडि वड रसतै रह्यौ॥ ८०॥

४-उनवियो आसाय, धड बधे घण औवडयौ।
गह करि वूठौ ग्यान माथ सब्बदे साम्यजी॥ २३॥ (शेषांश आगे देखें)

ख-"साखी" शीर्षक के अन्तर्गत ४५ दोहों में गुरु-महिमा, सूम, साधु, दुष्ट, सत्संगति, कर्म फलभोग, संसार की असारता, नश्वरता, भ्रमत्याग, नीति-कथन आदि-आदि अनेक विषयों या विविध प्रकार से लोक-प्रचलित उक्तियों में प्रभावपूर्ण वर्णन किया है। इस सम्बन्ध में कतिपय दोहे देखे जा सकते हैं[1] ।

ग-नाटारंभडच 'नाटारंभ" के ३० दोहे पति-पत्नी के संवाद रूप में हैं। दोनों में इस बात का झगड़ा है कि पुरुष और स्त्री में कौन बड़ा है। अपने-अपने पक्ष में दोनों अनेक प्रमाण देते और तर्क-वितर्क करते हैं। अन्त में फैसला कराने के लिए व कवि के पास जाते हैं। एक बार तो वह संशय में पड़ जाता है पर अन्त में न्याय करके झगड़े का निपटारा कर देता है। संवाद की नाटकीयता विशेष रूप से आकर्षक है। कुछ

छुरिया करता छेद, मीठा गाडर मारता।
बुधर दाख्यौ भेद, त समझाया साम्यजी ॥ २० ॥
टाणै हू टळियाह इण अवसर का आदमी।
याव ते वळियाह, सीष न मानी साम्यजी ॥ २५ ॥
जडिया था जम जाळि, मृत परेते भोळव्या।
सिरजण हार सहाय, सावळ आण्या साम्यजी ॥ २६ ॥
कउवा कीर कहार, गावा मा गाडर गिणी।
अ ण जपिय उपगार, सूर सिरज्या साम्यजी ॥ २९ ॥
रग मा माड राडि, कुबधि सदा काया वस।
अ तरि सदा उजाडि, सरम नहीं जा साम्यजी ॥ ३१ ॥
विसन भगति री भति, उरि अवगण आण नही।
कुवचन ही कहियति, सुवचन बोल साम्यजी ॥ ३२ ॥
मसतगि राषि मुवाळ, पासै वाणी पाघडी।
कुजो कर कृपाळ, सुध सिर हू साम्यजी ॥ ३५ ॥
गहि गेडियो गिवार, वाने हू विरता फिर।
भीतरि सदा विकार, सुबधि न आव साम्यजी ॥ ३६ ॥
पालिक मेटो पोडि, आवा गुवण चुकाय क।
कहै केसो कर जोडि, सुरग समपो साम्यजी ॥ ४१ ॥

१-अडवो चर न चरण दूवै, माणस-की उणिहारि।
कहि केसो ओ पारिषो, सूम असो ससारि ॥ १४ ॥
कूम भ्रम की सकळो पासी पडी सरीर।
कहि केसो छूटै नही, जालिम जड्या जजीर ॥ १७ ॥
उतिम सग केसो कहै, देषि वण्या है दाव।
अग्या फळ कचा चर, धरि गिरवर सिरि पाव ॥ २४ ॥
जे पुळिया धन सापज, सु णहो फिर सो बार।
कहि केसो दीठो नही, कूकर क कोठार ॥ २७ ॥
गाय गुवाड गोरिव, जळ मिलि कियो कुसग।
कहि केसो नमळ हुवै, जळ सिळता को सग ॥ ३२ ॥
नीवो किणी चाल्यो नगरि, केसो कया मोलाय।
हाटि हाटि अवगति हुई रीतो ही उठि जाय ॥ ३५ ॥
काचो कुपो चाम को, तह मा मीन म मेप।
सिर चढि चालै साह क, सगति का फळ देप ॥ ४२ ॥

दोहे नीचे दिए जाते है[1]।

(७) स्तुति अवतार की (प्रति १९ मे गोकलजी की रचनाओ के बीच, पत्र ५–६ पर)

१२ सोरठों की इस रचना मे सृष्टि-उत्पत्ति,[2] नौ अवतार, उनका हेतु तथा नारायण-जाम्भोजी के गुण और महिमा का भक्ति-भाव पूवक वर्णन है।

(८) दस अवतार का छन्द (प्रति सख्या २०१, फोलियो २६–२७)

यह ११ छन्दों (१० इन्दव और १ कवित्त) की छोटी सी रचना है जिसमे भगवान के दस अवतार (मच्छ, कच्छ, वराह, नसिंह, वामन, परशुराम, राम-लक्षमण, कृष्ण, 'बुध' और कल्कि) और उनके प्रधान कार्यों का भक्तिभावपूवक वर्णन करते हुए कवि उनकी शरण-ग्रहण और मुक्ति-कामना करता है। नृसिहावतार पर एक छन्द इस प्रकार है—

चौथे अवतारि चहु चकि सुणियो, नारसिंघ रूपी नारायणो।
हिरणाकस हुवो हरि दोखी, भगत सताया गाढ घणो।
पहळाद उधार्यो कारज सार्यो, हिरणाकस हायल हयणो।
वरण अवतार भण जन केसौ, चित राखे चकधर चरणो॥ ४॥

अन्तिम पक्ति की पुनरावृत्ति सभी इन्दव छन्दो के अन्त मे होती है।

(९) बाळ लीला[3] (अपर नाम "कथा बाळचिरत"–प्रति सख्या १ और १२)

यह ६१ दोहे–चौपइयों की "राग हसो मे गेय छोटी सी रचना है। इसमे जाम्भोजी की बाललीला का वर्णन इस प्रकार है —

जाम्भोजी के जगल मे ही रहने और 'पाळ' (पशु) चराने के कारण लोहटजी का दुख प्रकट करना, जाम्भोजी का अपनी आज्ञा से सब पशुओ को चराना, लुकमिचौनी खेलना और पृथ्वी म चले जाना, हासा का दुख, एक मास पश्चात निकल कर अपनी माता से मिलना, थल मे ऊँटा के 'टोलो' को छुलाना, लोहटजी को वर्षा–धार से कलश भर पानी पिलाना, हल जोत कर खेती निपजाना, पीपासर के कूएँ पर अपने आदेश से पशुओ को पानी

१–म्हे हेकल ही उजळा, सूता करा न सक।
नाह विहूणी नारि न, कामणि चड कलक॥ ६॥
पर घरि पुरप ज एकलो, जाए सक न चुकि।
नारि विहूण नाह न, काढ छेडि छछकि॥ ७॥
मनि मानी परण पुरिष, एक जणी केई वीस।
भरता कही न साभल्या, एकण के दस बीस॥ १६॥
नागी अनू नुवाविया, घर तर देयो पोजि।
धारा धणी धजाडियो उणि भाणवती भोजि॥ १७॥

२–हरि होनो तिण वार, घर अबर होता नही।
त कीयो करतार, जळ पदा जीवा धणी॥ २॥
जनि सिरज्यो ससार वार किती लागी विसन।
एकण ओउकार, कमठाणा कीया विसन॥ ६॥

३–प्रति सख्या १, १२, ३६ ६८, ७१ ८१, १५४, २०१ (फोलियो २०६, २०८)।

पिलाना, राव दूदा का यह देखना, इच्छापूर्ति के लिए प्रार्थना करना, जाम्भोजी का उनको मेडता और काठ की मूठ की तलवार देना।

रचना में वर्णनात्मक ढंग से जम्भ-लीला का उल्लेख भर किया गया है। दो स्थल लोहटजी तथा हांसा का दुख और उनकी मनोदशा-वर्णन अवश्य भावपूर्ण हैं जिनमें उनका वात्सल्य प्रेम झलकता है। उदाहरणस्वरूप बालकों और हांसा की दशा का वर्णन द्रष्टव्य है[1]।

(१०) कथा ऊद अतली की[2] यह राग 'हंसो' में गेय ७७ दोहे-चौपइयों की कृति है जिसकी रचना संवत् १७०६ के भादवा बदि दशमी, मंगलवार को हुई। कतिपय प्रतियों (संख्या ३, २५ ११८) में भूल से इसके रचयिता सुरजनजी बताए गए हैं। इसमें पति-पत्नी ऊद-अतली की कथा के माध्यम से अतिथि-सत्कार और "भाव" की महत्ता बताई गई है। कवि के अनुसार भाव के अनुरूप ही धर्म, कर्म और सुख-समृद्धि की प्राप्ति होती है।

मेडतावाटी के पड़वाळो गांव में अतिथि प्रेमी ऊदो और अतली रहते थे। अधिक साधु-संतों की सेवा-भावना से वे हिंगूणियों गांव में चले आए, जहां चार घर विष्णोइयों के पहले से ही थे। यह सोच कर कि यदि पाँच भक्त आएँ, तो उनके हिस्से में एक ही आएगा, वे वहाँ से कूदिसू और तत्पश्चात जाम्भोळाव के मार्ग में स्थित एक स्थान पर जा बसे। वहां विष्णोई-'जमात' आती थी। आस-पास के अन्य लोगों की देखादेखी उनका "भाव" भी घट गया और मन कठोर हो गया। उनके लोक-दिखावे के कारण अभ्यागतों ने भी आना बन्द कर दिया। "भाव" घटते ही धन भी समाप्त हो गया। भूख से लाचार होकर उन्होंने खोदासर में खेती की, किन्तु अन्न नहीं हुआ। इस पर अतली ने जाम्भोजी से अन्न की प्रार्थना की। उन्होंने मनसापूर्ति करते हुए पारवा गांव में बसने को कहा। वहां उनके अन्न धन तो हो गया, किन्तु अतिथि एक भी नहीं आया। ऊदोजी के कारण पूछने पर जाम्भोजी बोले-अतली ने अन्न मांगा सो मैंने दिया। तुम्हारे मन में जब साधु-सत्कार का भाव था तब वे आते थे। अब धन से प्रेम है इसलिए पंथ के बहवानी हो गए हो[3]। ऊदोजी उदास हो चले आए। इस पर अतली ने जाम्भोजी से पूछा तो वही उत्तर मिला। उन्होंने धन खर्चने का निश्चय करके "गंगापार" के विष्णोइयों को भोजन का

१-दिल मा बाळक आई दया, गाढ कर हांसा प गया।
वाळक कळप हुव कसूत, घर मा पसि गयौ तो पूत ॥ २८ ॥
हांसा मनि हुई अगराय जहा तुक्यौ सा ठौड बताय।
आगो बाळक वासी माय वग करि पूछता वन माहि ॥ २९ ॥
ठीक न ठाहर काई ठोर, न का विगति नही का ठोड।
हांसा भर कर कळाप, को पुरिखलौ लागो पाप ॥ ३० ॥
पूत तणी दोरही पहार हिय वहै ज्यौं करवत धार।
मन लोच रन नाही लहैं, सुत को दुख कहि क्यों करि सहैं ॥ ३१ ॥

२-प्रति संख्या ३ १३ २५ ६८ ७१, ८१ ११८, २०१।

३-जदि थे आया पारव, धन सू प्रीति पिछाणि।
अब रलिया रोळायता सतगुर कहै सुवाणि ॥ ४७ ॥

निमंत्रण देकर अपने घर बुलाया। परीक्षार्थ जाम्भोजी भी "ढेढ" सा मला-कुचला वेश बनाकर वहां गए। अतली ने उनको भी उसी प्रेमभाव से लपसी और भरपूर घी दिया। प्रसन्न होकर जाम्भोजी ने उनको मोक्ष का वर दिया।

रचना मे छोटे-छोटे सवाद और वर्णन हैं। अतली और जाम्भोजी का सवाद तथा बूढे[1] का वर्णन विशेष रूप से उल्लेखनीय है। यत्र-तत्र सुन्दर लोक-प्रचलित उक्तियाँ तथा प्रसगानुकूल नीति-वचन[2] हैं, जिनका विशेष रूप से प्रभाव पडता है। जाम्भोजी के पास से लौट आने और अतली के पूछने पर ऊदोजी की मनोदशा का बहुत स्वाभाविक उल्लेख कवि ने किया है[3]।

(११) कथा सस जोखाणी की[4] यह राग 'हसो' मे गेय १४४ दोहे-चौपइयों की रचना है, बीच में दोहों की दो "ढाळ" भी हैं। इसमे जाम्भोजी द्वारा ससे जोखाणी के दान की परीक्षा और उसकी सेवा-भक्ति का वर्णन है।

एक समय सम्भराथळ से जाम्भोजी ने पाचू और नाथूसर गावों के बीच झीझाळा में डेरा किया। इसकी खबर होने पर स्थान-स्थान से अनेक लोग वहा दर्शनार्थ आने लगे। नाथूसर की जमात भी आई जिसका सरदार ससा था। सन्ध्या-समय ससा ने वापस जाने की 'सीख' मागी तो जाम्भोजी ने आज्ञा देते हुए घर आए को भीख के लिए मना न करने और निस्वार्थ-भाव से दान देने की बात तीन बार कही। वह बोला-मुझे वारबार क्यो कहते हैं, मैं तो ऐसा करता ही हूँ। जमात के चले जाने पर जाम्भोजी ने उसकी परीक्षा लेने का विचार किया। वेश बदल कर भिक्षा-पात्र लिए उन्होंने ससो के दरवाजे पर भीख मागी। उसकी स्त्री ने वाद-विवाद करते हुए उनको भीख तो दी ही नहीं, उलटे धक्के देकर वह पात्र भी खण्डित कर दिया। कलह होती देखकर दो स्त्रियाँ वहा आइ, एक ने 'खुरचण' और दूसरी ने दूध उनको दिया। सारी वस्ती देख कर वापस जाते समय पुन उसके घर जाकर ओढने के लिए वस्त्र मागा। ससो ने उनको टालने के लिए एक अत्यन्त जीर्ण-शीर्ण वस्त्र इस हेतु दिया।

दूसरे दिन सतगुरु की दान सबधी उपयुक्त बात का ससा ने प्रतिवाद किया, तो उन्होंने वे दोनो वस्तुएँ दिखाई। वह लज्जित होकर क्षमा-याचना करने लगा। जाम्भोजी

१-काया पलटि आयौ करतार, ढेढ की दीम उणहार।
कायम को कपड ज्म तणो छह छीद्या मला अ ति घणो॥ ६१॥
लड़थड़ियो काया लडपडी, कर काप अर काया कुडी।
तन छीना दीस दुरबळो एक छीण दूज दुबळो॥ ६२॥
२-अ न विणि अतना परहर, मात पिता सुत वीर।
भाव घटय आव भगत, दपि हुव दळगीर॥ २२॥
रळो रमण रस रूप रग, नातो नेह आचार।
अ न विणि अतना परहर, सुत मित प्रीति पियार॥ २७॥
३-सतगुर वायक समल्या, कहि अतळो सु ण आस।
बात कही न कहि सिक, उरि हुव अ मायौ सास॥ ४९॥
४-प्रति सख्या ३, २४, ६८, ६९, ८१, ११७, २०१ (फोलियो २४०, २४५), ३३०।

ने उसको विभिन्न प्रकार से लोगो की सेवा करने का उपदेश दिया जिससे उसको मोक्ष-लाभ हुआ।

केसोजी की कथाओं म यह अपेक्षाकृत प्रौढ और श्रेष्ठ रचना है। इसकी भाषा लचीली और प्रवाहमयी है। इसम तीन बातें विशेष रूप से ध्यान आकृष्ट करती हैं — (क) वर्णन, (ख) सवाद और (ग) वातावरण-चित्रण।

वर्णनों मे दो मुख्य हैं —भीकाळो मे आए लोगो का सामान्य रूप से तथा स्त्रियों का विशेष रूप से। दूसरे के अन्तगत उनके रूप, शृगार, चेष्टाओ और कार्यों का सुन्दर वर्णन है। ध्यातव्य है कि कवि के शब्दो म यह कर्ता की कला और शोभा का वर्णन है[1]।

सवाद स्वाभाविक, सटीक और प्रभावशाली हैं। इनम दो उल्लेखनीय हैं — जाम्भोजी और ससो का तथा भिखारी वेश मे जाम्भोजी और ससो की स्त्री[2] का। दूसरे मे श्रेष्ठ नाटकीय गुण हैं। उसको गाव की अन्य दो स्त्रिया द्वारा दी गई फटकार तो अत्यन्त यथाथ और चित्ताकषक है[3]।

भीकाळो के समस्त वातावरण का समग्रता मे विहगम दृष्टि से चित्रण करने का प्रयास भी कवि ने किया है। इसम भक्तिभाव भरी उस वातावरण की एक झलक दिखाई देती है। शब्द-योजना से प्रतीत होता है मानो आसपास का समस्त दृश्य सामने आ गया हो।

१–सरवतरि साहिब रहै, विसन तणो विसतार।
सोभा सिरजणहार की, करता कळा अपार॥ १६॥
२–सामि कहै सस क आय घालो भीष विसन क नाय॥ ५०॥
रूप अभावो दीस पडो, ससौ कहै अन्न फळिसो जडो। ५१॥
सस कहियो वण विचारि, सु णि करि साम्ही आई नारि॥ ५२॥
वार ढक चलि बाहरो, निरिषि कहै ऊ नारि।
पिडकी भालि र के पडो, लहणायत सौ वारि॥ ५३॥
आय उत्तर मत दियो, सु णि सतगुर आ भीष।
करि पतिरी आग कर, क्यो थोडी बोहती भीष॥ ५४॥
मोहि पाली मेल्हो मत, हू करि आयो आस।
सस को घर लाकि क, मेल्हो मत निरास॥ ५५॥
बाहरि नीसरि काम करि, किसी चलाई रीति।
पिसी आघु पिडकी न्यो आयो वको अतीत॥ ५६॥
वसती माह जे वडा, जे जुना घणि भारि।
लोग कहै ससौ को सु णि आयो आचारि॥ ५७॥
वा घका न्यि वोह सा सहै निरपि कहै ऊ नारिह।
वोह उघाड वा टक पाच पिडकी भालि॥ ६०॥
३–कामणि आई कलह सु णि, लागी करण विचार।
किटि सीरगि सम तणो किटि घर को आचार॥ ६२॥
यारो घर कहिय वडो, वड कन्यि अवतार।
पोड्यो पतर अतीत को रह कम्पण मां पार॥ ६३॥
न्या करि दोनी दोम नारि, घूळि दियो घेटी को लार॥ ६४॥

(१२) क्या मेडत की[1] राग "हूसो" मे गेय यह १७२ दोहे-चौपइयों की रचना है, जिनम ७ छन्दो की एक-एक पंक्ति त्रुटित है। इसकी रचना सवत १७०६ म हुई थी[2]। इसम राव दूदा, राव सातिल, नेतमी सोल्की और अन्य सरदारो, मल्लूखा तथा मगोवळ से सम्बंधित घटनाओ और कथाओ की पृष्ठभूमि म जाम्भोजी की महत्ता प्रदर्शित की गई है।

राव दूदा न अपने 'थटवाळों' (पशु चराने वालो) से जाम्भोजी के पास एक बछिया ले जाने को कहा। उन्होंने बाझ भस भेजी जो वहा व्याई और दूध दने लगी। इसका पता लगने पर दूदाजी न जाम्भोजी से क्षमा-याचना की।

बादशाह ने मेडता लेने के इरादे से सेना के साथ सरियाखान को वहा भेजा। लोगो ने दूदा को मेडता छोड देने की राय दी किन्तु उन्होने युद्ध किया जिसमे शाही सेना की हार हुई और सरियाखान मारा गया। जाम्भोजी ने उनको मेडता दिया था, सो लाज रखी।

अजमेर के सूबेदार मल्लूखा के सम्मुख किसी चारण ने राठोडो के भानजे टोडा के सोलंकी की प्रशसा की। शक्ति होकर खान ने टोडा को लूटा और नेतसी को अजमेर में बन्दी बना लिया। उसको छुडाने के लिए, जोधपुर के राव सातल ने जोधावत उमरावों के साथ सेना सजाकर थावळा गाव के पास वाकोळाव तालाब पर डेरा डाला। मन में चिंतित थे। उस समय जाम्भोजी थावळा मे थे। राव दूदा के कहने पर राठौड उनसे मिले और दुख-निवारण की प्रार्थना की। जाम्भोजी हिंदुओ को कोई वर देंगे,[3] यह सुन नगाडे बजाते हुए ससैन्य मल्लूखा भी उनके दर्शनार्थ वहा चला। गुरु ने राठौडो से मेल करने को कहा। खान ने जाम्भोजी के चरण-स्पर्श किए। उनके कहने से उसने नेतसी को वहा मगवा कर छोड दिया।

राव सातल ने एक पुत्र की प्रार्थना की। वे बोले—तुम्हारे पल्ले पाप न होने से किसी का लेना-देना नही, अत पुत्र नही होगा।

रिणसीसर का रावल भी युद्ध में खान की सहायतार्थ गया था। वह जाम्भोजी की शरण में आया। जाम्भोजी ने उसके भागते हुए ऊँट को 'हाथ पसार कर पकडा' ... ई 'सांढ' (ऊँटनी) के मलपूर्ण हाथों मे एक रबारी के दूध लाने पर, यह अनसुनी बात कही, खीर के लिए जमीन मे गडे हुए बर्तन और रेत में मिले हुए चावल ... यह देखकर रावल 'केश उतरवा कर' उनका शिष्य हो गया। अपनी राणिया को भी उसने 'विष्णोइन' किया।

नीबडी गाव के वरो जाट की बेटी लाहणी रिणसीसर के मगोवळ को व्याही गई

---

[1] ...ति सख्या ७१, १५४, २०१, (फोलियो २३६-२४०), २०७, २३४।

[2] ...तरा स छहोतर, तिथ नुय मगळवारि।
...न केसौ की वीनती, सतगुर पारि उतारि॥ १७२॥
...ति ७१ (म) में "छहोतर" के स्थान पर "छिडोतर" पाठ है। इस दोहे म तिथि, ...र के साथ मास का उल्लेख नही है।

[3] ...ठौर वदयौ विसन, चाल सु णी चहू फेरि।
...ण वर देसी हिंदवां, थांन सु ण्यौ अजमेरि॥ ६५॥

थे। मगो और लाहणी विष्णोई हो गए। वरो ने अपने प्रभावशाली भाई भोजो जाट को वहा भेज कर लाहणी को बुलवा लिया। उसके पीछे मगो भी अपनी ससुराल गया किन्तु जाटो ने विष्णोई होने के कारण उसकी हसी-मजाक और भत्सना करते हुए पकड़ लिया और आठ पहर बाद मारने की सोची। रात्रि म जाम्भोजी ने उसको कहा-जाट ने भोजो के मरने की बात सुनी है किन्तु वह नव दिन यहा आ जाएगा। तू यह चमत्कार दिखा। उसने ऐसा ही किया। भोजो के आने पर जाट जाम्भोजी की महिमा-गान करने लगे। उन्होने मगो को सम्मानपूवक लाहणी के साथ गिरासीसर बिदा किया।

अलौकिक तत्वो को छोड कर रचना मे कतिपय महत्वपूण ऐतिहासिक घटनाओं का उल्लेख है तथा तत्कालीन सामाजिक-धार्मिक दशा-मान्यताओ की जानकारी देने वाले उल्लेखनीय सकेत और सूत्र हैं। इनकी चर्चा अन्यत्र की गई है (द्रष्टव्य-जाम्भोजी का जीवनवृत्त तथा विष्णोई सम्प्रदाय नामक अध्याय)। अन्य ऐसी कथाओ की भाति इसम कई भ्रान्त सवाद हैं।

मेडता पर सरियाखान की चढाई के समय सेना और युद्ध का सजीव वणन कवि ने किया है, समस्त "कथा" म इसका निराला स्थान है[2]।

कवि अत्यन्त आत्मीयता के साथ पाठक-श्रोता से अपनी बात कहता है जिससे एक विश्वासपूण घरेलू वातावरण की सृष्टि होती है[3]।

(१३) **कथा चितोड की**[4] यह राग 'रामगिरी' म गेय १६८ दोहे-चौपइयों की

१-मूरिय सह फीटि फीटि कर, भु छ जिडग ज्य भूत।
थे रिणसी बेटा जाया असा, संगळा ही ज कपूत॥ १५३॥

२-वाज भेर नगारा घुर, दळ आया दुद उपर।
बेडि करण रो कियो मतो दुदै दळ कियो सावितो॥ २३॥
मोड बधा बाधे अत्र मौड, रिण संगिराम मिलया राठौड़।
रिण माहैं तेजी तवाळ, धव्य बांधी साहैं सु डाळ॥ २४॥
रिण माहैं तेजी हिणहिण्या पाखर टोप सजोवा वण्या।
रिणखेत तणा पहर्‌या पहरान, करे कत्राणि कडे भुयान॥ २५॥
ढाल तुपक तरवारि सम कु त कटारी सेल।
दळ दोन्यो भेळा हुवा, पळ दळ करिस्यां पेल॥ २६॥
मुह मिळिया छुटा तदि बाण दहू दळ धुरिया नीसांण।
सूर विढ छूट मनि मोह, अणी मिली वाज्या रिण लोह॥ २७॥
तुरिया धुरियां उडी खेह, तरवार्‌या तड छीजै देह।
सूरा करि सीस पडहड, सर गोळी उनग सह पड॥ २८॥
दुद न दबजी वर न्यो सरियाखान तणो सिर लियो।
रिण आयो राठोडा हाथि, पळ पेख्या आप निरंजणनाथ॥ २६॥

३-द्रष्टव्य –
(क) उवट वाट वहैं दळ घेरि, धरि उपरि धाया अजमेरि।
खावळ ता नदी एन गाव, तह गांव तणो नहीं जांणो नांव॥ ४७॥
(ख) रावळ रथे आयो जगनाथ, क रावळ क आरे साथि।
सतगुर मत बुलावे झूठ, रावल के घड़ण घो कूट॥ १०॥

४-प्रति सख्या ६१, ६६, ७१, ८१, १०७, १५४, २०१ (पोथियो २११-२१६)

रचना है। इसमे पूव के 'लादिया' विष्णोइयों का, चित्तोड मे जकात मागे जाने पर मरने का निश्चय, जाम्भोजी के 'सबद' और भेंट-सामग्री से झाली राणी और राणा सागा को प्रतिबोध तथा भीयाँ की शका का समाधान होने का वर्णन है।

कनौज के भादू गाव के लादिया वनिये विष्णोई-'पुरवार', 'ओधिया' और 'उमरा' सौदा करते हुए चित्तोड आए, वहा क्रय-विक्रय किया किन्तु चु गी देने से इ कार कर दिया। राणा सागा को विष्णोइ 'धर्म' के विषय मे बताते हुए उन्होंने चु गी के बदले तीन दिन बाद प्राण दे देने के निश्चय से अवगत कराया और द्वार पर 'धरणा' दे दिया। झाली राणी ने उनसे तत्सम्बन्धी बात जान कर, बलों के लिए 'बीड' (चरागाह) दिया और कहा—जाम्भोजी से पूछ आओ, यदि वे कहें तो देना, अन्यथा नही। तब उनमे से कुछ व्यक्ति सम्भरायळ पर गए।

दिल्ली में ठहरी विष्णोइयो की एक 'जमात' से भीयों नामक शास्त्रज्ञ व्यक्ति ने जाम्भोजी के विषय म जान कर उनके 'अवतार' होने म शका व्यक्त की। जमात ने जाम्भोजी से भी यह बात कही। ६ महीने बाद पुन उन विष्णोइयो ने उससे, शका-निवारणार्थ जाम्भोजी के पास चलने का 'धरणा' देकर आग्रह किया। वह मन मे चार 'द' विचार कर समरायळ चला। जाम्भोजी ने उसके प्रश्नों का उत्तर और 'द' का भेद बता दिया तथा अपने पाच साधुओं के साथ उसको 'सोवन नगरी' दिखाई। वहा से उन्होंने 'मू ण' (मोम), छन्ना, 'सुळमावणी' (कघी), मारी और माला-पाच वस्तुएँ भी ली। भीयो का भ्रम निवारण होगया।

चित्तोड से आए विष्णोइयो को जाम्भोजी ने अपना कथन और 'सबद'[१] तथा भेंट स्वरूप मारी, कघी और माला दी। वापस आकर उन्होंने भेंट दी, जाम्भोजी की 'सीख'—'सबद' और चु गी क्षमा करने की बात कही। इस पर राणी को प्रतिबोध हुआ, उसको अपना पूर्व जन्म स्मरण हुआ। इस प्रकार ये दोनों तथा रायसल, बरमल राह पर आए[२]। राणा ने चु गी माफ कर दी और पाहळ लेकर जम्म-सेवक हुआ[३]। पश्चात भी उनकी आज्ञा मानता रहा।

रचना में यत्र-तत्र ऐसे सकेत मिलते हैं,[४] जिनसे पता चलता है कि 'कथा' का आधार लोकश्रुति है। स्वय कवि के कथन से भी ऐसा ही ध्वनित होता है[५]। इसके प्रति-

१-मुरता इणि ओमरि कही, आतरि पातरि राही रुपमगि ॥ १३७ ॥ (सबद सख्या ६१)
२-धरणीधर मन माह धरो करणी कही तका गुर करो।
मुन मातो झालाजी माय, रायमल बरसल आण्या राह ॥ १४५ ॥
३-चळू लियो विसनोई किया, गर वायक माथै वदिया ॥ १४७ ॥
४-(क) च्यारि क पाच न जाणौं दोय। गुर माम्हा जण मेल्ह्या जोय ॥ ४१ ॥
(ख) मोन नियो क माग्यो जोय। सा विधि मनगुर जाणे सोय ॥ ५५ ॥
(ग) परमसर जाण परवार। लोगा के मुहि सुण्यो तुसार ॥ ५६ ॥
(घ) धाटि बाधि जाण करतार। तीज दिन पुहना दरबार।
पारब्रम क लागा पाय। सतगुर वायक कहै सुणाय ॥ १५५ ॥
५-सम कहै करतार सू, सतगुर राखो साख।
को आपर वावळ कह्यो बकस करी बळ आव ॥ १६८ ॥

रिक्त काव्योचित कल्पना तथा सम्भावनाओं और साम्प्रदायिक आग्रह का पुट भी है। तथ्य की दृष्टि से मूल बात यह है कि भाली राणी और राणा सांगा का अपरोक्ष रूप से जाम्भोजी से सम्पर्क हुआ था। इसमें चित्तौड़ के राजघराने की धार्मिक-सहिष्णुता, राजस्थान के बाहर उत्तर-प्रदेश में विष्णोई-धर्म प्रसार, शास्त्रज्ञान से आत्म-ज्ञान की महत्ता, तत्कालीन राजस्थान, विशेषतः मेवाड़ में 'अकर' जातियों और प्रसिद्ध धर्म-मतों का पता चलता है। भीयों (भीवराज) एक हुजूरी कवि था, उसके सम्बन्ध में इतनी जानकारी पहली बार यहां मिलती है। (द्रष्टव्य-भीवराज, कवि संख्या ४८)।

"कथा" में संवाद उत्कृष्ट रूप में हैं जिनमें ये प्रमुख हैं।—

क-राणा सांगा और विष्णोइयों का (१४-२४),
ख-भाली राणी और विष्णोइयों का (दो बार, ३४-४८),
ग-जमात और भीया का (दो बार, ६५-७० तथा ७३-७५)।

(१४) कथा इसकंदर की[1] यह राग सोरठ में गेय २१५ दोहे-चौपइयों की रचना है। विभिन्न प्रतियों में छन्दों की कमी लिपिकारों की सख्या-भूल के कारण है। जैसा कि नाम से स्पष्ट है, इसमें जाम्भोजी द्वारा दिल्ली के पठान बादशाह सिकन्दर लोदी को प्रतिबोध कराए जाने और उनके ज्ञानोपदेशानुसार चलने के संदर्भ में घटी घटनाओं तथा तत्सम्बन्धी प्रासंगिक कथाओं का उल्लेख है।

जाम्भोजी के दर्शनार्थ 'गंगापार' के विष्णोइयों की एक 'जमात' दिल्ली में हाशिम-कासिम नामक शाही दर्जियों के घर के सामने आकर रुकी और उसने रात भर "जुमला" किया। इससे प्रभावित होकर वे भी जमात के साथ चल पड़े तथा जाम्भोजी के ज्ञानोपदेश को हृदयंगम किया। दिल्ली में वे मनसा-वाचा-कर्मणा उसी के अनुसार रहने लगे। उनके हिन्दू और मुसलमान—दोनों से भिन्न आचरण देख कर लोगों को आश्चर्य हुआ और बात बादशाह के कानों तक पहुंची। उसके पूछने पर उन्होंने 'सतगुर' और 'सतपंथ' के विषय में बताया जिसे सुनकर बादशाह ने उनको अंधेरी कोठरी में बन्द करवा दिया और बोला—इनका पीर छुड़ायगा तभी छोड़ूंगा (१-५४)।

जाम्भोजी रणधीरजी के साथ मनसा से उत्पन्न किए ऊंट पर सवार होकर तथा आकाशमार्ग से बादशाह के महल में उतरे। ऊंट के "करकने" से वह जग गया। मन में दरवाजा खोलने वाले को मरवाने की सोची। जाम्भोजी बोले—मैं दरवाजे से आया, मेरे मतों को तून कैद किया है, उनको छुड़ाने आया हूं। तभी वहां [illegible] विलीन हुई। उसको एक व्यक्ति और ऊंट के अतिरिक्त कुछ भी दिखाई न [illegible] आश्चर्यित बादशाह ने उठ कर उनके चरण छूने के लिए हाथ फैलाए तो वे [illegible] ही भिन्न गए। उसको जाम्भोजी के दर्शन तो हुए किन्तु बीच में जल का [illegible] जाम्भोजी ने दोहराया-उन साधुओं को छोड़ो। इस 'परचे' से बादशाह को [illegible]

१-प्रति संख्या ७२, ८१, ११६, १५२ १५४, १५५, १६८, २०१ (फोलियो २१८-२०७, २६२।

उसने "जीव-गति" की विधि उनसे पूछी। जाम्भोजी ने दो टोपियो का कपडा देते हुए कहा—हक और हलाल की कमाई खाओ। उसकी सशय-निवृत्ति हो गई और वह इस "राह" मे आया। व "अलाप" हो गए किन्तु 'फोग' की एक 'कामडी' (छडी) रणधीरजी के हाथ से वहा गिरी रह गई (५५-८३)।

दूसरे दिन बादशाह ने दर्जियों को बुलाकर उस छडी के विषय म पूछा तथा प्रसन्न होकर प्रशसा करते हुए उनको मुक्त कर दिया (८४-९०)।

अब बादशाह प्रतिदिन दो टोपिया बनाने और उनसे हुई आय से गुजर करने लगा। 'पथ' म न आने क कारण उसने एक के अतिरिक्त शेष बेगमो को भी छोड दिया किन्तु वह भी कष्ट स थक गई। उसके पिता ने बादशाह को मारने का इरादा किया। घात के समय बादशाह के हाथ और पाव अलग-अलग दिखाई दिए। तब उसन अपनी बेटी को सिकन्दर की सेवा करने के लिए ही समझाया (९१-१०६)।

बादशाह जाम्भोजी की महिमा तथा हिन्दू और मुसलमान, दोनों धर्मों की आलोचना करता, पर किसी से उपयुक्त उत्तर देते न बन पडता था[1] (१०७-१२०)।

बीमारी म टोपी न बना सकने के कारण बादशाह ने हक की कमाई का अनाज लाने को कहा। हक के नाम पर केवल एक बुढिया ने ही अनाज दिया पर उसन भी इस हेतु पराई मशाल के उजाले म सूत काता था, सो बादशाह ने ग्रहण नही किया (१२१-१३३)।

भगवान नामक एक ज्ञानी ब्राह्मण बादशाह से मिला। उससे पूछा-हिन्दू और मुसलमान दोनो धर्मों म कौन बडा है? उत्तर मिला—जो रहमान को पहचान और जिसमे ईमान हो[2]। इस पर बादशाह ने उसको मुसलमान हो जाने को कहा तो वह बोला-यदि मेरे तीन प्रश्नो का उत्तर मिल जाए तो हो सकता हूँ। बादशाह ने एक काजी को, उसकी शका-निवारणार्थ कहा जिसने उसकी हत्या करदी। ब्राह्मण का लडका भागवली बादशाह से मिला, तब वहा प्रश्न उससे भी पूछा गया। अपने पिता की हत्या की बात बताते हुए उसने तीन प्रश्नो क उत्तर की बात दोहराई। ब्राह्मण की हत्या और प्रश्नों का उत्तर न दे सकने के कारण बादशाह ने काजियो को खूब फटकारा और परमन के नाता जाम्भोजी

1-पातिशाह मुना सू कह्या, पढ्या गुण्या थे खाली रह्या।
हिन्दू बद कर बोह आस, करणी पाषो रहे निरास ॥ १०८ ॥
हिन्दू तुरक दहु क दूजि, सतगुर पायो रहे अळूझि।
गुर मिलियो जिन पायो पीव, गुर पायो जगत का जीव ॥ ११० ॥
काजी मुल्ला बामणा, धरम विचार जोइ।
इसकन्दर पतिसाह सू, सुधी जाव न होइ ॥ १११ ॥
२-पूछे सिकन्दर पतिसाह हिन्दू, तुरक कहै दोय राह ॥ १३४ ॥
सची बात कहो करि चीन्ह, इण दोनू माहि बडा कुण दीन।
भगवान कहै साभळि पतिसाह, अनील पुरिष का दोयों राह ॥ १३५ ॥
क्या हिन्दू क्या मुसलमान, वडा सोई जो चीन्है रहमान।
सोच समझ कोई सुजान दोयो वडा जिस मा ईमान ॥ १३६ ॥

और पथ की प्रशसा की[1] । जाम्भोजी की परीक्षा के लिए एक करोड के एक रत्न को सात परदो मे रख कर, ऊपर शाही मोहर लगा दी और उसको भेंट स्वरूप एक नारियल के साथ मजूषा मे रखा तथा भागवली और अन्य व्यक्तियो को भेजने की योजना बनाई। बिना देखे वह वस्तु और उसका मोल यदि जाम्भोजी बतादें तो परीक्षा हो जाएगी। उमराव सफनखा कजलिये ने भी जाम्भोजी से अपने एक सशय की बात पूछने की इच्छा प्रगट की। तभी एक शाह ने एक बनिये से वापस धन दिलाने की तथा बनिये ने उसके चोरी हो जाने की फरियाद बादशाह से की। वह बोला—सबका न्याय जाम्भोजी करेंगे। (१३४-१७७)।

जाम्भोजी ने बिना खोले रत्न का नाम, दाम ही नही बताया उसको निकाल कर बदले मे २ करोड का दूसरा रत्न भी डाल दिया। भागवली, सफनखां, शाह और बनिये-सबका भली भाति शका-समाधान और न्याय किया। बादशाह के कठोर तप से विष्णु ने उसको वकुण्ठवास दिया (१७८-२१५)।

इस कथा का महत्त्व इतिहास की दृष्टि से है। इससे एक बात का पता तो निश्चित रूप से चलता है कि बादशाह सिकदर लोदी का सम्पर्क जाम्भोजी से हुआ था और उनके ज्ञानोपदेश से उसकी मनोवृत्ति में परिवर्तन भी हुआ। इसकी पुष्टि सबदवाणी (सबद सख्या २७) तथा अन्य अनेक उल्लेखो से होती है। (देखें—जाम्भोजी का जीवन-वृत्त) वर्तमान मे फरिश्ता और अन्य लेखकों[2] के कथनो के आधार पर कबीर और सिकन्दर का जो सम्बन्ध-सम्पर्क स्थापित किया जाता है, वह वस्तुत जाम्भोजी और सिकन्दर का होना चाहिए। एतद् विषयक सामग्री के आधार पर विद्वानों से इस सम्बन्ध मे पुनर्विचार करने का अनुरोध किया जाता है।

इसमे सर्व-साधारण के लिए केसोजी ने अत्यन्त सक्षेप में जाम्भोजी के प्रमुख विचारों का अपने ढग से आकलन किया है। उदाहरणार्थ भागवली के तीन प्रश्नों के सम्बन्ध मे जाम्भोजी का कथन द्रष्टव्य है[3] ।

१-काजी को पायो उनमान, जीव हतो अर कथो गियान ॥ १४८ ॥
पातिसाह एम कहै परवाण, जम गह का ए इहनांण।
पुण्या तिसना नींद न सोव, पर मन की परगट सो कहै ॥ १५१ ॥
छापा पोज न दोसई, है सोई अगम अथाह।
पातिसाह काजी सू कहै, सचा गुर सचा राह ॥ १५२ ॥

२-डा० पीताम्बरदत्त बडथ्वाल योग-प्रवाह, पृष्ठ-६८, १०३ पर उद्धृत, काशी विद्यापीठ बनारस, सवत् २००३।

३-आगी दीठों अत भोगवै, अत दीठों आगी सुप हुवै।
जपियां नाव अनत गुण होय, रिण अर वर मिट नहीं दोय ॥ १८६ ॥
मन तन वचन धर नहीं दोर जीवत मुगति ज पाम मोर।
मन राप निरजण साम, तन उपगार कर टहराय ॥ १८७ ॥
वचन साध सुपहो उचर, सो साधु जन दुतर तरै।
हिन्दू तुरक कासाई एकि, दोयां वाद विनुपा देपि ॥ १८८ ॥ (शेषांश आगे देखें)

(१५) कथा जतो तळाव की[1] यह राग सोरठ मे गेय ८० दोहे-चौपइयों की वना है जिसमें कुछ छदा की एक-एक पक्ति त्रुटित भी है। इसकी रचना सवत १७११ कार्तिक वदि चौथ को पूरी हुई थी[2]। इसम विविध लघु कथा-प्रसगो द्वारा जाम्भोळाव माहात्म्य बताया गया है जिसका साराश इस प्रकार है —

पन्यिाळ गाव म एक दुष्टा स्त्री ने घर मे आकर ठहरे हुए एक 'बटाऊ' के साथ मिल र रात्रि म अपने पति को कटारी से मार दिया और उसके साथ भाग कर सुबह होने तक म्भोळाव आगई। पाप के कारण वह कटारी उसके हाथ मे ही चिपक गई। यह देख कर पुरुष भाग गया। स्त्री ने वहा एक बडा 'नाडा' (तालाब) खोदा, जो वर्षा से भर गया। मि प्रयत्न तो पानी सूख गया किन्तु उसमे पडा रह गया। जगल से एक सांड की खदेडी प्यासी गाय वहाँ आई। दोनों ने उसमे पानी पिया। इस पुण्य से चिपकी हुई कटारी स्त्री के हाथ से गिर पडी (१-२४)।

जाम्भोजी ने इस तीर्थ की महिमा बताई—एक थोरी चोर और जीव-हत्यारा था। ने 'जाम्भोळाव पर एक तीर चलाया, जो उसमे गिर कर गड गया। उसको निकालते य तालाब की मिट्टी उसके शरीर पर पड गई। इससे उसका पाप-मोचन हुआ ५-३५)।

जाम्भोळाव की खुदाई हो रही थी। एक स्त्री घूघट निकाले, सबसे अलग, मौन ण किए बराबर मिट्टी निकाल रही थी। लोगो के पूछने पर जाम्भोजी ने कहा—वह ने पूर्व-जन्म को जानती है, एक बूढे के घर में रासभी थी। उसकी पीठ पर ढोया पानी किसी साधु पुरुष ने पीया, जिससे वह इस योनि मे आई। अब इस मिट्टी से प्रेम ो से आवागमन नही होगा (३६-४४)।

नेऊ गाव मे तातू रहती थी जो अपने 'थटवाळे' (पशु चराने वाले) से किसी ण नाराज होगई। उसने फासी से मरने का विचार किया, किन्तु सुबुद्धि आने पर वह भोळाव चला आया। वहाँ उसने मिट्टी निकाली और देह-त्याग कर मोक्ष-लाभ लिया ५-५२)।

पली (ब्राह्मण) ने जाम्भोजी को प्रसन्न कर तालाब पर आने वाले लोगों के लिए ो का वर मांगा। जाम्भोजी के पश्चात् यहाँ सवत् १६४८ मे चैत वदि ११ से वील्होजी ेला शुरू किया था।

वाद तज पिछांण पीव, सो आवा गुवणि न आव जीव ॥ १८९ ॥
रचना म यत्र-तत्र सुदर सवाद भी मिलते हैं।
-प्रति सख्या १३, १७, ३१ ५४, ५६, ६७, ६३, २०१ (फोलियो २४७-२५०), २४८।
-सतरास सम इग्यारो वदि काती चोथि विचारो ॥ ७८ ॥
किसन पष परवांणी, केसै जति थोडि वर्षाणी ॥ ७६ ॥
प्रति सख्या १३ ३१, ५४, २४८ मे सवत् सूचक पाठ इस प्रकार है —
'पचासे सइयै समै, कातिग चौथि वर्षाणा'। यह भूल है क्योंकि सवत् १७५० तक तो केशोजी जीवित ही नहीं थे, उनका स्वर्गवास सवत् १७३६ में ही हो गया था।

अंत में कवि ने मेले में आए स्त्री-पुरुषों, उनके क्रिया-व्यापारों, पशुओं आदि का सुंदर वर्णन किया है, जिससे लोगों के उल्लास और पहनावे आदि का बड़ा अच्छा परिचय मिलता है[1]।

(१६) कथा विगतावली (प्रति संख्या २०१, फोलियो ३७०-३८३) यह ३७८ दोहे-चौपइयों की रचना है। अंत में एक डिंगल गीत के तीन द्वालों को तीन छंद मानने के कारण लिपिकार ने दोहा-परिमाण से कुल छंद संख्या ३७७ दी है। इसकी रचना संवत् १७१५ के मार्गशीर्ष सुदि ६, शनिवार को हुई थी[2]। कवि के अनुसार विगतावळी विष्णु की कथा है,[3] जिसका सारांश इस प्रकार है —

सत्ययुग में हिरण्यकशिपु ६६ कोटि लोगों से अपना जप करवाने लगा। उसके पुत्र प्रह्लाद की हरिभक्ति से प्रभावित होकर इनमें से ३३ कोटि लोग उसके उपदेश पर चलने लगे। हिरण्यकशिपु ने प्रह्लाद के पाँच कोटि लोगों को मार कर उसको मारना चाहा किन्तु नृसिंह भगवान से स्वयं ही मारा गया। प्रह्लाद के इन ३३ कोटि जीवों के उद्धार का वचन मांगने पर भगवान ने चार युगों में ऐसा करना स्वीकार किया। इनमें से ५ कोटि की मुक्ति तो प्रह्लाद के साथ ही हो गई (१-६१)।

त्रेता में सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्र और द्वापर में धर्मराज युधिष्ठिर के साथ क्रमशः सात और नौ कोटि जीव तरे (६२-७२)। कलियुग में पैगम्बर मुहम्मद के साथ एक लाख अस्सी हजार लोगों ने स्वर्ग-प्राप्ति की (७३-८७)। जब किसी भी साधु-संत, पीर-पैगम्बर से कार्य पूरा नहीं हुआ तो १२ कोटि जीवों के उद्धारार्थ अलख पुरुष अपनी समस्त कलाओं सहित जाम्भोजी के रूप में 'वागड देश' में सम्भरायळ पर आए[4]। कवि उनके

१-अवरंग सीस अंनेरी, मोजा सीस चंगेरी।
जीना जग जाणि झणक, घणा घुघरमाळ घमक ॥ ७२ ॥
अपणी अपणी करि टोळी, तरणी तन पहरि पटोळी।
पहरती पाट पवाळा, उरि देषि बण्या पगवाळा ॥ ७३ ॥
अपणी अपणी करि टोळी, पुरिप पुष्प रूप भोळी।
पहरे नवरंगा नाडा, सळप घाति सुरंगा साडा ॥ ७४ ॥
पहरि भिगोर्ल्टिया चंगी, लोई तनि लाल सुरंगी ॥ ७५ ॥
घणि मांणिक चीर घुमाव, तिळिया तनि मरम सुहाव।
लहगा हडिया कसि मोरी, अपणा गुण गाव गोरी ॥ ७६ ॥
पहरि तिलक मनि मोहै, दुकरी तनि सूषणि सोहै।
अजग करि उरि जगीस सुतन्न घडि त घडि दीस ॥ ७७ ॥

२-सतरास पनरोतर, तिथ छठि थावर वारि।
सुदि मगसरि कैम कही विगतावळी विचारि ॥ ३७७ ॥

३-सोचि समझि, धुपन ता टळी विसन कथा सुणि विगतावळी।

४-पीर पुरिस मन्हा घणा समस ताराषा सेष।
कोहि कहा पुगी नहीं आयो आप अलप ॥ ८७ ॥
कैम कथा कवी कर जोडि, आवागु वण मिटावो षोडि ॥ ३७३ ॥
पनराम र अठोतरि इळा वायम के परगठियो पळा।
वदि भाद्रवि आठवि अवतार, करि किरपा आयो करतार ॥ ८८ ॥ (क्रमशः)

ा, विशेषता, काय और उपदेशो का अनेक प्रकार से सविस्तर वर्णन करता है (८८–
३६)।

भविष्य म भगवान दमवा—कल्कि अवतार लेकर ससैन्य कलियुग को मारेंगे (२३७-
३५) और पृथ्वी के साथ उनका विवाह होगा (२९६–३२७)।

मृत्योपरान्त भगवान प्रत्येक जीव से उनके कृत्यो का हिसाब मांगेंगे तथा करनी के
नुसार फल देंगे। स्वर्ग म अनन्त सुख हैं, जो जीव मुक्ति प्राप्त करते हैं, वे ही उनका उप-
ग करते हैं (३२८–३७२)।

रचना म ३३ कोटि जीवो के उद्धार सम्बन्धी साम्प्रदायिक मान्यता तथा जाम्भोजी
र उनके उपदेशो का बडा विशद् वर्णन किया गया है। इसी प्रसग मे केसोजी न वील्होजी
न 'सच अखरी विगतावळी' की भाति लोगो की बोली-सुधार का महान प्रयास भी किया है।
होने कतिपय शुद्धाशुद्ध प्रयोगो के उदाहरण देकर ठीक बोली बोलने के लिए प्रेरणा दी
। इस दृष्टि से इसका महत्त्व वील्होजी की उल्लिखित रचना के समान ही है। सम्प्रदाय मे
दूसरे कवि हैं, जिन्होने बोली-सुधार पर ध्यान दिया है। कुछ प्रयोगो की सूची इस
कार है —

अशुद्ध	शुद्ध
(१) वळद पीया, गाय पीवी ओठार, एवड और भस पीया।	वळद जळ पियो, गाय जळ पीवी, ओठार, एवड और भस जल पीयो।
(२) आटो पास्यो, दाळ दळी, साजवणी ऊफणी।	धान पीस्यो, मोठ दल्या, अन पाणी ऊफण्यो।
(३) अमुकडो ठोड वरसाय आयो	तू कित थो जदि वूठो मेह, मेह मही थो उमक गाय
(४) खोडो खाड काढी, माणस जीम्यो	धान काढ्यो, मिनख धान जीम्यो
(५) कहि करि मारग जायसी किसो ? वोह मारग वह नगरी जाय। वाट वहै	हू जू नगरी पथ बताय। वोह नगरी जाय। बटाऊ वहै।
(६) लाटो प्राण्यो	धान आण्यो
(७) घाणी चुराई	तिल चुराया
(८) आधी, भाव	पु वण, वायरो
(९) नीगरयो वासण, दोहणी, तावणियो	रहो वासण पारी, तावणी

कुरहडियो को कुरहडी, सुल्य को आगा, आळी को काची नही कहना चाहिए।

आई चकि अवतरियो आय, जाबू दीप भरथ पड माहि।
वागड देस विराज दई, समरायळि परगटियो सही॥ ८९॥
१-सुष करता जुग जाहि अनत, तोऊ सुषा न आव अ त।
से सुष तो सोई जन लहै, जुग जीवत अतग होय रहै॥ ३७१॥

(१०) ऊठ बळद बाध्या	दुसमण, चोर बाध्या, ऊट बळद क दांव दियो
क्यो कारो	'हु कारो' तथा 'जोकार' कहना चाहिए।

सम्प्रदाय मे मान्य दसावतार म अतिम-कल्कि के 'काळिंग' से युद्ध तथा वसुधा के साथ विवाह का वर्णन प्राय सभी विष्णोई कवियो ने किसी न किसी रूप मे किया है। यहाँ केसोजी ने इस प्रसग को अत्यन्त विस्तार से कहा है। इसमे पृथ्वी के तथा स्वर्ग-सुख-वर्णन मे अप्सराओ के रूप शृ गार-वर्णन का अवसर भी कवि ने विशेष रूप से निकाल लिया है।

पैगम्बर मुहम्मद साहब का प्रशंसासूचक और उनके अनुयायियों की करनी का एक विशेष प्रसग म सविस्तर वर्णन पहली बार इसी रचना म मिलता है। विष्णोई सम्प्रदाय की धार्मिक-सहिष्णुता का यह ज्वलन्त प्रमाण है। इसकी एक बहुत बडी विशेषता यह है कि इससे समग्रता मे विष्णोई सम्प्रदाय की आधारभूत मान्यताओ का सक्षप मे स्पष्ट परिचय मिल जाता है। 'कथा' मे यत्र-तत्र सबदवाणी तथा अन्य रचनाओ का उल्लेख-सकेत किया गया है। इसमे कथन-विशेष की प्रामाणिकता तथा सकेतित प्रमाण की महत्ता [illegible] होती है।

(१७) कथा लोहापांगळ की[1]   १८१ दोहे-चोपइयो की यह कृति-हुसो, से और ललित राग मे गेय है, बीच म दो स्थान "रास की ढाळ" के भी हैं। इसकी रचना स १७३० के जेठ सुदि ५, शनिवार को हुई थी[2]। इसमे नाथ योगी लोहापागल के [illegible] आयसो सहित विष्णोई सम्प्रदाय मे आने की कथा है।

गोदावरी के तट पर अनेक नाथ-योगी एकत्र हुए। वहा जाम्भोजी को परास्त क[illegible] के लिए बीडा घुमाया गया जिसको लोहापागल ने लिया और अपने ५०० शिष्यों के स[illegible] अनेक प्रकार के आडम्बर करते हुए बीकानेर के हिमटसर गाव म १४० "धुइयो-धुना" [illegible] डेरा डाला। वहा के सोढो की माता लाछमदे ने यह खबर जाम्भोजी को दी। उन्होंने [illegible] भक्तो से आयसो को भोजन-पानी देने को कहा। विष्णोइयो के बुलाने पर, डर के मार उन्होने भोजन के लिए अलग-अलग न जाकर एक साथ ही जाना चाहा। जाम्भोजी "सावन-भादो" नामक दो कडाहो म भोजन बनवा कर सबको एक साथ ही भरपेट जिमाय[illegible]

अपने डेरो के सामने से एक रूपवती विष्णोइन को जाते देखकर सब जोगी मो[illegible] हो गए। स्त्री उनके दर्शनार्थ उधर चली तो लोहापांगल ने कहा-माई! यहाँ मत आओ। [illegible] जती पुरुष हैं। उसने उनके पाखण्ड की निंदा की और फटकारते हुए कहा—"माई" [illegible] ता ससार ही नहीं हो सकता।

लोहापागल मौन धारण कर बठ गया। जाम्भोजी ने उसको अपने पास बुलाने [illegible] लिए केल्हण को भेजा। "आदेश" करने पर भी वह नहा बोला, तो केल्हण ने [illegible]

१-प्रति सख्या ७ ७१, २०१, (फोलियो २१३-२१८), ३३०।
२-सतराम तीसो समू जैठ सुदि पाचवि थावर जाण।
गुर सुदि ग्यांन सुणाइयो, विधि सू केस कह्या वखांण ॥ १८१ ॥

हुए कि या तो इसके मन में अहंकार है अथवा सुनता नही, उसके कान पकड लिए। क्रुद्ध होकर वह बोला-जोगी तो हम हैं, तुम लोग तो नारी के दास हो। उसके स्त्री की निंदा करने पर कल्हण ने समुचित उत्तर दिया, जिससे उसको समझ आई।

उसको प्रतिबोध कराने के लिए जाम्भोजी "साथरियो" सहित चले और उनके भय-निवारणार्थ अकेले ही सामने आकर "आदेश" किया। उन्होंने तो मौन साध लिया किन्तु "धुइयों" और अग्नि से 'आदेश-आदेश' प्रत्युत्तर आने लगा। यह सुनकर आयस उनकी शरण में आ गए। जाम्भोजी की आज्ञा से सूर्य अति प्रचण्ड होकर तपने लगा। लोह दहन से वलाप करता हुआ लोहापागल छाया मे आया, जडी-बूटी की और अन्त मे धरती पर लेट कर शरीर पर धूल डालने लगा। न तो लोह गिरा और न ही उसका दहकना बन्द हुआ। उसके कुछ चेलो को छोड कर सब भाग गए। अब वह जाम्भोजी की शरण में आया। उनके सिर पर हाथ रखने से लोह झड गया। प्रभात में आने की आज्ञा देकर जाम्भोजी चल आए।

सुबह होते ही आयस लोहापागल के साथ जाम्भोजी की शरण मे आए और 'पाहळ' लेकर बिश्नोई हो गए। पगु होने और लोह जडने के कारण लोहापागळ नाम पडा था, जिसको बदल कर जाम्भोजी ने 'रूपो' रखा। "लोह" से "रूपो" बनाया और उपदेश देकर साधु-सेवा करने की आज्ञा दी। वह 'कावड' मे पानी ढोकर सेवा करने लगा।

एक दिन कुछ बिश्नोइयो ने चमत्कार दिखाने के लिए उसको बहुत उत्तेजित किया। उसने मंत्र शक्ति से भरव और भूत चलाए और आग से उनके वस्त्र जला दिए। बिश्नोइयों ने इसकी शिकायत जाम्भोजी से की। जाम्भोजी ने रूपो का पक्ष लेते हुए उसकी चमत्कार शक्ति खींच ली तथा खोदासर गाव का भडार और 'थाट' सौंपा। 'गुरुथाट' पर ध्यान से उसको मोक्ष प्राप्ति हुई।

इस रचना का कई कारणों से बहुत महत्त्व है।

काव्य रूप की दृष्टि से उल्लेखनीय बात यह है कि कथा के बीच-बीच में टेक वाले पांच गेय पद भी हैं। टेक के अतर्गत आने वाला छंद दोहा है। टेक की पंक्तियां ये हैं —

(क) रूप घणा जण मोहिया (८ छन्द, ५९-६६)।
(ख) ते माई बदि परहरी (४ छन्द, ६७-७०)।
(ग) मोना मुखि बोलै नही (१० छंद, ७२-८१)।
(घ) मोनी मुखि बोल्यो सही (८ छन्द, ८२-८९)।
(ङ) सुधि मन होय जप बिसन (२१ छन्द, १६२-१८२)।

समस्त रचना में ये स्थल अत्यन्त भावपूर्ण और चित्ताकर्षक हैं। इनमें आए सवाद और वर्णन भी उत्कृष्ट रूप में हैं। विशेषता यह है कि टेक की पंक्ति से ही उस पद के वर्ण्य विषय का अनुमान हो जाता है। पदो में रचना का मुख्य और मूल कथ्य भी सन्निहित है।

सैद्धान्तिक दृष्टि से नाथ जोगियों का नारी के प्रति उपेक्षा भाव था किन्तु मानवीय

दुबलता-वश वे उसकी कामना भी करते थे। इससे उनकी अधूरी और कच्ची साधना तथा उसकी दुरूहता का भान भी होता है। समाज के व्यापक सन्दर्भ में ऐसी भावना व्यावहारिक रूप में कैसे और कितनी प्राप्त हो सकती है, इसका संकेत भी कवि ने किया है। इसके सम्यक निदर्शन स्वरूप कवि ने रूपवती विष्णोइन[1] और केल्हण के प्रसंग की उद्भावनाएं की हैं। इस सम्बन्ध में पहले प्रसंग से कतिपय उदाहरण द्रष्टव्य हैं[2]। अंतिम पद (ड) में जाम्भोजी की प्रमुख शिक्षाओं का सार समाहित है।

इनके अतिरिक्त तत्कालीन समाज में व्याप्त विभिन्न प्रकार के नाथ सिद्ध, उनकी साधना प्रणाली, क्रिया-कलाप, तंत्र मंत्र, वेश भूषा आदि का बड़ा प्रामाणिक और भव्य चित्रण मेसोजी ने किया है। उनके प्रति जन-साधारण के मन में भय की भावना थी, लक्ष्मादे[3] तथा केल्हण[4] के कथनों से इसकी पुष्टि होती है। एतद्विषयक चर्चा अन्यत्र विशेष रूप से भी की गई है।

इसके संवाद संक्षिप्त प्रसंगोचित और कथा को प्रवाह देने वाले हैं। भाषा में एक निखार और सहज- गतिशीलता है। अन्य ऐसी कथाओं की तुलना में यह तथा सैंस जोखाणी की कथा दोनों अपेक्षाकृत अधिक प्रौढ़ कृतियाँ हैं।

(१८) पहलाद चिरत[5] यह राग मारू, धनाश्री, केदारो और सोरठ में गेय ५६६

१-कानि कुंडळ झळका कर, पगवाल्य उरि सोहै सूलि।
रूप विकाणो र भायसो, रूप तणै रंगि रहिया भूलि॥ ६२॥
भायस यो मन परघल्यो, ज्यों कागळजळ भागळिजाय।
अ नारी हूम कूं दीयो, भाइसिय गुर पूछ्यो आय॥ ६३॥
लोहापागळ यों कहै, भूला वीर न जाणो भेव।
अ नारी तम कूं सहू, जोगी का वित जोगी लेह॥ ६४॥-पद 'क' से।
२-गळि पहरी माई मेखळी, करि झोळी, सो माई होय।
तिणि जायो माई तका जिणि पिलायो माई सोय॥ ६७॥
जिणि मुहावियो माई जोय, तो तन तो माई सही।
माय विना ससार न होय, धर माई जिणि उपर॥ ६८॥
घण अहरण विच ठाह८, परवि पड कचण अर काचि॥
जाव न भाव जोगिया, नफरि झामाणी बोल साचि॥ ६९॥
अकलि विहु णा भूलि रह्या, भायस तणी न लागी काय।
जीति करि चालो सही, सतगुर तण जाय लागी पाय॥ ७०॥-पद 'ख' से।
३-बोहळा जुडिया देवजी बुवना, था दुष देस्य देव।
अजू घणो छ आतरो पेड करण री टेव॥ २३॥
अरज कर आतर थकी, वळि वळि लग पाय।
हुकम दिया हरि हेकला, मावणियो गढि जाय॥ २४॥
सुणि लाछा सतगुर कहे, गुर का ए आचार।
करता रिप कोई नही, जा रिप ता करतार॥ २५॥
४-कर जोडे केल्हण कहै धरणीधर मोहे बधे न धीर।
मी प मत्र को नही, बोह वेताळ जगाव वीर॥ ७२॥
५-प्रति संख्या २६, ३६, ४४, ६६, ६८ ७५, ७६, ८१, ८७, १३७, १५२, १५३, २०१, २०४, २०६, २०८, २१३, २४३, ३७२, ३६६, ४०८।

छन्दों की रचना है, जिनम दोहा– चौपई प्रधान हैं। शेप छन्दो में नीसाणी, छप्पय, मोतीदाम और 'छंद' हैं। विभिन्न प्रतियों मे छन्दो की घट–बढ लिपि-लोप के कारण है।

इसम प्रह्लाद– उद्धार की सुप्रसिद्ध कथा का वर्णन है।

कवि मच्छ, कच्छ और वराह अवतार के कारण और कार्यों के पश्चात् मूल कथा आरम्भ करता है। भगवान विष्णु ने अपने दरबानों– जय विजय से युद्ध की इच्छा व्यक्त की जिसे उन्होंने सविनय अस्वीकार कर दिया। वकुण्ठलोक मे रोके जाने पर सनकादिका ने उनको असुर होने का शाप दिया और कहा– सात जन्म तक हरि-सेवा करने अथवा तीन जन्म तक हरि से युद्ध करके वापस यहा आ सकोगे। उन्होंने दूसरा विकल्प ही स्वीकार किया। पश्चातापवश सनकादिक भी उनके यहा प्रह्लाद रूप म अवतरित हुए।

राजा जमघट शिकार मे अनेक जीवो की हत्या करता था। इस पर सब मृगो ने प्रतिदिन एक मृग भेजने का वादा करके यह काम छुडवाया। 'परची' डालने पर सब प्रथम एक लगड़े मृग की बारी आई। राह म भस्मासुर की भस्म के बीच एक मृगी के साथ वह चार पहर रहा। जमघट ने मृग के बदले मृगी के मरने का सकल्प देख कर दोनो को ही छोड दिया। उस मृगी के गर्भ में हिरण्यकशिपु आया और अठारह महीने तक दुख देता रहा। नदी पर से शिव-पार्वती कहीं जा रहे थे। मार्ग मे बैठ कर मृगी जोर-जोर से 'हरि-हर' करने लगी। पार्वती ने हरिणी को सकट-मुक्त करने के लिए शिवजी को विवश किया। उनसे अनेक वरदान लेकर हिरण्यकशिपु बाहर आया। वह मुल्तान मे राज करने लगा। इन्द्र की अप्सरा उमा के साथ उसका विवाह हुआ। उसने कठोर तपस्या करके ब्रह्माजी से भी अमरता का वर प्राप्त किया। उसके तपस्याकाल मे इन्द्र ने असुरो को नष्ट भ्रष्ट किया और गर्भवती उमा को भी वह ले चला। नारद ने उसको छुडा कर गर्भस्थ प्रह्लाद को हरि-उपदेश दिया।

हिरण्यकशिपु के डर से नारायण का नाम मिट गया। प्रह्लाद जन्म से ही हरिभक्त था। पाठशाला म उसको असुर विद्या सिखाने के सब प्रयास तो विफल हो ही गए, अन्य विद्यार्थी भी उसका कहा मानने लगे। इससे चिंतित शंकित होकर हिरण्यकशिपु ने उसको मरवाने के अनेक उपाय किए जो असफल रहे। उसको लेकर आग म बैठने पर फागुन की पूर्णमासी के दिन होलिका ही जल गई। दूसरे दिन उसने लोगो को उपदेश और 'पाहळ' दिया। ६६ करोड लोगा म से, इस प्रकार ३३ करोड 'विष्णोई' हुए और 'प्रह्लाद-पंथ' चला। अन्त में हिरण्यकशिपु ने उसके पांच करोड सेवकों को मार कर उसको मारना चाहा। तभी खम्भ म से नृसिंह भगवान प्रकट हुए और शिव और ब्रह्मा के वर की रक्षा करते हुए दैत्य को मार दिया। प्रह्लाद की प्रार्थना पर भगवान ने चारो युगों मे इन ३३ कोटि लोगों के उद्धार का वचन दिया जिनमे पांच कोटि तो उसके समय मे ही मुक्त होगए। त्रेता मे हरिश्चन्द्र और द्वापर मे युधिष्ठिर के साथ क्रमश सात और नौ कोटि जीवो का उद्धार हुआ। अन्त म शेप १२ कोटि के उद्धारार्थ स्वय विष्णु जाम्भोजी के रूप मे आए। भविष्य में साधुओं की रक्षार्थ "निकळकी" के रूप मे प्रभु आकर कलियुग का अन्त करेंगे।

केसोजी के पौराणिक आख्यान-काव्यों मे सर्वाधिक प्रसिद्धि 'प्रह्लाद चरित' की है।

को अनायास ही प्रभावित करती है। सम्बन्धित प्रसग से कुछ उदाहरण नीचे दिए जाते हैं[1] ।

दोना प्रसगा में छोटे-छोटे सवादो की छटा भी द्रष्टव्य है।

कवि न उमा के विवाह के समय उसके नख-शिख तथा अन्य स्त्रियों के भी रूप और शृगार का सुदर वरान किया है[2] । इसके उपमान परम्परागत होते हुए भी मरुप्रदेश के

१-च्यारि पहर मिल चागर कीवी, इणि विधि तन मन आड।
मिरघो उठि चाल्यौ मरण न, मिरघी मोह न छाड ॥ ७४ ॥
परन्या सू प्रीति लगाव, इण विधि काल्हो रीझ।
मिरघो कहै सुणो मिरघाणी, मो सौं मोह न कीज ॥ ७५ ॥
हिरणी कहै सुणो हिरणा जी, साभळि वचन विचारो।
हू चौवस चेरी छ थाहरी तू म्हारो भरतारो ॥ ७६ ॥
जमधर तणी रसोई जायस्या, ऊगते आदीतो।
च्यारि पहर क काज मिरघी, कहा करो परतीतो ॥ ७७ ॥
तो जीया जीऊ जुग मडळ, मुध न छाड माणों।
एक पळक हू प्रीत न पर्डो, पिव सग तजौं पिराणों ॥ ७८ ॥
दोया जीव जुल्या करि नहचो, नहच नुक्तो होई।
रवि ऊगत जाय पहुता, जमधट तणी रसोई ॥ ७९ ॥
पन्हिार क पान पडिया, समह तेग समाहो।
हिरण सू हिरणी घसि आगै, नुक्त नाडि नवाही ॥ ८२ ॥
समहि पाग आण्यौ उरि उपर, हिरणा कर हकारो।
मरी वारो मोह विणासो, अबळा मूळ न मारो ॥ ८३ ॥
राजा पासि गयो पडिहारो, दुवो दया करि दीज।
मार एक मर छ दोन्यो, हुकम करो सो कीज ॥ ८४ ॥
राजा हुकम कियो मिरघा न, हित करि लिया हकारी।
सम्गिनि कहै मरो क्यू दोन्यौं, कहो कुणा की वारी ॥ ८५ ॥
मिरघे मिल करि पानू दीन्हो, दई बणायो दावो।
मोह क काज मर छ मिरघो, नरपति करो नियावो ॥ ८६ ॥
हिरणी हित आट हिरणा सू, लोचि लियो मे लारो।
राजा जा पूछ पडिहारा मिरघो मूळि न मारो ॥ ८७ ॥
मिरघो कहै सुणो राजाजी, ध्यान असो पर धरस्यौं।
मैं र वान कहू एक साचो, मिरघ मुवा हू मरिस्यौं ॥ ८८ ॥
राजा दवि दया दिल आणी बाभ सिकारो मारो।
राजा नहचो कियो मन मा मिरघा मूळ न मारो ॥ ८९ ॥
राजा निधि कर कागद दीनू, सही विसोवा वीसो।
वन मा घास चरो जळ पीवो, द्यो राजा आसीसो ॥ ९० ॥

२-उमा वरान —
विचारि विधि सू सामळो, भ रूप सरस साय।
बीज बादळ झिळमिल, न एम पायल पाय ॥ १३३ ॥
बिछिया मल बाजणा, डांगळी इधकार।
सुरलोक सुर नर सभळे, झणहंण झणकार ॥ १३४ ॥
पाय नप चप एम सोहै, जघ कदली जाण।
कांमणि कडि लांक चीता, वेणी विसहर डांण ॥ १३५ ॥
चावन चंदण करै मजण, कांमणी विवसासि। (शेषांश आगे देखें)

कूएँ पर नहाती हुई द्रौपदी के हार को श्रीकृष्ण ने उठा लिया। उसने अपनी माँ से वही पहनने का हठ किया। कडाहे के तेल म देख कर हार वेध देने की शत थी। श्रीकृ बाण छोड कर कण और दु शासन को उसमे उलझा लिया। तभी अजु न ने बाण से वेध दिया जो नीचे भीम के हाथो म गिरा। अजु न के वरमाला डाली गई। कौरवों ने सम्पत्ति के बदले द्रौपदी को मांगा। भीम ने कहा—विवाहित स्त्रियां ऐसे नहा मि प्रतोलि-द्वार पर ही मुण्ड दिखाई देंगे। दु शासन ने द्रौपदी का हाथ पकडा जिस पर भी लात मार कर उसको धरती पर पछाड दिया। पाण्डव हस्तिनापुर आगए।

नकुल ने द्रौपदी पर व्यग्य किया किन्तु कुन्ती ने डाटते हुए कहा—अवगुण कि नही ? तुम मे भी[1] हैं। द्रौपदी ने अपने अपमान के बदले भीम से दु शासन को मरवा लिए कुन्ती को विवश किया। फलस्वरूप भीम ने उसको पटका, गले पर पर रख दिया बोला—दोनो दलो मे कोई भी इसको छुडवाए। अजु न इस हेतु उठा पर कृष्ण के कह बठ गया। उसके मरने पर द्रौपदी ने सिर गु थवाया'।

छोटे-छोटे सवादो और वणनो से युक्त इस लघुकथा मे दो स्थल विशष रू द्रष्टव्य हैं—(क) नकुल का द्रौपदी को ताना और कुन्ती का चुप करवाना तथा (ख) दु को मारने के लिए द्रौपदी का कुन्ती से कथन[2] जिसमे उसका आक्रोश, दृढता और प्रति भावना अत्यन्त तीखे रूप मे मुखरित हुई है। 'कथा बहसोवनी' की भाति शकुनों का उल इसम भी है। दु शासन को युद्ध मे जाते समय बुरे शकुन होते हैं[3]।

(२०) **कथा सुरगारोहणी**[4] राग 'हसो मे गेय यह २१७ छन्दो (२१६ दोहे-चौ और अन्त म १ डिंगल गीत) की रचना है। इसमे पाण्डवो के स्वर्गारोहण की कथा जिसका सार इस प्रकार है —

१-आह तो चाळा करिसी हमा, पाणी जाती हार गु म्या ॥ ४४ ॥
जो इण मा हु ता लषण बतीस, पू टी बसि न न्हायो सीस।
रोह रे निकळा न बोलि वणी, एक एक ओगण छ सोह कणी ॥ ४५ ॥
जा दिन करवां सू पेली आळि, बोहळा ठोल्हा सह्या कपालि।
रोह रोह निकळा कुवण न भणि जाय वसे कुवपरी तणी ॥ ४६ ॥
२-गधारी री वहू कहाय, लाज मर कु तादे माय।
इणि दळ थार असौ न कोय, मारण घाव न आडो होय ॥ ४७ ॥
सीस न गु थाऊ मनि अणराय, न्हळि करवा र वसू जाय।
भीव कु वर दुसासण मारि, क छुरी कटारी ले छ नारि ॥ ४८ ॥
छुरी कटारी ले करि मरू, दुसासण घरि पाणी भरू।
जाय वसू दुसासण पासि नीर छलू चेडी होय दासि ॥ ४९ ॥
रोह रोट वहू न बोल वण, मांगी दे आजो की रग।
माठ सहेड, जुहर करू, बीह मार का हू मरू ॥ ५० ॥
३-रावतियो रथि पग दे चढ, बांव पषि पर आरड ॥ ५७ ॥
दोप अवळा हुई अथवाळि नागी हुई वसतर राळि।
दिस दाहणी नीसरयो नु वग, किसन काग बोलियो कुरग ॥ ५८ ॥
रथ मारियो गिजा रो घाव, मड दुसासण टिकियो पाव ॥ ५९ ॥
४-प्रति सख्या ६६, २०१, २०७।

धमराज युधिष्ठिर रात्रि म सोए हुए थे । कलियुग ने एक स्त्री के रूप मे आकर राजा [illegible]—अब तुम्हारी आन मिट गई है, कलियुग आगया है, इसलिए यह देश छोडकर दूर [illegible]ओ[1] । दूसरी रात भी वही हुआ । तीसरी रात वह बोली– या तो मेरा कहा करो [illegible] कोई दूसरा उपाय करूगी[2] ।

सुबह दरबार म भाइयो के पूछने पर राजा ने अपनी उदासी का कारण बताया । [illegible] चारों भाइयों न रात्रि के एक-एक प्रहर मे पहरा दिया किन्तु कलियुग के सामने किसी [illegible] न चली उलटे सबको उससे अपन प्राणो की भीख मागनी पडी । जब राजा के धम-[illegible] का भी उस पर कोई असर नहीं हुआ तो उन्होंने देश छुटाने का कारण और यहा [illegible] का विधि पूछी । उसन कहा—धम और पाप एक साथ नहीं रह सकत । तुम धम त्याग [illegible] पाप कम करो तो रह सकत हो, अन्यथा देश छोडो । राजा न दूसरा विकल्प ही [illegible]कार किया ।

वे भगवान श्रीकृष्ण के यहा गए । उन्होंने बन्धु-हत्या का दोष बताते हुए कुरुक्षेत्र [illegible]ान, महादान का दान करने और हिमालय म शरीर त्यागन को कहा । कुरुक्षेत्र में [illegible] वष रहने पर भी ग्रहण का सयोग न मिलने से, सहदेव के अतिरिक्त व सभी हिमालय [illegible] ओर जान म चल पडे । तभी सूय-ग्रहण हुआ । सहदेव तो स्नान-साध कर उनसे आ [illegible] किन्तु वे इससे वचित रहन से दुखी हुए । सहदेव से शिवजी के मिलन का स्थान पूछ [illegible] सभी आगे चल । शिवजी भसो के साथ भसे बने हुए थे । केदार पवत की घाटी म भीम [illegible] पकडने पर वे छुप कर भाग गए । शिवजी ने पाण्डव-आगमन की सूचना देने के [illegible] गणेशजी को शिखर पर बठा दिया । उनके वहा पहुचने पर गणेशजी के सकेत से शिवजी [illegible] होगए । उनको न पाकर भीम न गणेशजी का सिर काट दिया । सबके दुखी होने पर [illegible] कहा स हाथी का सिर लाकर लगाया और गणेशजी सजीवित हुए । गणेशजी ने [illegible] मन्दिर को ही 'धोक देकर' वापस जान को कहा, किन्तु व आगे चले । भीम न गदा से [illegible] तोड कर रास्ता बनाया । पहले पवत न रास्त के बदले द्रौपदी मागी किन्तु वे उस पर [illegible] गए । दूसरे पवत के दण्ड मागने पर द्रौपदी को सौंप कर वे आगे चले । युधिष्ठिर को [illegible] कर भीम पवत को परास्त कर द्रौपदी ले आया । तीसरे और चौथे पवत से भी [illegible] कारण भीम को युद्ध करना पडा । अब वे हिमालय पर आगए और ससार से मन हटा [illegible]िया । कुन्ती द्रौपदी, अजुन, सहदेव और नकुल क्रमश वहा गले । प्रत्येक के गलते समय [illegible] भीम को धय बधाते गए किन्तु अन्त म उसके गलने पर वे स्वय अधीर और दुखाभि-[illegible] होगए । धमराज कुत्ते के रूप म आए । राजा ने दुख का साथी समझ उसको गले से लगा [illegible]िया । भगवान के भेजे हुए विमान मे वे कुत्ते के साथ ही स्वग पहुचे । वहा कुन्ती, द्रौपदी [illegible]र चारों भाइयों से उनका मिलन हुआ ।

---

[1] [illegible] एक विचार भूप, कळि आई कामणी के रूप ॥ १३ ॥
कळि बोली कियो मनि माग, राजा मिटी तुहारी आंण ॥ १४ ॥
कळि आई परवाण पूरि छोडो देस हुवो थे दूरि ॥ १५ ॥
[2] [illegible] तीज दीठो दरसाव, कह्यो करो का करू उपाव ? ॥ १६ ॥

रचना म भाए सवाद और वर्णन संक्षिप्त, प्रसगानुकूल और प्रभावशाली है। सम्बन्ध म भीम और कलियुग का सवाद और युद्ध द्रष्टव्य है[1] । अपने पूर्व सम्पा दु साध्य कार्यों के सन्दभ मे एक नारी से हुई पराजय के कारण, चारों भाइयों का ग्ला लज्जा और असमर्थता-मिश्रित दशा का अत्यन्त स्वाभाविक और मनोरम वर्णन कवि किया है। रात्रि म कलियुग से हार जाने पर दरबार मे जब इस सम्बन्ध म उनसे पूछा गया तो उनकी दशा विचित्र हो गई[2] ।

प्रत्येक ने स्पष्ट रूप से सलज्ज अपनी हार स्वीकार की[3] ।

हिमालय म प्रत्येक के गलते समय करुण वातावरण घनीभूत हो जाता है, कि कवि ने इसके विमोचन का प्रसगानुकूल अवसर निकाला है। बिछुड़ने वाले के मोह से अभि भूत भीम को युधिष्ठिर प्रत्येक के दोष बताकर इसका परिहार करते हैं। उल्लेखनीय है

१-कलि आई पसर ज्यों पूरण, भीव कहे कामणि तू कूण ॥ २४ ॥
नारि कहै मेरो कळिजुग नाव, गढ छाडो हथणापुरि गाव ।
सादकी आव जों सीह, भीव गिजा ले उठ्यो अबीह ॥ २५ ॥
सुधि पापो पर धरि माचर, क्यों अवळा अण आई मर ।
कळि उठि मनि कियो कराध, रिण सगराम मड्या रिण जोध ॥ २६ ॥
मोहड गिजा करि समही, कहर कियो मनि कोप ।
कळि मारी क्यों करि मर, आगळि हुय अलोप ॥ २७ ॥
कळि तमकी कियो मनि ताण, भीव तणा गहि मळिया माण ।
धरणि पछाडयो धर न धीर, कापण लागो सोहड सधीर ॥ २८ ॥
हरि सिवरयो भींवड तदि हारि, इवक कळि मेरो जीव उबारि ॥ २९ ॥
२-पोह विगसी उगो आदीत, स्याम वरण मनि हुवो सचीत ।
दळ जुडियो मडियो दरबार, राजाजी पूछ परवार ॥ ५८ ॥
मोनि करि रहिया सह वीर, दिल माह सगळा दलगीर ।
राजा सनमुखि न सक जोय, उची नजरि न करही कोय ॥ ५९ ॥
सनमुख देखि रह्या सोह सण, जळ छलिया गहबरिया नण ।
उचळ चिना मन उदास, सरमाणा घात सह साम ॥ ६० ॥
धरती पोत धम्म विचारि, किम पतीग आई हारि ।
भड सगळा दीस भगहणा, मन माहे आमण दूमणा ॥ ६१ ॥
३-क-मारयो कीचक गह्यो क बीर, बधो बधु छुडाया बीर ।
परर अठारा जीता जणी, माण मल्या एकणि कामणि ॥ ६४ ॥
हारय हीय न क्योंई होय, मो ता कारज सर्यो न कोय ॥ ६५ ॥ (भ
ख-अरिजन कहे सांभळो कमेष, अरि सान ताप हू हू तो एक ॥ ६६ ॥
धरणीधर हु तो मो धई, तीण बराबर तोल्या सही ।
मो बळ भागो मुक्यो माण, आगळि तया न चाल्यो ताण ॥ ६७ ॥ (
ग-भाग्यो मडप मोचि सभाळि, मारयो दांणो पमि पयाळि ॥ ६९ ॥
इण विध बोल निकळ नरेस इणि अबळा आगळि भागेम ॥ ७० ॥ (
घ-इण अबळा सू सबळ न कोय, सहदेव पूछ जोयस जोय ।
सहदेव कहे निरप नरेस, निरदळि नारि छुडाव नेस ॥ ७२ ॥ (सहदेव)

म के गलने पर स्वय युधिष्ठिर सहज मानवीय वचन-वश फूट पडते हैं[1]। कलियुग के
ाणो का मार्मिकीय ढग से उल्लेख करके कवि ने प्रच्छन्न रूप से उनको त्यागने का भाव
ित किया है। विभिन्न प्रकार से इसका उल्लेख दो बार किया गया है—कथा के आरम्भ
द्वापर युग के बीतते समय ब्रह्माजी द्वारा और युधिष्ठिर के पूछने पर स्वय कलियुग द्वारा।
इसे प्रसग की अवतारणा तो कथा प्रवाह मे स्वयमेव उपस्थित हो गई है, जिसको पढ-सुन
र पाठक-श्रोता प्रभावित हुए बिना नही रह सकता। कहना न होगा कि कलियुग द्वारा
थित ये बातें जितनी कवि के समय म सत्य थी उतनी आज भी हैं[2]। रचना के अन्त मे
वि ने इसके सार और मूल-कथ्य स्वरूप हरि-कथा सुनने और धर्म कर मोक्ष-प्राप्त करने
ा एक ङ्गिल गीत के दो द्वालों म भावभरा अनुरोध किया[3] है। केवल इस गीत की ही
ही पूरी 'कथा' की भाषा सहज प्रवाहमयी और बोलचाल की है। कथा मे नवीन
सगोद्भावनाएँ कवि की उल्लेखनीय विशेषता है।

)

१-क-इणि करन तणी न कही पिछाणि, कुन्ता करन मरायो जाणि ॥ १५२ ॥
इणि माता रो सबळो हियो, दोह पूता विच वेहरो कियो ॥ १५३ ॥
(कुन्ती के विषय मे)।
ख-सील सती द्रौव ततसार, इण विधि साधु पुहचे पारि ॥ १६५ ॥ (द्रौपदी को)।
ग-हारि आई जदि अहमन हयो, तदि अरिजन इदरासणि गयो ॥ १७२ ॥
कद को प्रीतम अरिजन पात, अवडी वेळा न हुवो साथ ॥ १७३ ॥ (अर्जुन के लिए)।
घ-भीव मुणी राजा कहे भेव, लाधो गहण न दीहो भेव ॥ १७७ ॥
(सहदेव के लिए)।
ङ-जुध मडियो वाज्या जदि सार, बार पहर सझया सिणगार।
दिनि रिण नायो भाराथ, निकळो कदे न हुवो साथ ॥ १८३ ॥ (नकुल के लिए)।
च राय रुदन कियो घणो, अतरि इधक अधीर।
तो विण दुख कैन कहू, जामणि जाया वीर ॥ १९१ ॥
२ कळि बोली विधि एह विचारि, साच किसो मुस मुजारि।
धरम पाप न होई धड, धरम सदा पापा नै हड ॥ ५० ॥
नर नेकी मत को करो, बदी विलुधा सोय।
सान सुभाष्या साच सुचि, कळिजुग करो न कोय ॥ ५२ ॥
छाडि किनक करि पकडो काच, बोलो झूठ परहरो साच।
राजा वमि न करियो न्याव, ल्योह अकोड करो अनिवाय ॥ ५३ ॥
भग भगन करो उपाय, दान दया मेटो मनि भाव।
विपरा तणी दुहो थे गाय, राजा राज करो कळि माहि ॥ ५४ ॥
इण करता कीज राडि बाहण भाणजियाँ लीज माडि।
राणी धावणि घरमां धरो, तो राजा निहच निसतरो ॥ ५५ ॥
कळि प्रपणा कहिया उपदेस, का आडो का छाडो देस ॥ ५६ ॥
३-कथा हरि समळो पाप पास टळो पिराणियां पार गिराय वास पावो।
कहो करता करो धरणि असी धरो, धरम करि जीवडा धणी ध्यावो।
दास केसो कहै, सुरग मां सुख लहै, हरष करि प्राणिया हेत कीजै।
अरज कसो कर, अति सो उपर, प्रेम गुर गाइय प्रीति कीज ॥ २१७ ॥